Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कक्षा 12

व्यष्टि एवं समष्टि

अर्थशास्त्र

कक्षा 12
व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यष्टि एवं समष्टि–अर्थशास्त्र

(Micro and Macro Economics)

कक्षा – 12

माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

पुस्तक : व्यष्टि एवं समष्टि–अर्थशास्त्र

कक्षा – 12

संयोजक :–

डॉ. रश्मि भार्गव, सह आचार्य
अर्थशास्त्र विभाग,
एस.पी.सी. राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

लेखकगण :–

1. **डॉ. रमेश चन्द्र कीर,** सह आचार्य
विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,
श्री मा.ला.व. राज. महाविद्यालय, भीलवाड़ा

2. **डॉ. हेमेन्द्र अरोड़ा,** सह आचार्य
अर्थशास्त्र विभाग,
राज. एम.एस. महाविद्यालय, बीकानेर

3. **श्री टीकम मीणा,** प्रधानाचार्य
राज. उच्च मा. विद्यालय, धणा (पाली)

4. **श्री सतीश कुमार गुप्ता,** प्रधानाचार्य
राज. उच्च मा. विद्यालय, बूढ़ादीत, कोटा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

कक्षा – 12

संयोजक :–

डॉ. अनूप आत्रेय
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर

सदस्य :–

डॉ. अशोक सोनी
मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर

श्री सतीश कुमार गुप्ता, प्रधानाचार्य
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, बूढ़ादीत, कोटा

श्री बनवारी लाल शर्मा, प्रधानाचार्य
राजकीय वोकेशनल उच्च माध्यमिक विद्यालय, नयापुरा, कोटा

श्रीमती अनिता खींचड़, प्रधानाचार्य
राजकीय आदर्श उच्च माध्यमिक विद्यालय, कंवरपुरा, आमेर जयपुर

श्री प्रकाश चन्द्र शर्मा, प्राध्यापक
राजकीय वरिष्ठ उपाध्याय संस्कृत विद्यालय, दौसा

श्री ओमप्रकाश कूकणा, व्याख्याता
राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, नं.–9, श्रीगंगानगर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कक्षा – XII

विषय– अर्थशास्त्र (व्यष्टि एवं समष्टि अर्थशास्त्र)

समयः .... पूर्णांक 80

क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	कालांश	अंकभार
1.	परिचय	11	5
2.	उपभोक्ता का व्यवहार 1. उपभोक्ता का सन्तुलन 2. मांग की अवधारणा 3. मांग की कीमत लोच	34	12
3.	उत्पादक का व्यवहार 1. पूर्ति की अवधारणा 2. उत्पादन फलन 3. उत्पादन की अवधारणा 4. लागत की अवधारणा 5. आगम की अवधारणा	34	12
4.	6. फर्म का सन्तुलन बाजार के स्वरूप एवं कीमत निर्धारण 1. पूर्ण प्रतियोगिता 2. बाजार के अन्य स्वरूप 3. बाजार सन्तुलन	31	11
5.	राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ 1. राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ 2. राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित समुच्च्य 3. राष्ट्रीय आय का मापन	30	11
6.	मुद्रा एवं बैकिंग 1. मुद्रा का अर्थ एवं कार्य 2. व्यापारिक बैंक का अर्थ एवं कार्य 3. केन्द्रीय बैंक के कार्य साख नियंत्रण	25	10
7.	आय व रोजगार का निर्धारण 1. उपभोग फलन, बचत फलन एवं निवेश फलन 2. आय – उत्पादन का निर्धारण 3. अधि मांग व न्यून मांग की अवधारणा	27	10
8.	बजट एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणा 1. सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था 2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणाएँ	25	7
9.	नकदविहीन लेनदेन	3	2

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यष्टि अर्थशास्त्र (Micro Economics)

इकाई का नाम

(अ) परिचय (इकाई– I) अंक 5

1. परिचय–

व्यष्टि अर्थशास्त्र एवं समष्टि अर्थशास्त्र का अर्थ, वास्तविक अर्थशास्त्र एवं आदर्शात्मक अर्थशास्त्र का अर्थ, अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्यायें: क्या, कैसे और किसके लिए उत्पादन ? उत्पादन संभावना वक्र, अवसर लागत एवं सीमान्त अवसर लागत की अवधाराणा।

(ब) उपभोक्ता का व्यवहार (इकाई II) अंक 12

1. उपभोक्ता का सन्तुलन :– उपयोगिता विश्लेषण, उपयोगिता का अर्थ एवं प्रकार, सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम, सम–सीमान्त उपयोगिता नियम, सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण में उपभोक्ता के सन्तुलन की शर्ते, तटस्थता वक्र विश्लेषण एवं उपभोक्ता का सन्तुलन।
2. मांग की अवधाराणा :– मांग, बाजार मांग, मांग अनुसुची, मांग वक्र, मांग के निर्धारक तत्व, मांग मात्रा में परिवर्तन एवं मांग में परिवर्तन, मांग का नियम (विस्तृत व्याख्या)
3. मांग की कीमत लोच :– मांग की कीमत लोच का अर्थ, श्रेणियाँ, मांग की कीमत लोच का मापन 1. प्रतिशत विधि 2. कुल व्यय विधि 3. ज्यामितीय विधि (रेखीय मांग वक्र के संदर्भ में), मांग की लोच के निर्धारक घटक

(स) उत्पादक का व्यवहार (इकाई III) अंक 12

1. पूर्ति की अवधारणा :– पूर्ति , बाजार पूर्ति, पूर्ति अनुसूची, पूर्ति वक्र, पूर्ति के निर्धारक तत्व , पूर्ति मात्रा में परिवर्तन एवं पूर्ति में परिवर्तन, पूर्ति का नियम (विस्तृत व्याख्या)
2. उत्पादन फलन :– उत्पादन का अर्थ, स्थिर एवं परिवर्तनशील साधन, उत्पादन फलन का अर्थ व प्रकार , अल्पकालीन उत्पादन फलन उत्पादन का अर्थ, उत्पादन की अवधाराणाएँ – कुल उत्पाद, सीमान्त उत्पाद एवं औसत उत्पाद, परिवर्तनशील अनुपातों का नियम व कारण , विवेक पूर्ण उत्पादन की अवस्था
3. लागत की अवधारणाएँ :– लागत का अर्थ, प्रकार (स्पष्ट एवं अस्पष्ट लागते, निजी एवं सामाजिक लागत, मौद्रिक एवं वास्तविक लागत) अल्पकालीन लागत, वक्र :– कुल लागत, कुल स्थिर लागत, कुल परिवर्तनशील लागत, औसत स्थिर लागत, औसत परिवर्तनशील लागत, सीमान्त लागत का अर्थ एवं अल्पकालीन लागत वक्रों के अर्न्तसम्बन्ध।
4. आगम की अवधारणाएँ :– अर्थ, प्रकार:– कुल आगम, औसत आगम एवं सीमान्त आगम के अर्थ एवं सम्बन्ध, औसत आगम व कीमत में सम्बन्ध, विभिन्न बाजार स्थितियों में आगम वक्र।
5. उत्पादक का सन्तुलन :– अर्थ एवं शर्ते:– 1. कुल आगम व कुल लागत विधि 2. सीमान्त आगम व सीमान्त लागत विधि।

(द) बाजार के स्वरूप एवं कीमत निर्धारण :– (इकाई IV) अंक 11

1. पूर्ण प्रतियोगी बाजार :– बाजार का अर्थ, प्रकार, पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं विशेषताएँ
2. बाजार के अन्य स्वरूप :– एकाधिकार, एकाधिरात्मक प्रतियोगिता (अपूर्ण प्रतियोगिता) एवं अल्पाधिकार का अर्थ एवं विशेषताएँ।
3. बाजार सन्तुलन :– साम्य कीमत , साम्य मात्रा, एवं बाजार सन्तुलन का निर्धारण, मांग व पूर्ति में परिवर्तन का बाजार सन्तुलन पर प्रभाव।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

समष्टि अर्थशास्त्र

(अ) राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ (इकाई I) — 11 अंक

1. राष्ट्रीय आय की मूल अवधारणाएँ :— स्टॉक एवं प्रवाह की अवधारणा, आय के चक्रीय प्रवाह का अर्थ द्विक्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में उपभोग वस्तुएँ एवं पूँजीगत वस्तुएँ, अन्तिम वस्तुएँ एवं मध्यवर्ती वस्तुएँ, सकल एवं शुद्ध निवेश एवं मूल्यह्रास, घरेलू सीमा एवं सामान्य निवासियों की अवधारणा, विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय की अवधारणा, विशुद्ध परोक्ष कर की अवधारणा।
2. राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित समुच्चय :— सकल एवं विशुद्ध घरेलू उत्पाद, सकल एवं विशुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद (बाजार मूल्य एवं साधन लागत पर), राष्ट्रीय प्रयोज्य आय, (सकल व विशुद्ध) निजी आय, वैयक्तिक आय एवं वैयक्तिक प्रयोज्य आय, प्रति व्यक्ति आय की अवधारणा
3. राष्ट्रीय आय का मापन :— मूल्य वर्धित विधि, आय विधि एवं व्यय विधि, राष्ट्रीय आय व आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध

(ब) मुद्रा एवं बैंकिंग — (इकाई II) — 10 अंक

1. मुद्रा : वस्तु विनिमय का अर्थ एवं कठिनाईयाँ, मुद्रा का अर्थ व कार्य
2. व्यापारिक बैंक — अर्थ, कार्य एवं साख निर्माण की प्रकिया
3. केन्द्रीय बैंक — अर्थ, कार्य, साख, नियन्त्रण की विधियाँ (भारतीय रिर्जव बैंक के संदर्भ में)

(स) आय व रोजगार का निर्धारण :— (इकाई III) — 10 अंक

1. उपभोग फलन, बचत फलन एवं निवेश फलन की अवधारणा:—उपभोग फलन, उपभोग प्रवृति, बचत फलन, बचत प्रवृति व निवेश फलन की अवधारणाएँ
2. आय — उत्पादन का निर्धारण — समग्र मांग व समग्र पूर्ति की अवधारणाएँ, आय के सन्तुलन स्तर का निर्धारण, निवेश गुणक की अवधारणा
3. अधि मांग एवं न्यून मांग की अवधारणा— अर्थ, समग्र मांग व समग्र पूर्ति के संदर्भ में अधिमांग व न्यून मांग की व्याख्या, नियन्त्रण के उपाय (मौद्रिक एवं राजकोषीय उपाय)

(द) बजट एवं अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की अवधारणाएँ —(इकाई IV) — 7 अंक

1. सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था :— बजट का अर्थ, उद्देश्य और घटक, राजस्व प्राप्तियाँ एवं पूँजीगत प्राप्तियाँ, राजस्व व्यय एव पूँजीगत व्यय, बजट घाटे की अवधारणाएँ— राजस्व घाटा, राजकोषीय घाटा एवं प्राथमिक घाटा,
2. अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार की अवधारणाएँ :— अर्न्तराष्ट्रीय व्यापार का अर्थ , व्यापार सन्तुलन एवं भुगतान सन्तुलन की अवधारणा, विदेशी विनिमय दर का अर्थ एवं मांग व पूर्ति द्वारा विनिमय दर का निर्धारण, मुद्रा का अवमूल्यन व अधिमूल्यन,

(य) नकदविहीन लेनदेन (इकाई—V) — 2 अंक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विषय सूची

इकाई	क्र.सं.	पाठ्य वस्तु	पृष्ठ संख्या
		खण्ड–1 : व्यष्टि–अर्थशास्त्र	
इकाई	I	परिचय	
	1.	अर्थशास्त्र का परिचय	01–10
इकाई	II	उपभोक्ता का व्यवहार	
	2.	उपभोक्ता का संतुलन	11–21
	3.	मांग की अवधारणा	22–28
	4.	मांग की कीमत लोच	29–35
इकाई	III	उत्पादक का व्यवहार	
	5.	पूर्ति की अवधारणा	36–40
	6.	उत्पादन फलन	41–46
	7.	उत्पादन की अवधारणा	47–52
	8.	लागत की अवधारणा	53–57
	9.	आगम की अवधारणा	58–61
	10.	फर्म का संतुलन	62–65
इकाई	IV	बाजार का स्वरूप एवं कीमत निर्धारण	
	11.	पूर्ण प्रतियोगी बाजार	66–71
	12.	बाजार के अन्य स्वरूप	72–77
	13.	बाजार सन्तुलन	78–84
		खण्ड–2 : समष्टि –अर्थशास्त्र	
इकाई	V	राष्ट्रीय आय की अवधारणाएँ	
	14.	राष्ट्रीय आय की मूल अवधारणाएँ	85–90
	15.	राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित समुच्चय	91–96
	16.	राष्ट्रीय आय का मापन	97–101
इकाई	VI	मुद्रा एवं बैंकिंग	
	17.	मुद्राः अर्थ, कार्य एवं महत्व	102–106
	18.	व्यापारिक बैंकः अर्थ एवं कार्य	107–111
	19.	केन्द्रीय बैंकः कार्य एवं साख–नियन्त्रण	112–118
इकाई	VII	आय व रोजगार का निर्धारण	
	20.	उपभोग फलन, बचत फलन व निवेश फलन की अवधारणा	119–126
	21.	आय –उत्पादन का निर्धारण	127–132
	22.	अधि मांग एवं न्यून मांग अवधारणा	133–137
इकाई	VIII	बजट एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणा	
	23.	सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था	138–143
	24.	अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणाएँ	144–148
इकाई	IX	नकदविहीन लेनदेन	
	25.	नकदविहीन लेनदेन	149–154
		शब्दावली (Glossary)	155–157

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय–1

अर्थशास्त्र का परिचय
(Introduction of Economics)

परिचय

मानव–सभ्यता के आरम्भ से ही मानव की भिन्न–भिन्न प्रकार की आजीविकाओं पर निर्भरता रहती आई है। आदिमानव का जीवनयापन आखेटन पर आधारित था। पशुपालन व कृषि आजीविकाओं का रूप लेकर आज अधिकांश लोगों की रोजी–रोटी का साधन हैं। कालान्तर में औद्योगिक–क्रान्ति के बाद संसार के कई देशों में आजीविकाओं का रूप बदला। आज उद्योग, व्यापार एवं अन्य वाणिज्यिक क्रियाएँ विकसित हो गयी हैं। वाणिज्यिक क्रियाएँ अधिकतर लोगों के रोजगार व आय का साधन बन गयीं हैं। इस प्रकार आर्थिक–क्रियाओं के स्वरूप में विकास एवं परिवर्तन हुआ। इसी तरह आर्थिक–क्रियाओं से सम्बन्धित आर्थिक–विचारों, सिद्धान्तों व नियमों का साहित्य समृद्ध होकर अर्थशास्त्र के नाम से लोकप्रिय हुआ।

'अर्थशास्त्र' नाम का उल्लेख भारत के प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। ''कृषिपालन,पालयः वाणिज्यम च वार्ताः'' में 'वार्ताः'शब्द का प्रयोग आर्थिक–क्रियाओं के लिए हुआ है। बृहस्पति, शुक्र व कौटिल्य इत्यादि द्वारा कृषि, पशुपालन, दुग्ध उत्पादन एवं वाणिज्य से सम्बन्धित आर्थिक–क्रियाओं के लिए 'वार्ताः'शब्द का प्रयोग किया गया। 'अर्थशास्त्र' से सम्बन्धित भारत के विचारकों में–स्वामी दयानन्द सरस्वती, दादा भाई नौरोजी, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले, रमेश चन्द्र दत्त, एम. एन. रॉय प्रमुख हैं। बाद के भारत के विचारकों में महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, राम मनोहर लोहिया, प्रो. जे. के. मेहता, पण्डित दीन दयाल उपाध्याय एवं अमर्त्य सेन प्रमुख हैं।

अर्थशास्त्र की परिभाषाएँ

विश्व में 'अर्थशास्त्र' का जनक एडम स्मिथ को माना जाता है। एडम स्मिथ की पुस्तक (An Enquiry into the Nature and Causes of the Wealth of Nations) सन् 1776 में प्रकाशित हुई। अर्थशास्त्रियों द्वारा अर्थशास्त्र की अलग–अलग परिभाषाएँ दी गई हैं। अलग–अलग परिभाषाओं में प्रमुखतः– 1. धन–प्रधान 2. कल्याण–प्रधान 3. सीमितता–प्रधान 4. विकास–प्रधान व 5. आवश्यकता–विहीनता की स्थिति पर आधारित हैं।

एडम स्मिथ ने 'अर्थशास्त्र' को 'धन' (Wealth) का अध्ययन बताया। अर्थशास्त्री अल्फ्रेड मार्शल ने 'अर्थशास्त्र' को 'आर्थिक–कल्याण' (Economic-Welfare) का अध्ययन के रुप में परिभाषित किया। उपर्युक्त विचारों की कटु आलोचना करते हुए लॉर्ड लियोनिल रोबिन्स ने 'अर्थशास्त्र' को असीमित–आवश्यकताओं (Unlimited-Ends) व सीमित–साधनों (Limited-Resources) से सम्बन्धित बताया। लॉर्ड लियोनिल रोबिन्स के अनुसार 'असीमित – आवश्यकताओं की सीमित–साधनों (Unlimited-Ends with Limited-Resources) द्वारा पूर्ति हेतु चयन–प्रक्रिया (Choice Making Process) से सम्बन्धित अध्ययन' परिभाषित किया। 'अर्थशास्त्र' को 'विकास' से सम्बन्धित करते हुए पॉल ए. सेम्युलसन ने आर्थिक–क्रियाओं के गत्यात्मक–विश्लेषण पक्ष पर जोर दिया है। प्रो. जे. के. मेहता ने 'अर्थशास्त्र' को एक व्यक्ति में 'आवश्यकताओं की विहीनता की स्थिति' प्राप्त करने में मदद करने वाला अध्ययन बताया। प्रो.मेहता के विचार महात्मा गाँधी के विचारों से प्रभावित रहें हैं।

एना कुत्सोयानिस (A. Koutsoyannis) के अनुसार ''आर्थिक सिद्धान्त का उद्देश्य एक व्यक्तिगत इकाई (एक उपभोक्ता, एक उत्पादक व एक फर्म या सरकारी–एजेन्सी) के आर्थिक – व्यवहार तथा उसका एक दूसरे पर प्रभाव का वर्णन करने वाले मॉडल बनाना है, जिससे एक क्षेत्र, देश या सम्पूर्ण विश्व की अर्थव्यवस्था बनती है।''

'अर्थशास्त्र' सामाजिक विज्ञान से सम्बन्धित होता है। 'अर्थशास्त्र' में समाज व परिवार के सदस्य के रूप में एक व्यक्तिगत इकाई (एक उपभोक्ता, एक उत्पादक व एक फर्म) अथवा उनके समूहों एवम् देशों के आर्थिक–व्यवहार का अध्ययन किया जाता है। ये सभी अपनी असीमित व प्रतिस्पर्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिए सीमित व वैकल्पिक उपयोग वाले साधनों का चुनाव करते हैं।

सरल शब्दों में, 'अर्थशास्त्र' व्यक्तियों या देशों के द्वारा साधनों की सीमितता के कारण उत्पन्न चुनाव से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन का विज्ञान व उनके समाधान की कला है। इस प्रकार अर्थशास्त्र–1. सामाजिक विज्ञान की एक शाखा है। 2. अर्थशास्त्र में व्यक्ति या देशों की अर्थव्यवस्था के व्यवहार के आर्थिक–पक्ष का अध्ययन किया जाता है। 3. अर्थशास्त्र असीमित

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व प्रतिस्पर्धी आवश्यकताओं का सीमित व वैकल्पिक उपयोग वाले साधनों के चुनाव द्वारा हल निकालने से सम्बन्धित है।

अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र

अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र के बारे में अर्थशास्त्रियों के विचारों में बहुत कम समानता पायी जाती है। जॉन नेविल्ले कीन्स (John Neville Keynes) ने अर्थशास्त्र की प्रकृति व क्षेत्र का विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है। जॉन नेविल्ले कीन्स ने अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु में अर्थशास्त्र की प्रकृति, अन्य विषयों से सम्बन्ध व आर्थिक–नियमों की कमियों का समावेश किया है। आजकल अर्थशास्त्र की विषय–वस्तु के अन्तर्गत व्यक्तिगत इकाई (एक उपभोक्ता, एक उत्पादक व एक फर्म) का अध्ययन 'व्यष्टि–अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत करते हैं। इसी प्रकार व्यक्तिगत इकाइयों के समूहों (एक देश के) के आर्थिक–व्यवहार के स्तर का अध्ययन 'समष्टि–अर्थशास्त्र' में किया जाता है:—

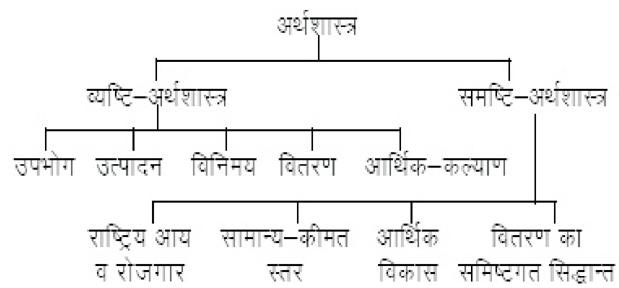

सर्वप्रथम सन् 1933 में रेग्नर फ्रिश (Ragner Frisch) ने व्यष्टि–अर्थशास्त्र (Micro-Economics) तथा समष्टि–अर्थशास्त्र (Macro-Economics) का प्रयोग किया। Micro तथा Macro अंग्रेजी भाषा के शब्द हैं जिनकी उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द Mikros तथा **Makros** से हुई। Micro तथा Macro का अर्थ क्रमशः 'सूक्ष्म' व 'व्यापक' है। व्यष्टि–अर्थशास्त्र एवम् समष्टि–अर्थशास्त्र के बारे में एन. ग्रेगॉरी मेन्कीव की निम्न परिभाषा महत्वपूर्ण है– **''व्यष्टि–अर्थशास्त्र वह अध्ययन है कि कैसे परिवार व व्यावसायिक–फर्में निर्णय लेते हैं तथा वे विशेष बाजारों में आपस में अन्तःक्रिया करते हैं। समष्टि–अर्थशास्त्र सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था में फैली हुई घटनाओं का अध्ययन है।''**

व्यष्टि–अर्थशास्त्र

व्यष्टि–अर्थशास्त्र (Micro-Economics) को कीमत – सिद्धान्त **(Price-Theory)** भी कहते हैं। व्यष्टि–अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाई (एक उपभोक्ता, एक उत्पादक व एक फर्म) का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन कीमत को ध्यान में रख कर किया जाता है। जैसे एक उपभोक्ता द्वारा एक निश्चित कीमत व आमदनी की स्थिति में उसकी संतुष्टि को अधिकतम करना। इसी प्रकार एक उत्पादक द्वारा एक वस्तु या सेवा की निश्चित कीमत की स्थिति में उसके उत्पादन को अधिकतम करना। इसी प्रकार एक फर्म द्वारा अथवा 'समान फर्मों' के समूह– 'उद्योग' में निश्चित कीमत पर लाभ व उत्पादन को अधिकतम करना इत्यादि। इन सभी व्यक्तिगत इकाइयों का अध्ययन कीमत को ध्यान में रख कर किया जाता है। वितरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत भी साधनों की कीमत को ध्यान में रख कर अध्ययन किया जाता है। जैसे श्रम की कीमत– मजदूरी, पूँजी के उपयोग की कीमत– ब्याज, भूमि के उपयोग की कीमत– लगान, उद्यमशीलता के उपयोग की कीमत– लाभ इत्यादि। साधनों की कीमत को साधनों के प्रतिफलों के रूप में रख कर अध्ययन किया जाता है।

व्यष्टि–अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाई का आंशिक (Micro-Partial) व कुल व्यष्टिगत (Micro-Total) अर्थशास्त्रीय अध्ययन होता है। वस्तु की कीमत को परिवर्तनशील तथा अन्य कारकों जैसे उपभोक्ता की आय इत्यादि को स्थिर मानकर किया जाने वाला अध्ययन आंशिक अध्ययन कहा जाता है। किन्तु जब सभी कारक परिवर्तनशील होते हैं तो उसको कुल व्यष्टिगत **(Micro-Total)** अध्ययन किया जाता है।

व्यष्टिगत–अर्थशास्त्रीय अध्ययन जब कीमत इत्यादि आर्थिक चरों को स्थिर मानकर होता है तो उसे व्यष्टिगत–स्थैतिक (Micro-Static) अध्ययन कहते हैं। इसी प्रकार जब दो स्थिर अवस्थाओं की तुलना करते हैं उसे व्यष्टिगत–तुलनात्मक **(Micro-Comparative)** अध्ययन कहते हैं। आर्थिक चरों को निरन्तर गतिशील अवस्था में मानकर किया गया अध्ययन व्यष्टिगत – प्रावैगिक **(Micro-Dynamic)** अध्ययन कहलाता है।

समष्टि–अर्थशास्त्र

समष्टि–अर्थशास्त्र (Macro-Economics) में अध्ययन व्यापक अथवा समग्र स्तरों के सन्दर्भ में किया जाता है। समष्टि–अर्थशास्त्र के अन्तर्गत राष्ट्रीय–आय के स्तर, रोजगार के स्तर, देश में बचत का स्तर, देश में विनियोग का स्तर, सामान्य कीमत–का स्तर, आर्थिक–वृद्धि व विकास में उतार व चढ़ाव इत्यादि का अध्ययन किया जाता है। व्यापक अथवा समग्र स्तरों के सन्दर्भ में किया जाता है। समष्टि–अर्थशास्त्र को सामान्य–आय व रोजगार का सिद्धान्त (General-Income and Employment Theory) भी कहा जाता है। समष्टि–अर्थशास्त्र से सम्बन्धित जॉन मिनार्ड कीन्स (John Mynard Keynes) की सन 1936 में 'दी जनरल थ्योरी' (The General Theory of Employment, Interest and Money) पुस्तक प्रकाशित हुयी। इसके बाद समष्टि–अर्थशास्त्र के सिद्धान्त अधिक वैज्ञानिक तरीके से विकसित होने लगे।

गार्डनर एक्ले (Gardner Ackley) के शब्दों में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

''समष्टि–अर्थशास्त्र आर्थिक विषयों पर 'व्यापक रूप' से विचार करता है। समष्टि–अर्थशास्त्र का सम्बन्ध आर्थिक जीवन के पूरे विस्तार की सभी विमाओं (दिशाओं) से होता है। यह (समष्टि–अर्थशास्त्र) व्यक्तिगत अंगों के कार्य की विमाओं (दिशाओं) के बजाय, आर्थिक अनुभव के हाथी के सम्पूर्ण आकार, आकृति व कार्य करने का अवलोकन करता है। इस रूपक को बदलने पर, यह उस पूरे वन की विशेषताओं का अध्ययन, उसे बनाने वाले पेड़ों से स्वतन्त्र होकर, करता है।''

समष्टि–अर्थशास्त्र में भी एक कारक के आधार पर समष्टिगत–आंशिक (Macro-Partial) अध्ययन किया जाता है। किन्तु, सभी कारकों को परिवर्तनशील मानते हुए समष्टिगत– कुल (Macro-Total) अध्ययन होता है। समष्टिगत–कुल (Macro-Total) के अन्तर्गत राष्ट्रीय–आय के स्तर, रोजगार के स्तर, बचत का स्तर, विनियोग का स्तर, सामान्य कीमत–का स्तर, आर्थिक–वृद्धि व विकास में उतार व चढ़ाव इत्यादि का अध्ययन होता है। समष्टिगत–अर्थशास्त्रीय अध्ययन भी स्थिर अवस्था में समष्टिगत–स्थैतिक (Macro-Static) कहलाता है। किन्तु जब दो स्थिर अवस्थाओं की तुलना करते हैं इसे समष्टिगत– तुलनात्मक (Macro-Comparative) अध्ययन कहते हैं। इसी प्रकार निरन्तर गतिशील अवस्था में किया जाने वाला अध्ययन समष्टिगत–प्रावैगिक (Macro-Dynamic) कहलाता है।

व्यष्टि एवम् समष्टि–अर्थशास्त्र में अन्तर– व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र में अनेक आधारों पर अन्तर किया जा सकता है। व्यष्टि अर्थशास्त्र द्वारा व्यक्तिगत आर्थिक अनुभव के आधार पर अध्ययन किया जाता हैं। समष्टि अर्थशास्त्र में व्यापक या समग्र स्तरों के आधार पर अध्ययन की विषय–वस्तु व विधियाँ अपनायीं जाती हैं। इसी तरह व्यष्टि अर्थशास्त्र व समष्टि अर्थशास्त्र के अध्ययन के मध्य कतिपय आधारों का भी अन्तर देखा जाता है। व्यष्टिगत व समष्टिगत अर्थशास्त्र के मध्य विभिन्न प्रकार के अन्तर तालिका 1.1 में दिये गये हैं:–

छोटी–छोटी असंख्य व्यक्तिगत इकाइयों की सहायता से बड़े समूह बनते हैं। असंख्य व्यक्तिगत इकाइयों के उपभोग, उत्पादन, श्रमिकों व अन्य साधनों को जोड़ कर समष्टिगत उपभोग, उत्पादन व कुल संसाधनों के स्तर ज्ञात होते हैं। इस प्रकार व्यष्टि एवम् समष्टि–अर्थशास्त्र एक दूसरे के पूरक हैं।

आर्थिक–विश्लेषण की विधियाँ– आर्थिक–विश्लेषण करने की भिन्न–भिन्न विधियाँ होती हैं जो भिन्न–भिन्न आधार, उद्देश्यों व अन्य आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर काम में ली जाती हैं जिनका संक्षिप्त विवरण नीचे दिया गया है–

आर्थिक–विश्लेषण की विधियाँ

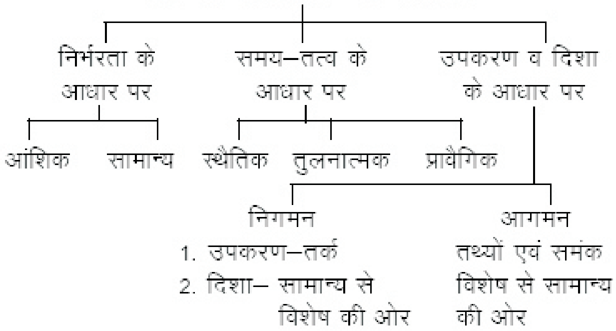

तालिका 1.1

क्र.सं.	अन्तर का आधार	व्यष्टि–अर्थशास्त्र	समष्टि–अर्थशास्त्र
1.	अध्ययन की इकाई	एक व्यक्तिगत इकाई	एक देश की सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था
2.	मान्यता	पूर्ण प्रतियोगिता व रोजगार, सरकार का दखल नहीं, स्वतंत्र कीमत–तंत्र	उत्पादन के साधनों का वर्तमान वितरण पहले से ही निर्धारित है
3.	अध्ययन का उद्देश्य	संसाधनों के अधिकतम वितरण से सम्बन्धित सिद्धांतों के लिए	उत्पादकता का विस्तार व पूर्ण रोजगार की प्राप्ति से सम्बन्धित सिद्धांतों हेतु
4.	विश्लेषण के उपकरण	कीमत संयंत्र	राष्ट्रीय आय के स्तर का निर्धारण
5.	अध्ययन की स्थिति	व्यक्तिगत इकाइयों का जब वे संतुलन की स्थिति में जो तब अध्ययन	जब सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था असंतुलन की स्थिति में हो तब अध्ययन
6.	संतुलन का प्रकार	आंशिक संतुलन	सामान्य संतुलन
7.	परिवर्तन	व्यष्टि के परिवर्तन समष्टि की स्थिरता में भी हो सकते है	समष्टि की स्थिरता पर व्यष्टि की बनावट में परिवर्तन का प्रभाव नहीं पड़ता
8.	विरोधाभास	व्यष्टि के लिए बचत लाभकारी	समष्टि के लिए बचत अलाभकारी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अ. निर्भरता के आधार पर—

जब आर्थिक—विश्लेषण किसी एक कारक को ध्यान में रख कर किया जाता है तब वह 'आंशिक—विश्लेषण' कहलाता है। जैसे वस्तु की मांग का अध्ययन उसी वस्तु की कीमत, को ध्यान में रखते हुये करना आंशिक—विश्लेषण कहलाता है। किन्तु, जब वस्तु की मांग का अध्ययन उस वस्तु की कीमत के साथ—साथ अन्य कारकों के आधार पर किया जाने वाला अध्ययन 'सामान्य—अध्ययन' कहा जाता है। जैसे वस्तु की प्रतिस्थापक वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आमदनी इत्यादि के आधार पर किये जाने वाले अध्ययन को सामान्य—अध्ययन कहते हैं।

ब. समय—तत्व के आधार पर —

आर्थिक—विश्लेषण समय के एक विशेष बिन्दु के सम्बन्ध में होने पर स्थैतिक—विश्लेषण कहलाता है। आर्थिक—विश्लेषण समय के दो बिन्दुओं से सम्बन्धित स्थितियों की तुलना करने पर उसे तुलनात्मक—विश्लेषण कहते हैं। जब साम्यों के मध्य होने वाले परिवर्तन की श्रृंखला का आर्थिक अध्ययन किया जाता है तो उस आर्थिक—विश्लेषण को प्रावैगिक—विश्लेषण कहते हैं। सर्वप्रथम रेग्नर फ्रिश ने सन् 1928 में आर्थिक— स्थैतिक व आर्थिक—प्रावैगिकी शब्दों का प्रयोग किया।

स. उपकरण व दिशा के आधार पर —

यद्यपि आगमन व निगमन विधियाँ एक दूसरे की पूरक हैं फिर भी इनमें कुछ अन्तर होते हैं। निगमन विधि के अन्तर्गत किसी एक विशेष व्यक्तिगत इकाई के आर्थिक—विश्लेषण तर्क—विधि के आधार पर करते हैं। इस विधि में हम सामान्य सत्य के आधार पर किसी विशिष्ट सत्य का पता लगाते है। जब तर्क—विधि के आधार पर ही सामान्यीकरण किया जाता है तो उस विधि को निगमन विधि कहते हैं। निगमन विधि को काल्पनिक, निराकार तथा तर्क विधि भी कहते हैं। निगमन विधि में सामान्य से विशेष तथा परिकल्पना से तथ्यों की ओर अध्ययन किया जाता है।

आगमन—विधि के अन्तर्गत आर्थिक—विश्लेषण के सामान्य नियमों को किसी एक विशेष व्यक्तिगत इकाई के आर्थिक व्यवहार में खोजते हैं। आगमन—विधि में आंकड़ों/समंकों व सांख्यिकी की विधि के द्वारा अध्ययन किया जाता है। इसमें वास्तविक जगत की घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण व विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते है। माल्थस ने अपने जनसंख्या सिद्धांत में इसी विधि का प्रयोग किया था। आगमन— विधि को अनुभव पर आधारित विधि अथवा ऐतिहासिक विधि भी कहते हैं।

अर्थशास्त्र कला है या विज्ञान

अर्थशास्त्र की प्रकृति का अभिप्राय है अर्थशास्त्र किस प्रकार का अध्ययन है। आर्थिक अध्ययन दो प्रकार की प्रकृति के होते हैं— 1. अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में तथा 2. अर्थशास्त्र कला के रूप में। वैज्ञानिक तरीके से होने वाले अध्ययन क्रमबद्ध, तथ्यपरक व तार्किक होते हैं। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त व नियमों को विज्ञान के रूप में ज्ञात कर सकते हैं। इस प्रकार अर्थशास्त्र के सिद्धान्त व नियमों को समाज में लोगो के व्यवहार के अन्तर्गत देखकर अवलोकनों (Observastions) के रूप में ज्ञात कर सकते हैं। अर्थशास्त्र में भी विभिन्न प्रकार के सिद्धान्त, नियम होते हैं। जैसे— मांग का नियम, पूर्ति का नियम, उत्पत्ति के नियम, लगान, ब्याज, मजदूरी के सिद्धान्त इत्यादि पाये जाते हैं।

अर्थशास्त्र की अध्ययन—पद्धति तथ्यपरक व तर्क—आश्रित दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं। निगमन विधि के अन्तर्गत आर्थिक अध्ययन तर्क के आधार पर किया जाता है। तथ्यपरक आर्थिक अध्ययन के लिए तथ्यों (आंकड़ों अथवा समंकों) के आधार पर विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकालते हैं। इस प्रकार से अर्थशास्त्र की प्रकृति को विज्ञान के रूप में माना जाता है। सामान्यतः अर्थशास्त्र की प्रकृति का विज्ञान के दो रूपों में उल्लेख होता है—यथार्थमूलक तथा आदर्शमूलक। यथार्थमूलक अध्ययन—पद्धति में 'कारण व परिणाम'(Cause and Effects) के आधार पर विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकालते हैं। अर्थशास्त्र के विभिन्न प्रकार के नियमों को 'क्या है' (What is) के द्वारा बताया जाता है। जैसे वस्तु की कीमत में कमी से वस्तु की मांग में वृद्धि होती है। इसी प्रकार आदर्शमूलक अध्ययन—पद्धति में 'मूल्यों' (Value-Based) के आधार पर अध्ययन किया जाता है। आदर्शमूलक अध्ययन—पद्धति में 'क्या होना चाहिए' के आधार पर विश्लेषण करते हुए निष्कर्ष निकालते हैं। अर्थशास्त्र के विभिन्न अच्छे—बुरे अथवा सही—गलत के निर्णय आदर्शमूलक अध्ययन—पद्धति के अन्तर्गत होते हैं। जैसे अमीरों पर अधिक व गरीबों पर कम आयकर (Income-Tax) लगाने चाहिए।

कला का अर्थ शारीरिक अथवा मानसिक क्षमता से होता है। वह शारीरिक अथवा मानसिक क्षमता जिसके द्वारा एक कार्य सर्वोत्तम या श्रेष्ठ तरीके से किया जा सके। इस प्रकार कला एक विधि है। आदर्शमूलक अर्थशास्त्र की प्राप्ति यथार्थमूलक अर्थशास्त्र के आधार पर करते हैं। अर्थव्यवस्था में 'क्या होना चाहिए' (What Should Be) की प्राप्ति 'क्या है' (What is) या 'क्या होता है' के आधार पर करते हैं। एक विशेष कार्य जैसे—गरीबी दूर करना, की सर्वोत्तम या श्रेष्ठतम तरीके से प्राप्ति कला है। अर्थात् अर्थशास्त्र के नियमों व विधियों का उपयोग करते हुये गरीबी को कम करना अर्थशास्त्र के कला होने को स्पष्ट करता है। दैनिक जीवन की चुनाव—सम्बन्धी समस्याओं के सर्वोत्तम—हल, अर्थशास्त्र के नियमों व विधियों का उपयोग करते हुये करते हैं। अर्थशास्त्र के नियमों व विधियों द्वारा सन्तुष्टि अधिकतम करना, उत्पादन अधिकतम करना, लाभ अधिकतम करना, बेरोजगारी घटाना, आर्थिक वृद्धि व विकास करना अर्थशास्त्र के कला होने के उदाहरण हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक–नियमों की कमियाँ

प्राकृतिक–विज्ञान के विषयों जैसे–भौतिकशास्त्र या रसायनशास्त्र के नियमों व सिद्धान्तों में पूर्ण शुद्धता होती है। प्राकृतिक–विज्ञान के विषयों को प्रयोगशाला में देखकर उन नियमों व सिद्धान्तों की वास्तविकता परख सकते हैं। अर्थशास्त्र एक प्रकार का सामाजिक–विज्ञान होने के कारण इसके नियमों व सिद्धान्तों को किसी प्रयोगशाला में नहीं देख सकते हैं। अर्थशास्त्र व सामाजिक–विज्ञान के लिए तो समाज ही प्रयोगशाला होती है। इस प्रकार अर्थशास्त्र के नियम व सिद्धान्त भौतिकशास्त्र या रसायनशास्त्र के नियमों व सिद्धान्तों की तरह उतने खरे नहीं होते हैं। अर्थशास्त्र के नियम व सिद्धान्तों में पूर्ण शुद्धता नहीं होने के कारण कम विश्वसनीयता देखने को मिलती है। फिर भी 'इतिहास' का विकास अभी 'वर्णनात्मक चरण' में है। राजनीतिशास्त्र, लोकप्रशासन व सामाजिक मानवशास्त्र एक कदम आगे 'विश्लेषण चरण' में हैं। इन सभी से बहुत आगे अर्थशास्त्र में, 'भविष्यवाणी कर सकने के चरण' तक अर्थशास्त्र के नियमों व सिद्धान्तों का विकास हो चुका है। इसी कारण आज अर्थशास्त्र महत्वपूर्ण विषयों में से एक है। अर्थशास्त्र के नियमों व सिद्धान्तों का सही ज्ञान कुछ मान्यताओं पर निर्भर करता है।

मान्यतायें– मान्यतायें कुछ मूलभूत व आवश्यक बातें, दशायें या शर्तें होती हैं। इन मूलभूत व आवश्यक बातों, दशाओं या शर्तों का पूरा होना किसी नियम व सिद्धान्त के लिए आवश्यक होता है। हम जानते हैं कि प्रत्येक सिद्धांत के पीछे कुछ ऐसी प्रस्थापनाएं और परिस्थितियां होती है जिन्हें दिया हुआ मान लिया जाता है। इन्हें ही उस सिद्धांत के आधार तत्व अथवा मान्यताएं कहते है। वास्तव में नियम व सिद्धान्त के खरा उतरने या पूर्णतः सत्य सिद्ध होने के लिए उपर्युक्त बातों, दशाओं या शर्तों का पूरा होना आवश्यक होता है।

अर्थशास्त्र की मान्यतायें– आर्थिक–विश्लेषण करते समय कई प्रकार की बातों, दशाओं या शर्तों की मान्यतायें लेते हैं। विभिन्न आर्थिक–नियमों व सिद्धान्तों के खरा उतरने या पूर्णतः सत्य सिद्ध होने के लिए कुछ विशेष बातों, दशाओं या शर्तों की मान्यताओं का पूरा किया जाना आवश्यक होता है। आर्थिक–विश्लेषण के लिए निम्नलिखित मुख्य मान्यतायें ली जाती हैं–

1. अन्य बातें समान रहें
2. आर्थिक इकाई की विवेकशीलता
3. आर्थिक मानव
4. साम्य या संतुलन की आरंभिक दशा
5. विशेष सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक संस्थाओं से सम्बन्ध
6. जीवविज्ञान व भूगोल से सम्बन्ध

अर्थशास्त्र में आर्थिक–व्यवहार, आर्थिक–समस्याओं तथा विश्लेषण के परिचय के लिए मान्यतायों के साथ–साथ कुछ शब्दावली, जैसे– चर (चल राशियाँ) (Variables), स्थिरांक, (Constants), प्राचल (Parameters), परिकल्पना (Hypothesis), अभिस्वीकृतियाँ (Axioms), नियम (Laws) व भविष्यवाणी (Prediction) इत्यादि का ज्ञान व समझ होना भी आवश्यक होता है।

मनुष्य की आवश्यकताएं असीमित होती हैं। यदि सभी आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए साधन भी असीमित होते है तो कोई आर्थिक समस्या उत्पन्न नहीं होती। प्रत्येक अर्थव्यवस्था में आवश्यकताओं की तुलना में साधन सीमित होते है। साधनों की सीमितता से उत्पन्न आर्थिक समस्या के प्रमुख कारण निम्न हैं :–

1. भिन्न भिन्न प्राथमिकताओं वाली असीमित आवश्यकताएं
2. सीमित किन्तु वैकल्पिक उपयोगों वाले साधन
3. आवश्यकताओं व साधनों के बीच समन्वय (तालमेल)

आवश्यकताओं व साधनों के बीच असमानता के कारण आर्थिक समस्या उत्पन्न होती है। विभिन्न प्रतिस्पर्धी आवश्यकताओं में से कौन सी आवश्यकताओं का सीमित साधनों द्वारा समाधान किया जाए, यही प्रमुख आर्थिक समस्या होती है। सामान्यतः जो आवश्यकताएं अधिक तीव्र होती है उनका सीमित साधनों द्वारा प्राथमिकता से समाधान किया जाता है। इसी प्रकार जिन आवश्यकताओं की प्राथमिकता थोड़ी कम होती है उनको भविष्य में संतुष्ट करने के लिए वर्तमान में स्थगित (टाल दिया) कर दिया जाता है। गैरप्राथमिक अथवा गौण आवश्यकताओं को लोग असंतुष्ट ही रख देते है।

केन्द्रीय अर्थव्यवस्था की समस्याएं

आर्थिक समस्या का सम्बंध 'चयन' से होने के कारण इसे चुनाव की समस्या भी कहते है। चुनाव की प्रथम समस्या प्रत्येक व्यक्ति द्वारा समय के आवंटन की होती है। यह आवंटन 'आराम' (Leisure) व 'काम' (Work) के बीच किया जाता है। 'आराम' (Leisure) व 'काम' (Work) के आवंटन के बाद विभिन्न आर्थिक समस्याओं का समाधान करने के लिए सर्वप्रथम संसाधनों का आवंटन किया जाता है। उपलब्ध समस्त साधनों जैसे– (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) के आवंटन द्वारा उन सभी मुख्य आर्थिक समस्याओं को ज्ञात किया जाता है। प्रत्येक व्यक्ति मुख्य आर्थिक समस्याओं का पता लगाकर उनके समाधान खोजता है। मुख्य आर्थिक समस्याओं के समाधान खोजने के लिए उत्पादन–संभावना–वक्र, अवसर लागत एवं सीमान्त अवसर लागत की अवधारणाओं को समझना आवश्यक हैं। कुछ महत्वपूर्ण अवधारणाएँ निम्न है :–

उत्पादन–संभावना–वक्र की अवधारणा:–

डोमिनिक सेलवेटोर के अनुसार 'वह वक्र जो यह बताता है कि एक देश उपलब्ध श्रेष्ठतम तकनीक व अपने सभी संसाधनों

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

का उपयोग करते हुए वस्तुओं की भिन्न भिन्न मात्राओं के वैकल्पिक संयोगों को जिन्हें वह देश उत्पादित कर सकता है' ऐसा वक्र, उत्पादन–संभावना–वक्र या वस्तु– रूपान्तरण वक्र कहलाता है। इस प्रकार उत्पादन–संभावना–वक्र मूलबिन्दु की ओर नतोदर (Concave To the Origin) होता है। एक उत्पादन–संभावना–वक्र दो वस्तुओं के असंख्य किन्तु वैकल्पिक संयोगों को जोड़ने से बनता है। उत्पादन–संभावना–वक्र पर स्थित एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर दो वस्तुओं के संयोगों में बदलाव होता है। अर्थात् एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर दो वस्तुओं एक वस्तु की मात्रा में कमी व दूसरी वस्तु की मात्रा में वृद्धि होती है। संक्षेप में उत्पादन संभावना वक्र यह बताता है कि एक वस्तु का अधिक उत्पादन करने के लिए किसी दूसरी वस्तु का उत्पादन घटाना पड़ता है अर्थात एक वस्तु को दूसरी वस्तु में बदला जा सकता है। चित्र–1.1 में उत्पादन–संभावना–वक्र या वस्तु–रूपान्तरण वक्र दिखायें गयें हैं। जो मूलबिन्दु की ओर नतोदर (Concave To the Origin) हैं।

अवसर लागत की अवधारणा:–

उत्पादन के संसाधनों, जैसे श्रम, पूँजी इत्यादि, को जब किसी एक वस्तु (माना–मक्खन) के उत्पादन में लगाते (नियुक्त करतें) हैं तो उन संसाधनों को अन्य वस्तुओं (माना–बन्दूकों) के उत्पादन में नहीं लगा सकतें हैं। अर्थात् अन्य वस्तुओं (माना–बन्दूकों) के उत्पादन का अवसर गँवाना/त्यागना पड़ता है। अतः गँवाई/त्यागी गईं वस्तुओं (माना–बन्दूकों) को उत्पादित वस्तुओं (माना–मक्खन) के उत्पादन की अवसर लागत माना जाता है। इस प्रकार एक वस्तु के उत्पादन की अवसर लागत उस वस्तु के उत्पादन के स्थान पर अन्य वस्तु के उत्पादन की गँवाई या त्यागी गईं मात्रा होती है।

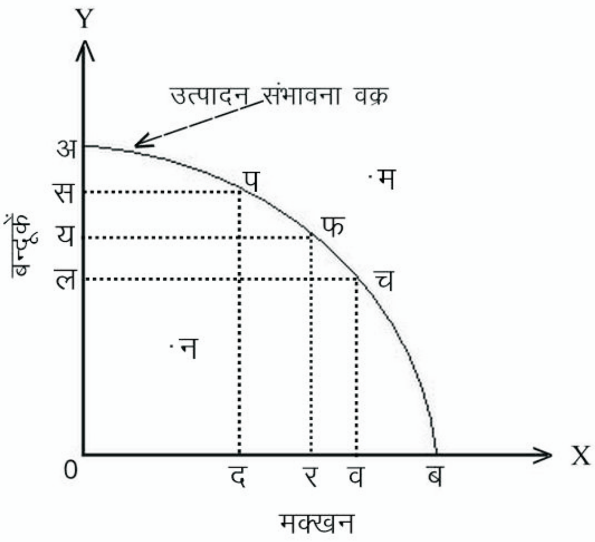

उपर्युक्त चित्रानुसार माना एक अर्थव्यवस्था में उत्पादन के समस्त उपलब्ध संसाधनों, जैसे श्रम व पूँजी के द्वारा o से अ मात्रा बन्दूकों का उत्पादन होता है। इस प्रकार o से ब मात्रा में मक्खन के उत्पादन का अवसर त्यागना पड़ता है। माना उत्पादन प बिन्दु पर o से स मात्रा में बन्दूकों एवं o से द मात्रा में मक्खन का उत्पादन किया जाता है। उत्पादन–संभावना–वक्र के बिन्दु प से फ पर जाने की स्थिति में स – य मात्रा में बन्दूकों के उत्पादन की कमी के बदले में मक्खन का द – र मात्रा में अतिरिक्त उत्पादन किया जाता है। मक्खन की द – र मात्रा में अतिरिक्त उत्पादन की अवसर लागत त्यागी गई बन्दूकों के उत्पादन की स – य मात्रा में कमी होगी।

सीमान्त अवसर लागत की अवधारणा :– उत्पादन के लिए संसाधनों को एक वस्तु के उत्पादन से हटा कर दूसरी वस्तु के उत्पादन की ओर/तरफ मोड़ते हैं। संसाधनों को जब एक वस्तु की एक अतिरिक्त मात्रा का उत्पादन बढ़ाने के लिए दूसरी अन्य वस्तु के उत्पादन में कमी करनी पड़ती है। इस प्रकार एक

रेखाचित्र 1.1

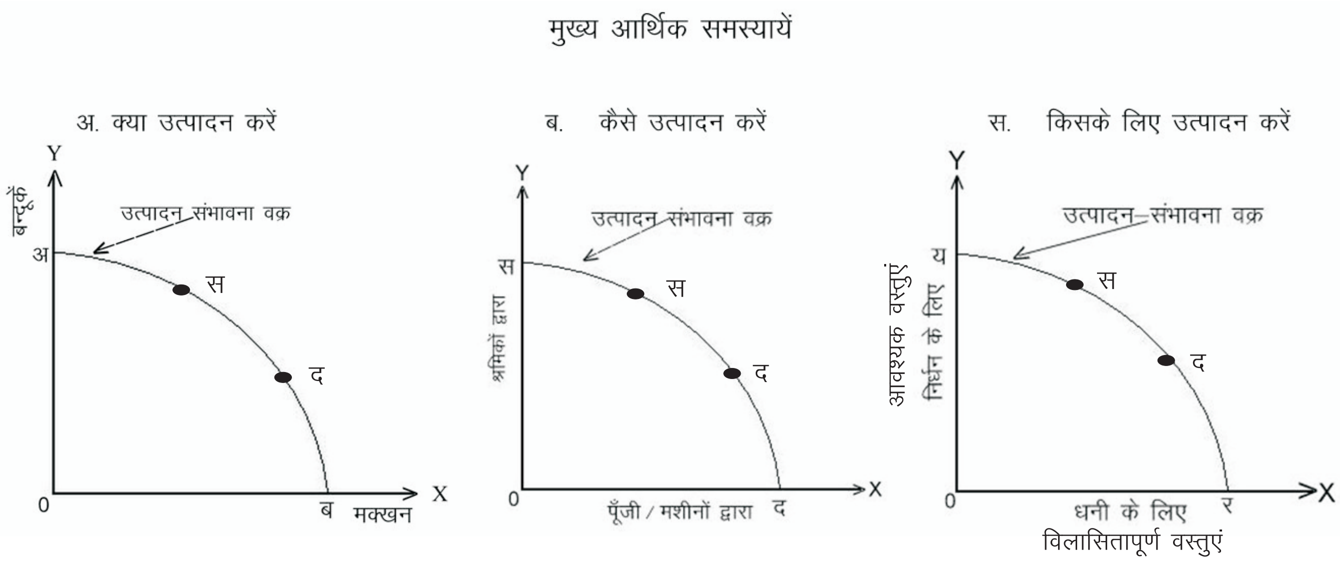

रेखाचित्र चित्र–1.2: उत्पादन–संभावना–वक्रों की सहायता से मुख्य आर्थिक समस्याओं के समाधान

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वस्तु के उत्पादन में कमी करनी पड़ती है। इस प्रकार एक अतिरिक्त मात्रा का उत्पादन बढ़ाने के लिए दूसरी वस्तु के उत्पादन में कमी की जाती है। दूसरी वस्तु के उत्पादन में की गई कमी की मात्रा प्रथम वस्तु की सीमान्त अवसर लागत कहलाती है। जैसे कुछ संसाधनों को कपड़ा उत्पादन से हटा कर, उनके द्वारा खेतों में गेंहू के उत्पादन की ओर/तरफ मोड़ते हैं। माना संसाधनों को मोड़ने के कारण 200 मीटर कपड़े का उत्पादन घट जाता है और 1 क्विण्टल गेंहू के उत्पादन की बढ़ोतरी होती है। इस प्रकार गेंहू (एक वस्तु) के उत्पादन में एक इकाई की वृद्धि करने पर कपड़ा (दूसरी वस्तु) के उत्पादन में 200 इकाई की कमी होती है। अतः गेंहू (एक वस्तु) के उत्पादन की एक अतिरिक्त इकाई की सीमान्त अवसर लागत कपड़ा (दूसरी वस्तु) के उत्पादन में 200 इकाई की कमी को माना जायेगा।

आर्थिक समस्याओं के समाधान, अर्थव्यवस्था के प्रकार–(पूँजीवादी, समाजवादी व मिश्रित) के अनुसार, भिन्न–भिन्न प्रकार से किये जा सकते हैं जो निम्नलिखित है :–

1. क्या उत्पादन किया जाए की समस्या–

पहली बड़ी समस्या उत्पादन की जाने वाली वस्तु के चुनाव की होती है। समस्त उत्पादन के साधनों (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) के द्वारा उत्पादित की जाने वाली वस्तुएँ अलग–अलग प्रकार की होती है।

अतः समस्या 'किन वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करना है' की होती है। यह समाधान अर्थव्यवस्था के प्रकार पर निर्भर करता है। रेखाचित्र 1.2 के खण्ड (अ) के अनुसार इसे समझ सकते हैं। माना दो वस्तुओं–मक्खन व बन्दूकों का उत्पादन करना है। अतः दोनों के उत्पादन की भिन्न–भिन्न मात्रा को समस्त उत्पादन के साधनों द्वारा जैसे–(0 से अ) मात्रा में बन्दूक या (0 से ब) में मक्खन का उत्पादन संभव है। इसी प्रकार वक्र अ–ब पर कोई अन्य मात्रा, जैसे स या द का चुनाव करते हुए 'क्या उत्पादन करे' की समस्या का समाधान किया जाता है।

2. उत्पादन कैसे किया जाए की समस्या–

एक बार उस वस्तु या सेवा का चुनाव हो जाने के बाद दूसरी समस्या उत्पादन के संगठन व तकनीक की होती है। उपर्युक्त रेखाचित्र के खण्ड (ब) के अनुसार माना दो तकनीकों द्वारा उत्पादन किया जा सकता है। अर्थात श्रम अथवा पूँजी (मशीनों के द्वारा) उत्पादन का संगठन व तकनीक का चुनाव करना होता है। श्रम अथवा पूँजी का चुनाव अर्थव्यवस्था के प्रकार पर निर्भर करता है। दूसरी समस्या उत्पादन के संगठन व तकनीक की होती है। उपर्युक्त रेखाचित्र के खण्ड (ब) के अनुसार माना दो तकनीकों द्वारा उत्पादन किया जा सकता है। अर्थात श्रम अथवा पूँजी (मशीनों के द्वारा) उत्पादन का संगठन व तकनीक का चुनाव करना होता है। श्रम अथवा पूँजी का चुनाव अर्थव्यवस्था के प्रकार पर निर्भर करता है। जैसे– श्रम–साधनों की (0 से स) मात्रा द्वारा या (0 से द) मात्रा में पूँजी की भिन्न–भिन्न मात्रा के द्वारा उत्पादन की मात्रा चुनाव करना होता है। साधनों की मात्रा का चुनाव वक्र स–द पर कोई अन्य मात्रा में से करते हुए उत्पादन का निर्णय करना होता है।

3. किसके लिए उत्पादन किया जाए अर्थात वितरण की समस्या– वस्तु या सेवा तथा उत्पादन के संगठन व तकनीक के बाद अगली चुनाव की समस्या का समाधान किया जाता है। तीसरी प्रमुख समस्या उत्पादन के वितरण की होती है। माना समाज के दो समूह – धनी व निर्धन वर्ग में, उत्पादित वस्तुओं व सेवाओं के वितरण का चुनाव करना हो। उपर्युक्त रेखाचित्र के खण्ड (स) की सहायता से इसे समझ सकते हैं। खण्ड (स) के अनुसार वस्तुएँ या सेवाएँ किस वर्ग को व कितनी मात्रा में वितरित करने का चुनाव करना होता है। उत्पादन का (0 से य) मात्रा द्वारा सम्पूर्ण वितरण निर्धन वर्ग को या (0 से र) मात्रा में उत्पादन का सम्पूर्ण वितरण धनी वर्ग को किया जा सकता है। इसी प्रकार वक्र य–र पर कोई अन्य मात्राओं के संयोगों में से दोनो वर्ग को उत्पादन का सम्पूर्ण वितरण का चुनाव कर सकते हैं। अतः उत्पादन के वितरण का चुनाव करने के समाधान भी अर्थव्यवस्था के प्रकार पर निर्भर करता है।

अन्य समस्याएँ:– 4. उत्पादन में साधनों का उपयोग व वितरण की समस्या 5. उत्पादन के साधनों का पूर्ण उपयोग हो रहा है अथवा कुछ साधन बेकार या अर्द्धबेकार है। 6. उत्पादन क्षमता में वृद्धि की समस्या का हल कैसे करें।

ज्ञात रहे कि अर्थशास्त्र व अर्थव्यवस्था का अभिप्राय अलग–अलग होता है। इस बारे में पॉल क्रुगमेन व रोबिन वेल्स ने अर्थशास्त्र व अर्थव्यवस्था को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है– 'एक समाज की उत्पादक–क्रियाओं के लिए समन्वय का एक तन्त्र अर्थव्यवस्था है। अर्थशास्त्र वह सामाजिक–विज्ञान है जो वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन, वितरण व उपभोग का अध्ययन करता है।'

अर्थव्यवस्था

अर्थव्यवस्था का अर्थ किसी देश का वह सामाजिक, राजनैतिक व आर्थिक संगठन, ढाँचा, संरचना या बनावट से होता है। आर्थिक संगठन, ढाँचा, संरचना में लोग वैधानिक तरीकों से आर्थिक–क्रियाएँ कर जीवनयापन करते हैं। अर्थव्यवस्था को सामान्यतः प्राथमिक–क्षेत्र (कृषि व पशुपालन), द्वितीय–क्षेत्र (निर्माण व विनिर्माण) तथा तृतीय–क्षेत्र (सेवाक्षेत्र) के रूप में तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका 1.2

अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याएं	पूँजीवादी	समाजवादी	मिश्रित
क्या उत्पादन करें ?	कीमत प्रणाली (उपभोक्ता) की रुचि व वरीयता को दर्शाता है।	केन्द्रीय योजनाकृत प्राधिकरण	निजी क्षेत्र में कीमत संयंत्र द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र में योजना अधिकारी द्वारा
कैसे उत्पादन करें	कीमत प्रणाली जोकि उत्पादन साधनों की सापेक्षिक कीमतों को दर्शाता है।	देश की सम्पदा को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय योजना प्राधिकरण द्वारा	निजी क्षेत्र उत्पादन लाभ के उद्देश्य से एवं सार्वजनिक क्षेत्र में कल्याण के उद्देश्य से
किसको वितरण करें?	उत्पादन के साधनों के अंश अनुसार, उच्च आय वर्ग का उत्पादन में अधिक अंश	उत्पादन के साधनों की उत्पादकता के सिद्धांत के आधार पर	कीमत संयंत्र एवं सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से

अर्थव्यवस्था के प्रकार

अर्थव्यवस्था के मुख्य तीन प्रकार होते हैं, 1. पूँजीवादी 2. समाजवादी व 3. मिश्रित। मुख्य आर्थिक समस्याओं के समाधान अर्थव्यवस्था के प्रकार पर निर्भर करता है। प्रमुख समाधन निम्न प्रकार से हैः–

सारणी 1.2 से पता चलता है कि मुख्य आर्थिक समस्याओं के अलग–अलग समाधन होते हैं। आर्थिक समस्याओं के अलग–अलग समाधन अर्थव्यवस्था के प्रकार के अनुसार बदलते रहते हैं। जैसे पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में उस वस्तु का उत्पादन किया जाता है जिसकी कीमतें सबसे अधिक होती है। चूँकि ऊँची कीमतों के कारण लाभ अधिकतम होता है। किन्तु समाजवादी अर्थव्यवस्था में उस वस्तु का उत्पादन किया जाता है जिससे अधिकतम आर्थिक–कल्याण समाज को मिले।

इस प्रकार अर्थशास्त्र सामाजिक–विज्ञान की एक शाखा है। सामाजिक–विज्ञान की एक शाखा के रूप में अर्थव्यवस्था में होने वाली आर्थिक क्रियाओं का विश्लेषण किया जाता है। अतः अर्थशास्त्र आर्थिक क्रियाओं व समस्याओं के अध्ययन का विज्ञान है। इसी तरह अर्थशास्त्र एक कला के रूप में उन क्रियाओं, समस्याओं के सर्वोत्तम समाधान खोजने में सहायक होता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

आर्थिक–क्रियाओं से सम्बन्धित आर्थिक–विचारों, सिद्धान्तों व नियमों का साहित्य समृद्ध होकर अर्थशास्त्र के नाम से लोकप्रिय हुआ।

''कृषिपालन, पालयः वाणिज्यम च वार्ताः'' में 'वार्ताः' शब्द का प्रयोग आर्थिक–क्रियाओं के लिए हुआ है।

अर्थशास्त्र की अलग–अलग परिभाषएं प्रमुखत :–

1. धन–प्रधान 2. कल्याण–प्रधान 3. सीमितता–प्रधान 4. विकास–प्रधान व 5. आवश्यकता विहीनता की स्थिति पर आधारित हैं।

'अर्थशास्त्र' व्यक्तियों या देशों के द्वारा साधनों की सीमितता के कारण उत्पन्न चुनाव से सम्बन्धित समस्याओं के अध्ययन का विज्ञान व उनके समाधान की कला है।

सर्वप्रथम सन् 1933 में रेग्नर फ्रिश (Ragner Frisch) ने व्यष्टि–अर्थशास्त्र (Micro-Economics) तथा समष्टि–अर्थशास्त्र (Macro-Economics) का प्रयोग किया।

व्यष्टि–अर्थशास्त्र में व्यक्तिगत इकाई (एक उपभोक्ता, एक उत्पादक व एक फर्म) का अध्ययन कीमत को ध्यान में रख कर किया जाता है।

समष्टि–अर्थशास्त्र (Macro-Economics) में अध्ययन व्यापक अथवा समग्र स्तरों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय–आय के स्तर, रोजगार के स्तर, देश में बचत का स्तर, देश में विनियोग का स्तर, सामान्य कीमत–का स्तर, आर्थिक–वृद्धि व विकास में उतार व चढ़ाव इत्यादि का अध्ययन किया जाता है।

निगमन विधि में सामान्य से विशेष तथा परिकल्पना से तथ्यों की ओर व आगमन–विधि के अन्तर्गत विशेष से सामान्य की ओर तथा तथ्यों से परिकल्पना की ओर अध्ययन किया जाता है। निगमन विधि तर्क–आधारित तथा आगमन–विधि आंकड़ों/समंकों व सांख्यिकी की विधि पर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आधारित होती है।

आर्थिक अध्ययन दो प्रकार की प्रकृति के होते हैं–

1. अर्थशास्त्र विज्ञान के रूप में तथा 2. अर्थशास्त्र कला के रूप में।

प्राकृतिक–विज्ञान के विषयों को प्रयोगशाला में देखकर उन नियमों व सिद्धान्तों की वास्तविकता परख सकते हैं। अर्थशास्त्र एक प्रकार का सामाजिक–विज्ञान होने के कारण इसके नियमों व सिद्धान्तों को किसी प्रयोगशाला में नहीं देख सकते हैं। अर्थशास्त्र व सामाजिक–विज्ञान के लिए तो समाज ही प्रयोगशाला होती है।

आर्थिक–विश्लेषण करते समय कई प्रकार की बातों, दशाओं या शर्तों की मान्यतायें लेते हैं। विभिन्न आर्थिक–नियमों व सिद्धान्तों के खरा उतरने या पूर्णतः सत्य सिद्ध होने के लिए कुछ विशेष बातों, दशाओं या शर्तों की मान्यताओं का पूरा किया जाना आवश्यक होता है।

प्रथम समस्या 'आराम' (Leisure) व 'काम' (Work) के बीच समय के आवंटन की होती है। प्रत्येक व्यक्ति समय के आवंटन के बाद उपलब्ध समस्त साधनों जैसे– (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) के आवंटन द्वारा मुख्य आर्थिक समस्याओं का पता लगाकर उनके समाधान खोजता है।

उत्पादन–संभावना–वक्र मूलबिन्दु की ओर नतोदर एक वक्र होता है जो दो वस्तुओं के असंख्य किन्तु वैकल्पिक संयोगों को जोड़ने से बनता है। उत्पादन–संभावना–वक्र पर स्थित एक बिन्दु से दूसरे बिन्दु पर जाने पर दो वस्तुओं के संयोगों में बदलाव होता है।

एक वस्तु के उत्पादन की अवसर लागत उस वस्तु के उत्पादन के स्थान पर अन्य वस्तु के उत्पादन की गँवाई या त्यागी गईं मात्रा होती है।

एक वस्तु की एक अतिरिक्त मात्रा का उत्पादन बढ़ाने के लिए दूसरी अन्य वस्तु के उत्पादन में कमी प्रथम वस्तु की सीमान्त अवसर लागत कहलाती हैं।

आर्थिक समस्याओं के समाधान, अर्थव्यवस्था के प्रकार–(पूँजीवादी, समजवादी व मिश्रित) के अनुसार, भिन्न–भिन्न प्रकार से किये जा सकते हैं।

पॉल क्रुगमेन व रोबिन वेल्स ने अर्थशास्त्र व अर्थव्यवस्था को निम्न प्रकार स्पष्ट किया है– 'एक समाज की उत्पादक–क्रियाओं के लिए समन्वय का एक तन्त्र अर्थव्यवस्था है। अर्थशास्त्र वह सामाजिक–विज्ञान है जो वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन, वितरण व उपभोग का अध्ययन करता है।'

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. अर्थशास्त्र की धन प्रधान परिभाषा किसके द्वारा दी गई :–
   (अ) एडम स्मिथ (ब) अल्फ्रेड मार्शल
   (स) पाल ए सेम्युलसन (द) कुत्सोयानिस
2. 'वार्ता:' शब्द का प्रयोग किया गया है ?
   (अ) कृषि के लिए (ब) पशुपालन के लिए
   (स) वाणिज्य के लिए (द) उपर्युक्त सभी के लिए
3. व्यष्टि–अर्थशास्त्र का सम्बन्ध है–
   (अ) उत्पादन–साधनों की कीमतों से
   (ब) सेवाओं की कीमतों से
   (स) वस्तुओं की कीमतों से
   (द) उपर्युक्त सभी से
4. समष्टि–अर्थशास्त्र का सम्बन्ध है–
   (अ) राष्ट्रीय–आय, आर्थिक–वृद्धि व विकास से
   (ब) सामान्य कीमत व रोजगार के स्तर से
   (स) कुल बचत व कुल विनियोग के स्तर से
   (द) उपर्युक्त सभी से
5. मुख्य आर्थिक समस्या नहीं है–
   (अ) क्या उत्पादन करें
   (ब) कैसे उत्पादन करें
   (स) किसको उत्पादन का वितरण करें
   (द) निर्धन कैसे बने

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. अर्थशास्त्र क्या है ?
2. व्यष्टि–अर्थशास्त्र क्या है ?
3. समष्टि–अर्थशास्त्र किसे कहते है ?
4. अर्थ–व्यवस्था को कौन–कौन से क्षेत्रों में वर्गीकृत किया जाता है ?
5. पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में निर्णय किस आधार पर लिया जाता है ?
6. समाजवादी अर्थव्यवस्था में निर्णय किस आधार पर लिया जाता है ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. व्यष्टि–अर्थशास्त्र का अध्ययन के प्रमुख क्षेत्र बताइए।
2. समष्टि–अर्थशास्त्र के अध्ययन के मुख्य क्षेत्र कौन–कौन से है?
3. व्यष्टि–अर्थशास्त्र के प्रकार का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।
4. उत्पादन–संभावना वक्र किसे कहते हैं ?
5. अवसर–लागत किसे कहते हैं ?
6. अर्थशास्त्र की निगमन और आगमन विधि का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. सीमितता व चयन के सम्बन्ध को विस्तार से समझाइये।
2. किसी अर्थव्यवस्था की केन्द्रीय समस्याओं का उल्लेख करते हुए इनकी उत्पत्ति के कारणों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. मुख्य आर्थिक समस्याओं को उत्पादन–संभावना वक्र व अवसर–लागत की अवधारणा की सहायता से विस्तारपूर्वक समझाइये।
4. आर्थिक–विश्लेषण की प्रमुख मान्यताओं का विस्तृत वर्णन कीजिए।
5. व्यष्टि एवम् समष्टि–अर्थशास्त्र के अन्तर का विस्तृत वर्णन कीजिए।
6. विस्तारपूर्वक समझाइये कि अर्थशास्त्र विज्ञान व कला दोनो है।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	द	द	द	द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 2

उपभोक्ता का संतुलन
(Consumer's Equilibrium)

प्रस्तावना

एक उपभोक्ता वह है, जो वस्तुओं व सेवाओं को अपनी संतुष्टि के लिए खरीदता है। उसका मुख्य उद्देश्य अपनी आय को विभिन्न वस्तुओं एवं सेवाओं पर इस तरह से खर्च करना होता है ताकि उसे अधिकतम संतुष्टि प्राप्त हो सके।

इस पाठ में उपभोक्ता के व्यवहार को समझाने के लिए दो विश्लेषण, गणनावाचक विश्लेषण (Cardinal Analysis) एवं क्रमवाचक विश्लेषण (Ordinal Analysis) के द्वारा उपभोक्ता के संतुलन को समझाया गया है।

गणनावाचक विश्लेषण का प्रतिपादन मार्शल, पीगू आदि अर्थशास्त्रियों द्वारा किया गया है। इनके अनुसार उपयोगिता मापनीय है। इसकी गणना की जा सकती है। उपयोगिता आत्मनिष्ठ एवं अन्तरावलोकनीय धारणा है। वास्तविक रूप में उपयोगिता को भौतिक रूप से मापना कठिन होता है। इसी उद्देश्य से गणनावाचक विश्लेषण पर सुधार हेतु इसके वैकल्पिक विश्लेषण के रूप में प्रो. जे.आर. हिक्स एवं प्रो आर.जी.डी. ऐलन ने क्रमवाचक विश्लेषण को प्रतिपादित किया। क्रम (अधिमान) पर आधारित तटस्थता वक्र की सहायता से इस दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया।

सर्वप्रथम हम उपयोगिता विश्लेषण जिसे गणनावाचक विश्लेषण भी कहा जाता है, का अध्ययन करेंगे।

उपयोगिता विश्लेषण (गणनावाचक विश्लेषण)

उपयोगिता का अर्थ एवं मापन

उपयोगिता का अर्थ किसी वस्तु या सेवा द्वारा किसी आवश्यकता को संतुष्ट करने की शक्ति से हैं। अर्थशास्त्र में उपयोगिता उस गणितीय स्कोर के रूप में व्यक्त होती है जो एक उपभोक्ता को वस्तुओं एवं सेवाओं के समूह से प्राप्त होती है। दो पुस्तकें खरीदने से प्राप्त संतुष्टि यदि एक कमीज खरीदने से प्राप्त संतुष्टि से अधिक है तो हम कहेंगे कि पुस्तकें एक उपभोक्ता को अधिक उपयोगिता प्रदान करती हैं।

उपयोगिता का मापन इसलिए कठिन है क्योंकि यह मनोवैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। एक वस्तु का उपभोग करने पर एक व्यक्ति को प्राप्त उपयोगिता उसी वस्तु को दूसरे के द्वारा उपभोग करने से प्राप्त उपयोगिता से अलग हो सकती है। अतः किसी वस्तु की उपयोगिता एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, एक स्थान से दूसरे स्थान तथा एक समय से दूसरे समय में भिन्न होती है।

एजवर्थ (1881), एण्टोनेली (Antonelli) (1886) व इरविंग फिशर Irving Fisher(1892) ने बताया कि उपयोगिता को मापा जा सकता है और उपयोगिता विभिन्न वस्तुओं की उपभोग की गई मात्रा पर निर्भर करती है। उपयोगिता फलन को निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है।

$U = f\ (X_1, X_2, X_3, X_i...., X_n)$

यहां पर X_i. i वस्तु की मात्रा है।

यह फलनीय सम्बन्ध है जो एक व्यक्ति की पसन्द (Preference Pattern) को दर्शाता है। यह सामान्यतया प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग होता है।

William Stanly Jevons. (विलियम स्टेन्ले जेवोन्स) Karl Menger (कार्ल मेन्जर), Leon Walras (लिआन वल्रेस) व Alfred Marshall (अल्फ्रेड मार्शल) के अनुसार उपयोगिता का माप उसी तरह से सम्भव है जैसे दूध को लीटर में, ऊँचाई को मीटर में, दूरी को किलोमीटर में, तापक्रम को डिग्री में मापा जा सकता है। इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपयोगिता को Utils (यूटिल्स) के रूप में मापा जा सकता है।

उपयोगिता विश्लेषण की मान्यताएं

उपयोगिता विश्लेषण निम्न प्रमुख मान्यताओं पर आधारित है– (1) उपभोक्ता विवेकशील (Rational) है तथा वह विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता की तुलना करता है, उनकी गणना करता और उनके मध्य चुनाव करता है। (2) उपभोक्ता अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है। (3) इसी के साथ यह माना जाता है कि उपभोक्ता को विभिन्न पसन्दों व चयन की पूर्ण जानकारी होती है (4) उपयोगिता को मुद्रा के रूप में मापा जाता है। (6) मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता स्थिर मानी जाती है।

उपयोगिता और संतुष्टि

एक उपयोगिता को उपभोग करने से पूर्व किसी भी वस्तु की उपयोगिता हो सकती है किन्तु संतुष्टि तो वस्तु के उपभोग करने पर ही प्राप्त होती है। उपयोगिता को आशातित (Expected) और

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

संतुष्टि को प्राप्त (Realised) उपयोगिता कहा जा सकता है। उपयोगिता को यूटिल द्वारा मापा जा सकता है किन्तु संतुष्टि अमापनीय है। उपयोगिता विश्लेषण में यह दोनों शब्द पर्यायवाची माने गये हैं।

उपयोगिता के प्रकार

1. कुल उपयोगिता (Total Utility)

किसी दिए हुए समय में एक वस्तु की विभिन्न इकाइयों के उपभोग से जो कुल संतुष्टि प्राप्त होती है उसे कुल उपयोगिता कहा जाता है।

माना एक उपभोक्ता एक केले का उपभोग करता है और उसे उसके उपभोग से 30 युटिल्स उपयोगिता प्राप्त होती है। तथा उसी समय दूसरे केले का उपभोग करने से उसे 22 युटिल्स की उपयोगिता प्राप्त होती है, जो पहली इकाई के उपभोग से कम है। अतः दो केलों के उपभोग से कुल उपयोगिता =30+22= 52 युटिल्स है।

अतः कुल उपयोगिता की गणना निम्न प्रकार से की जाती है।

$TU_n = U_1 + U_2 ... + U_n$

TU_n = किसी वस्तु की n इकाइयों से प्राप्त कुल उपयोगिता।

U_1 = वस्तु की प्रथम इकाई से प्राप्त उपयोगिता।

U_2 = वस्तु की द्वितीय इकाई से प्राप्त उपयोगिता।

U_n = वस्तु की n इकाई से प्राप्त उपयोगिता।

इस तरह वस्तुओं की इकाईयों के लगातार उपभोग से कुल उपयोगिता एक बिन्दु तक बढ़ती है। प्रायः घटती हुई दर से और फिर किसी एक बिन्दु पर यह अधिकतम हो जाती है। जिस बिन्दु पर कुल उपयोगिता अधिकतम हो जाती है उसे अधिकतम संतोष का बिन्दु (Point of satiety) कहते हैं। यदि उपभोक्ता को अधिकतम संतोष के बिन्दु के बाद भी उस वस्तु का उपभोग जारी करने के लिए बाध्य किया जाए तो उपभोक्ता के लिए कुल उपयोगिता घटने लगती है।

2. सीमान्त उपयोगिता (Marginal Utility)

किसी दिये हुए समय में, उपभोक्ता के द्वारा वस्तु की एक इकाई का उपभोग बढ़ाने से कुल उपयोगिता में आने वाला परिवर्तन सीमान्त उपयोगिता कहलाता है। इसमें अन्य वस्तुओं के उपभोग को स्थिर माना जाता है।

संकेतों के रूप में

$MU_n = TU_n - TU_{n-1}$

यहाँ पर MU_n = n वीं इकाई की सीमान्त उपयोगिता

TU_n = n इकाई की कुल उपयोगिता

TU_{n-1} = (n-1) इकाई की कुल उपयोगिता

सीमान्त उपयोगिता में एक वस्तु के उपभोग में एक इकाई के परिवर्तन (वृद्धि अथवा कमी) का प्रभाव कुल उपयोगिता पर देखा जाता है। यदि उपभोग में परिवर्तन एक इकाई से ज्यादा होने पर सीमान्त उपयोगिता की गणना निम्न प्रकार से की जायेगी–

$$MU_n = \frac{\text{कुल उपयोगिता में परिवर्तन}}{\text{उपभोग मात्रा में परिवर्तन}} = \frac{TU}{Q}$$

कुल उपयोगिता, वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता के योग के भी बराबर होती है।

$TU_n = MU_1 + MU_2 + ... MU_n$

$Tu_n = MU$

कुल उपयोगिता व सीमान्त उपयोगिता का सम्बन्ध

कुल उपयोगिता व सीमान्त उपयोगिता के सम्बन्ध को निम्न तालिका द्वारा समझाया गया है।

तालिका 2.1

केले की मात्रा	कुल उपयोगिता (TU)	सीमान्त उपयोगिता (MU)
0	0	0
1	10	10
2	16	6
3	20	4
4	22	2
5	22	0
6	20	-2

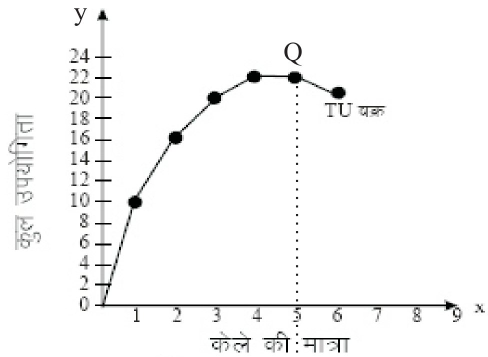

रेखाचित्र 2.1 (अ)

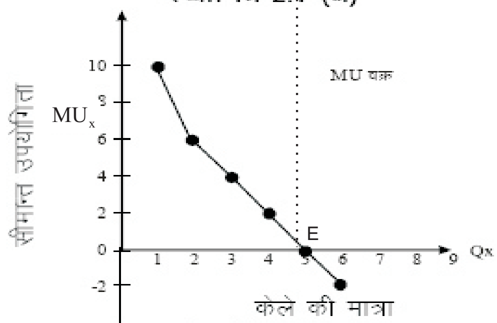

रेखाचित्र 2.1 (ब)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका 2.1 एवं चित्र 2.1 (अ) व 2.1 (ब) से स्पष्ट होता है कि कुल उपयोगिता व सीमान्त उपयोगिता में निम्न सम्बन्ध पाया जाता है।

1. जिस बिन्दु पर कुल उपयोगिता अधिकतम होती है वहां सीमान्त उपयोगिता शून्य के बराबर होती है इस बिन्दु को उपभोक्ता का संतृप्ति बिन्दु (satiety point) कहते है (चित्र में दर्शाया गया बिन्दु Q)। इस बिन्दु के प्राप्त होने से पूर्व सीमान्त उपयोगिता धनात्मक बनी रहती है। जबकि कुल उपयोगिता बढ़ती है लेकिन कुल उपयोगिता में वृद्धि की दर उत्तरोतर घटती रहती है।
2. संतृप्ति बिन्दु से आगे भी यदि उपभोक्ता वस्तु के उपभोग को बढाना जारी रखता है तो सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है और कुल उपयोगिता घटने लगती है।

चित्र 2.1 (ब) में X अक्ष पर केले की संख्या को दर्शाया गया है तथा Y अक्ष पर केले के उपभोग से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता को दर्शाया गया है।

चित्र 2.1 (ब) में सीमान्त उपयोगिता वक्र का ढ़ाल बाएं से दाएं गिरता हुआ दिखाया गया है जो यह बताता है कि X वस्तु के उत्तरोत्तर उपभोग पर सीमान्त उपयोगिता गिरने लगती है और केले की 5 इकाई के उपभोग पर सीमान्त उपयोगिता शून्य के बराबर हो जाती है। यह चित्र में E बिन्दु के द्वारा निरूपित किया गया है। इसके उपरान्त केले के उपभोग पर सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक होने लगती है।

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of diminishing marginal utility)

इस नियम का प्रतिपादन 1854 में गौसेन ने किया इसलिए जेवन्स द्वारा इस नियम को गोसन का प्रथम नियम कहते हैं। इस नियम की विस्तृत व्याख्या मार्शल ने की।

नियम का अर्थ एवं परिभाषा

सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम एक सार्वभौमिक (universal) नियम है। यह नियम उपभोक्ता के उस व्यवहार पर आधारित है जिसमें उपभोक्ता द्वारा किसी वस्तु की ज्यादा से ज्यादा इकाई उपभोग करने पर अतिरिक्त उपभोग की जाने वाली वस्तुओं की इकाइयों की सीमान्त उपयोगिता उत्तरोतर घटती (गिरती) जाती है।

मार्शल के अनुसार "एक वस्तु के स्टॅाक में वृद्धि होने से व्यक्ति को जो अतिरिक्त संतुष्टि प्राप्त होती है वह भण्डार में हुई प्रत्येक वृद्धि से कम होती जाती है।"

उपभोक्ता किसी वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए करता है तो अतिरिक्त इकाइयाँ उसके लिए कम उपयोगी होने लगती है। अगर यह प्रक्रिया कुछ समय तक चलती रहती है, तो एक स्थिति वह आती है जब उपभोक्ता को उस वस्तु की अतिरिक्त इकाइयों का उपभोग करने से अतिरिक्त संतुष्टि नहीं मिलती है। अगर उपभोक्ता इस स्थिति के बाद भी इस वस्तु का उपभोग जारी किए रखता है तो इस वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता ऋणात्मक हो जाती है। अर्थशास्त्री इस प्रवृत्ति को सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम (Law of diminishing marginal utility) द्वारा अभिव्यक्त करते हैं।

नियम की मान्यताएँ (Assumptions of law)

1. उपभोक्ता का व्यवहार विवेकशील (Rational) माना जाता है। उपभोक्ता आर्थिक व्यक्ति होता है।
2. उपयोगिता मापनीय है और इसके लिए मुद्रा का उपयोग किया जाता है।
3. मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता को स्थिर माना जाता है।
4. उपभोग की गई वस्तु की इकाइयाँ उचित आकार एवं गुणों की दृष्टि से समरूप होनी चाहिए।
5. उपभोग की प्रक्रिया सतत (Continuously) होती है।
6. उपभोक्ता की आय, आदतें रुचि तथा फैशन में दिए हुए समय में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

नियम के लागू होने के कारण

प्रो. बोल्डिंग के अनुसार यह नियम दो कारणों से लागू होता है :–

1. विभिन्न वस्तुएँ एक दूसरे की अपूर्ण स्थानापन्न है। इसलिए एक वस्तु के उपभोग को बढ़ाने से सीमान्त उपयोगिता घटने लगती है।
2. विशिष्ट आवश्यकताओं की तृप्ति हो सकती है (All wants are satiable.) हम किसी भी वस्तु का उपभोग कितना भी बढायें एक स्तर के बाद उसका उपभोग और नहीं बढ़ाया जा सकता जैसे एक बिन्दु के बाद नमक का उपभोग बंद करना होता है।

इस नियम की व्याख्या हेतु तालिका 2.1 एवं चित्र 2.1 (ब) का प्रयोग किया जा सकता है।

नियम का महत्व

1. उपयोगिता ह्रास नियम द्वारा मांग का नियम, सम–सीमान्त उपयोगिता नियम आदि नियमों की व्युत्पत्ति होती है।
2. इस नियम का उपयोग सार्वजनिक वित्त में किया जाता है। हम जानते हैं कि धनवान के लिए मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता कम और गरीब के लिए यह अधिक होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अतः अमीरों पर कर लगाकर उस राशि को गरीबों पर खर्च करने से सामाजिक कल्याण बढ़ता है।

3. इस नियम की सहायता से हीरा–पानी विरोधाभास की व्याख्या की गई है। इसके अनुसार पानी जो जीवन के लिए अत्यावश्यक है वह काफी सस्ता होता है जबकि हीरा जो कि जीवन के लिए आवश्यक नहीं है काफी महंगा होता है।

हीरा–पानी विरोधाभास

इस विरोधाभास को समझने के लिए पानी जो जीवन के लिए आवश्यक है उसकी कुल उपयोगिता (TU) हीरों से प्राप्त कुल उपयोगिता से ज्यादा होती है जबकि किसी वस्तु के लिए दी जाने वाली कीमत उस वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता (MU) पर निर्भर करती है न कि कुल उपयोगिता (TU) पर।

चूंकि हम पानी का बहुतायत में प्रयोग करते हैं। अतः पानी की अन्तिम इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता (MU) बहुत ही कम होती है। अतः पानी की इस अन्तिम इकाई के उपभोग के लिए हम बहुत कम कीमत देने को उद्यत रहते हैं। चूंकि पानी की सब इकाइयाँ एक जैसी होती है अतः पानी की दूसरी अन्य इकाइयों के लिए भी हम कम कीमत चुकाते हैं जबकि हीरा अल्प मात्रा में पाया जाता है। अतः हीरे की अन्तिम इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बहुत अधिक होती है। अतः हम इस हीरे की अन्तिम इकाई के लिए अधिक कीमत अदा करते हैं।

सम सीमान्त उपयोगिता नियम एवं उपभोक्ता का संतुलन

साम्य से तात्पर्य विश्राम की स्थिति और न बदलने की प्रवृत्ति होती है। एक उपभोक्ता जब संतुलन की स्थिति में होता है तब वह अपने उपभोग के स्तर को नहीं बदलता है अर्थात उसे उस स्थिति में अधिकतम संतुष्टि मिलती है।

एक मात्र वस्तु के उपभोग के समय यदि उपभोक्ता एक वस्तु को खरीद सकता है या अपनी मौद्रिक आय को अपने पास रख सकता है। गणनावाचक दृष्टिकोण में उपभोक्ता के संतुलन के लिए यह आवश्यक है कि X वस्तु की सीमान्त उपयोगिता (MU_x), X वस्तु की बाजार कीमत (P_x), के बराबर होगी।

अर्थात $MU_x = P_x$

अगर X वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता (MU_x), X वस्तु की कीमत (P_x) से अधिक हो तो उपभोक्ता X की अधिक मात्रा खरीद कर अपने कल्याण को अधिक कर सकता है। इसी तरह यदि X वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता (MU_x), X की कीमत (P_x) से कम हो तो व्यक्ति X वस्तु से अपने कल्याण को अधिकतम करने के लिए X की खरीद की मात्रा कम कर सकता है। अतः उपभोक्ता अपनी उपयोगिता अधिकतम करने के लिए शर्त $MU_x = P_x$ को पूर्ण करेगा। वास्तविक जीवन में एक उपभोक्ता एक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करता है। ऐसी स्थिति में समसीमान्त उपयोगिता नियम आय के अनुकूलतम आंवटन में मदद करता है। सम सीमान्त उपयोगिता नियम को कई और नामों से जाना जाता है जैसे गौसेन का द्वितीय नियम, प्रतिस्थापन का नियम, आमदनी के आवंटन का नियम, अधिकतम संतोष का नियम आदि।

सरल शब्दों में इस नियम को हम इस तरह व्यक्त कर सकते हैं कि एक उपभोक्ता को विभिन्न वस्तुओं पर अपना व्यय इस तरह से करना चाहिए कि प्रत्येक दिशा में व्यय की अंतिम इकाई से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता बराबर या लगभग बराबर हो जाए। ऐसा करने से ही उपभोक्ता अपनी संतुस्टि अधिकतम कर सकेगा या संतुलन में होगा।

अगर उपभोक्ता एक से अधिक वस्तुओं का उपभोग करता है तो उपभोक्ता के संतुलन की शर्त निम्नानुसार दी जायेगी।

$$\frac{MU_x}{P_x} = \frac{MU_y}{P_y} = \dots \frac{MU_n}{P_n}$$

मुद्रा की एक अतिरिक्त इकाई के खर्च करने से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता सभी वस्तुओं के लिए समान होगी।

अगर उपभोक्ता एक वस्तु पर खर्च करने से अधिक उपयोगिता प्राप्त करता है तो वह अपना कल्याण अधिक करने के लिए उस पर अधिक खर्च करेगा व अन्य वस्तुओं के उपभोग पर तब तक कम करता रहेगा जब तक उपरोक्त शर्त पूरी न हो जाए।

उपरोक्त शर्त के साथ आमदनी के प्रतिबन्ध की शर्त भी उपभोक्ता के संतुलन के लिए आवश्यक है।

$X.P_x + Y.P_y = M$

इस शर्त के अनुसार उपभोक्ता के द्वारा X वस्तु पर किया गया खर्च अर्थात $X.P_x$ तथा Y वस्तु पर किया गया खर्च $Y.P_y$, उपभोक्ता की आय M के बराबर होगा।

सीमान्त उपयोगिता विश्लेषण में उपभोक्ता के संतुलन को निम्न तालिका 2.2 के माध्यम से समझाया जा सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तालिका 2.2 सीमान्त उपयोगिता की इकाइयाँ

वस्तुओं की मात्रा (किलोग्राम में)	केले 30 रुपये प्रति किलोग्राम	सेव 90 रुपये प्रति किलोग्राम
1	385	1150
2	355	1035
3	300	985
4	270	900
5	200	840
6	185	730

हम केला व सेव दो वस्तुएँ लेते है जिनकी कीमतें क्रमशः 30 रुपये प्रति किलोग्राम व 90 रुपये प्रति किलोग्राम है और एक उपभोक्ता को 450 रुपये व्यय करने है। हम केले को तीन किलोग्राम लेते हैं जिसकी सीमान्त उपयोगिता 300 इकाई है। और कीमत 30 रुपये प्रति किलोग्राम है। अतः केले से इस बिन्दु पर प्रति

रुपये सीमान्त उपयोगिता $\frac{300}{30} \quad 10$ है।

तालिका 2.2 में सेव को चार किलोग्राम लेते हैं जिसकी सीमान्त उपयोगिता 900 इकाई है। और कीमत 90 रुपये प्रति किलोग्राम है। अतः केले के इस बिन्दु पर प्रति रुपये सीमान्त

उपयोगिता $\frac{900}{90} \quad 10$ है।

अतः दो वस्तुओं के लिए संतोष को अधिकतम करने की

आवश्यक शर्त $\frac{MU_x}{P_x} \quad \frac{MU_y}{P_y}$ के लागू होने के लिए

उपभोक्ता 3 किलोग्राम केले व 4 किलोग्राम सेव लेता है। अर्थात उपभोक्ता के संतुलन की प्रथम शर्त यही है जब उपभोक्ता 3 किलाग्राम केला व 4 किलोग्राम सेव का उपभोग करता है।

उपभोक्ता के संतुलन की द्वितीय शर्त के लिए

$X.P_x + Y.P_y = M$

अतः $3 \times 30 + 4 \times 90 = 450$ ₹

$90 + 360 = 450$ ₹

अतः इस उदाहरण के द्वारा उपभोक्ता के संतुलन की दोनों शर्तें सिद्ध होती है।

नियम की सीमाएँ

1. यह नियम इस मान्यता पर आधारित है कि उपभोक्ता को वैकल्पिक पसन्द की पूर्ण जानकारी होती है। वास्तविकता में उपभोक्ता दूसरे वैकल्पिक चयन के बारे में अनभिज्ञ होता है।
2. इस नियम में उपभोक्ता को विवेकशील माना गया है जो व्यवहार में सही नहीं पाया जाता है। उपभोक्ता को सीमान्त उपयोगिता की तुलना में काफी गणना करनी पडती है जो उसके लिए काफी मुश्किल होता है। उपभोक्ता के व्यय पर उसकी आदत व विज्ञापन आदि का प्रभाव भी पड़ता है तथा साथ ही उपभोक्ता दूसरों की देखदेखी करके भी वस्तुएँ क्रय करता है। यह सब बातें बताती हैं कि उपभोक्ता जरूरी नहीं है कि विवेकशील ही हो।
3. ऐसा माना जाता है कि सभी वस्तुएँ विभाज्य है, जबकि वास्तविकता में मकान अथवा कार जैसे वस्तुएँ अविभाज्य होती है। इनकी निश्चित मात्राएँ ही खरीदी जा सकती है। एक दिए हुए समय में एक कार या दो कारें खरीदी जा सकती है न कि $1\frac{1}{2}$ कार।
   अतः वस्तुओं की अविभाज्यता के कारण सम सीमान्त उपयोगिता नियम के पालन में काफी कठिनाई आती है।
4. यह नियम उपयोगिता को मापे जाने तथा मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के स्थिर होने पर आधारित है जो कि अवास्तविक मान्यताएँ है। अतः हिक्स ने इन दोनों मान्यताओं का खण्डन किया है तथा उपभोक्ता के संतुलन को तटस्थता वक्रों की सहायता से समझाया है।
5. बजट अवधि का अनिश्चित होना इस नियम के प्रतिपादन में बाधा है। प्रायः बजट अवधि एक वर्ष की मानी जाती है। जबकि टिकाऊ वस्तुओं का उपभोग दूसरी बजट अवधि में भी जारी रहता है। अतः ऐसी वस्तुओं से कई वर्षों में प्राप्त होने वाले लाभ की तुलना में दूसरी वस्तु के इस वर्ष के लाभ से करनी होती है।

सम सीमान्त उपयोगिता नियम का महत्व

सम सीमान्त उपयोगिता नियम अर्थशास्त्र के उपभोग, उत्पादन, विनिमय व वितरण सभी क्षेत्रों में लागू होता है। हमने पूर्व में देखा है कि कैसे उपभोक्ता अपनी सीमित आय को खर्च कर सम सीमान्त उपयोगिता नियम से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त करता है।

इस तरह से एक उत्पादक अपने सीमित साधनों से उत्पादन को अधिकतम करने में यह इस नियम को प्रयोग में लाता है। ऐसा करने पर वह प्रति इकाई उत्पादन की लागत कम करता है

इस नियम का प्रयोग व्यापक है। इसके अतिरिक्त इस नियम का प्रयोग विनिमय, वितरण, सार्वजनिक क्षेत्र में भी किया जाता है। बचत और उपभोग के मध्य निर्णय भी इस नियम के प्रयोग द्वारा किया जा सकता है।

इस प्रकार उपयोगिता विश्लेषण में यह नियम यद्यपि

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

महत्वपूर्ण है किन्तु उपयोगिता की गणना करना सम्भव नहीं होता है। अतः आगे हिक्स व ऐलन द्वारा प्रतिपादित क्रमवाचक दृष्टिकोण का अध्ययन करेंगे।

तटस्थता वक्र विश्लेषण एवं उपभोक्ता का संतुलन

आधुनिक अर्थशास्त्रियों का मानना है कि उपयोगिता एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है और उन्होंने गणनावाचक विश्लेषण को नकारा है। गणनावाचक विश्लेषण कई अव्यवहारिक मान्यताओं पर आधारित है।

कई अर्थशास्त्री जैसे : यूगेन स्ल्ट्सकी, विल्फ्रेडो पेरेटो, जॉन आर हिक्स व आर.डी.एलन ने बताया कि एक उपभोक्ता उपयोगिता का माप नहीं कर सकता है। इनके अनुसार उपयोगिता एक वैयक्तिक विचार है, तथा इसका मात्रात्मक मापन सम्भव नहीं है। एक वस्तु से प्राप्त उपयोगिता विभिन्न व्यक्तियों के लिए भिन्न भिन्न होती है। एक व्यक्ति के लिए किसी वस्तु से प्राप्त उपयोगिता विभिन्न समय पर विभिन्न होती है। अतः आधुनिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार उपभोक्ता उपयोगिता का ठीक–ठीक मापन नहीं कर सकता है। लेकिन उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता के आधार पर विभिन्न वस्तुओं को कोटि प्रदान कर सकता है। इसमें विभिन्न संयोगों को क्रम से जमाया जा सकता है।

क्रमवाचक विश्लेषण (Ordinal Analysis), गणनावाचक विश्लेषण की तुलना में कम प्रतिबन्धित मान्यताएँ मानता है। क्रमवाचक विश्लेषण में इस बात पर ज्यादा महत्व नहीं दिया जाता है कि विभिन्न वस्तुओं से प्राप्त उपयोगिता का सापेक्ष माप क्या है। इसके अनुसार यह ही काफी है कि उपभोक्ता को सेव अनार की तुलना में ज्यादा संतुष्टि प्रदान करती है। उपयोगिता की इसके लिए मात्रा जानना जरूरी नहीं होता है।

तटस्थता वक्र का अर्थ

क्रमवाचक विश्लेषण (Ordinal Analysis) तटस्थता वक्रों का उपयोग करता है। अतः इस हेतु तटस्थता वक्र को परिभाषित किया जाता है।

तटस्थता वक्र की सहायता से उपभोक्ता की प्राथमिकताओं (consumer's preferences) को ग्राफ से समझाया जा सकता है।''

''एक तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के विभिन्न संयोग बतलाता है, जो एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करते हैं।''

तटस्थता अनुसूची एवं वक्र

एक तटस्थता वक्र को बनाने के लिए एक तटस्थता अनुसूची होनी चाहिए जो X व Y वस्तुओं के विभिन्न संयोग बताती है जिसमें उपभोक्ता तटस्थ रहता है।

तालिका 2.3

संयोग	X	Y	संतुष्टि
पहला	1	25	x
दूसरा	2	20	x
तीसरा	3	16	x
चौथा	4	13	x
पांचवा	5	11	x
छठवा	6	10	x

उपरोक्त तालिका से निम्नानुसार तटस्थता वक्र बनाया जा सकता है

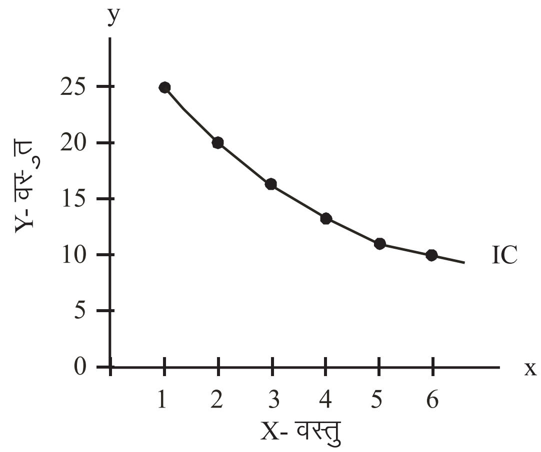

रेखाचित्र 2.2

तटस्थता मानचित्रः—

एक तटस्थता वक्र एक विशेष संतुष्टि के स्तर को बतलाता है और एक चित्र में कई तटस्थता वक्र जो विभिन्न संतुष्टि स्तर को बतलाते हैं। एक साथ बनाये जाते हैं तो हमें तटस्थता मानचित्र प्राप्त होता है। सबसे निचला तटस्थता वक्र सबसे कम संतुष्टि के स्तर को बताता है। जैसे जैसे हम उँचे तटस्थता वक्र की ओर बढ़ते है तो उँचे तटस्थता वक्र उँचे संतुष्टि स्तर को बताते हैं।

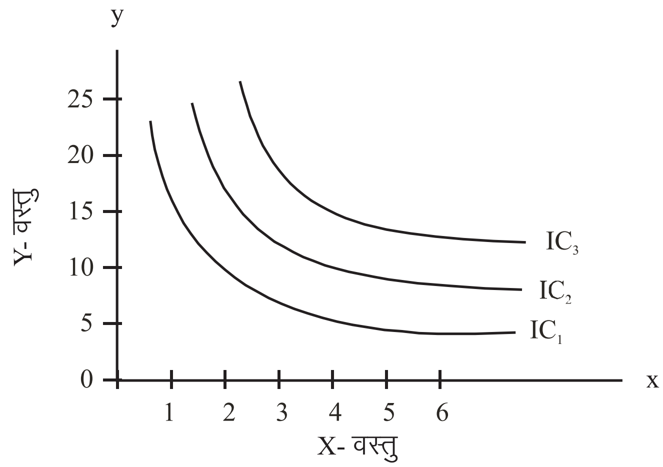

रेखाचित्र 2.3

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तटस्थता वक्र का गणितीय रूप

संकेतों के रूप में तटस्थता वक्र निम्न समीकरण द्वारा दिया जाता हैं– $U = f(X_1, X_2, X_3 ...., X_n) = k$

यहां पर k एक स्थिर राशि है।

यदि हमारे विचार में दो वस्तुएँ X व Y है तो तटस्थता वक्र इन दोनों वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को बताएगा जो एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि देता है।

$U = f(X, Y)$

यहां पर U सन्तुष्टि के स्तर को क्रमवाचक रूप में बताता है। किसी एक विशेष तटस्थता वक्र के लिए U एक स्थिर राशि माना कि U_1 है तब $U_1 = f(X,Y)$

U को विभिन्न माप देने पर अलग अलग तटस्थता वक्र प्राप्त होते है। एक उँचा तटस्थता वक्र ज्यादा उपयोगिता व ज्यादा संतुष्टि को बताता है जबकि निचला तटस्थता वक्र कम उपयोगिता व कम संतुष्टि को बताता है। चित्र में तटस्थता वक्रों के समूह को बनाया गया है–

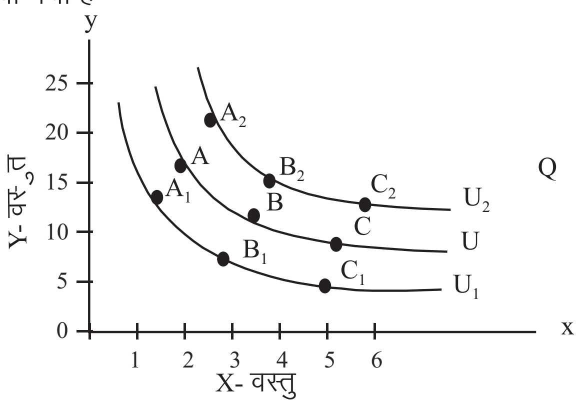

रेखाचित्र 2.4

उपरोक्त चित्र में X वस्तु को X अक्ष पर तथा Y वस्तु को Y अक्ष पर दर्शाया गया है और किसी एक तटस्थता वक्र पर X वस्तु व Y वस्तु के विभिन्न संयोग समान संतुष्टि या समान उपयोगिता को दर्शाते हैं। यदि X व Y का एक संयोग U_1 से ज्यादा संतुष्टि के स्तर को बताता है तो वह उँचे तटस्थता वक्र U_3 पर स्थित रहेगा। और यदि X व Y का एक संयोग U_1 से कम संतुष्टि देता है तो वह नीचे तटस्थता वक्र U_2 पर स्थित हो सकता है।

चित्र में बिन्दु A, B व C एक ही तटस्थता वक्र U_1 पर स्थित है और एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करते हैं।

बिन्दु A′, B′ व C′ उँचे संतुष्टि के स्तर U_2 को बताते हैं और उँचे तटस्थता वक्र पर स्थित है। इसी तरह U_3 पर स्थित X व Y के संयोग U_1 व U_2 की तुलना में कम संतुष्टि या कम उपयोगिता को प्रदर्शित करते हैं। एक उपभोक्ता एक तटस्थता वक्र के विभिन्न संयोगों में तटस्थ होता है लेकिन वह नीचे तटस्थता वक्र की तुलना में ऊँचे तटस्थता वक्र को प्राथमिकता देगा।

तटस्थता वक्र विश्लेषण की मान्यताएं (Assumption of indiffernce curve analysis)

1. विवेकशीलता (Rationality) - उपभोक्ता को विवेकशील माना जाता है अर्थात उपभोक्ता के आय स्तर व विभिन्न वस्तुओं की कीमतों के ज्ञात होने पर वह अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है और यह भी माना जाता है उपयोगिता को अधिकतम करने हेतु उसे सभी संबंधित सूचनाओं की पूर्ण जानकारी होती हैं।
2. उपयोगिता क्रमवाचक है:– यह सत्य माना जाता है कि उपभोक्ता विभिन्न वस्तुओं के वस्तु समूहों को अपनी पसंद के अनुसार श्रेणीबद्व(Rating) कर सकता हैं।
3. पसन्द संगतियुक्त :– उपभोक्ता का व्यवहार संगतियुक्त माना जाता है। अर्थ है कि यदि उपभोक्ता A को B की तुलना में B को C की तुलना में पसन्द करता है तो वह A को C की तुलना में पसन्द करेगा।
4. उपभोक्ता की कुल उपयोगिता विभिन्न वस्तुओं की उपभोग की गई मात्रा पर निर्भर करता है।
   $U = f(Q_1, Q_2, ..., Q_n)$
5. तटस्थता वक्र विश्लेषण में प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को घटती हुई माना जाता है। इसी मान्यता के आधार पर तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर (convex to the origin) होते हैं। तटस्थता वक्र का ढ़ाल प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को दर्शाता है।

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (Marginal rate of substitition) Y वस्तु के लिए X वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y वस्तु की वे मात्राएं होती है जो X वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए त्यागी जाती है ताकि कुल संतुष्टि का स्तर समान रखा जा सके।

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को निम्न तालिका 2.4 व चित्र 2.5 से भी समझाया जा सकता है।

तालिका 2.4

X वस्तु	Y वस्तु	MRS= y/ x
1	25	—
2	20	5y:1x
3	18	2y:1x
4	17	1y:1x

अत:तटस्थता वक्र के बांयी से दांयी ओर चलने पर प्रतिस्थपन की सीमान्त दर घटती हैं प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के घटने से ही तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

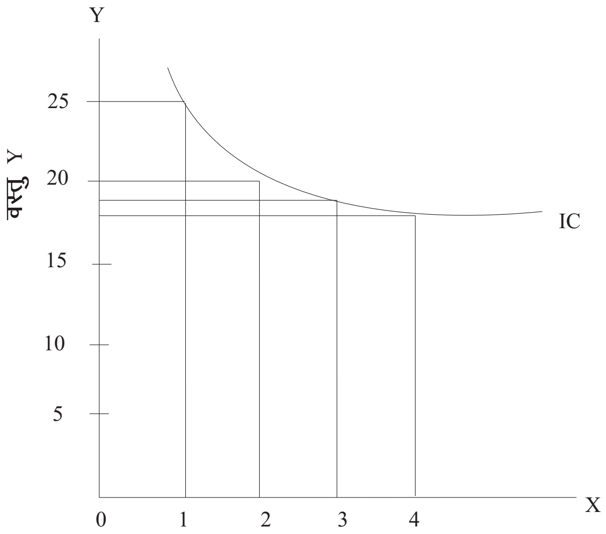

रेखाचित्र 2.5 वस्तु X

जब उपभोक्ता तटस्थता वक्र के A बिन्दु से B बिन्दु तक पहुंचता है तब वह एक इकाई X की अतिरिक्त प्राप्त करने के लिए Y वस्तु की 5 इकाइयों का त्याग करता है। अतः MRSxy, 5y:1x होगी। इसी तरह तटस्थता वक्र के B बिन्दु से C बिन्दु तक पहुंचने के लिए MRSxy, 2y:1x होगी। अतः MRSxy घटती हुई होती है।

तटस्थता वक्रों की विशेषताएं

(1) तटस्थता वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है – ये बाएं से दाएं नीचे की ओर झुके होते हैं। इसका कारण यह है कि अगर उपभोक्ता को समान संतुष्टि के स्तर पर रहना है तो किसी एक वस्तु की मात्रा को घटाने पर ही वह अन्य वस्तु के उपभोग को बढा सकता है। तटस्थता वक्र न तो क्षैतिज सरल रेखा न ही लम्बवत सरल रेखा होते हैं। तटस्थता वक्र न ही धनात्मक ढाल वाले होते हैं।

रेखाचित्र 2.6 (क) के अनुसार तटस्थता वक्र क्षैतिज नहीं होते हैं। चित्र में A बिन्दु OX_1-X वस्तु की मात्रा व OY_1-Y वस्तु की मात्रा के संयोग को बताता है जबकि B बिन्दु OX_2-X वस्तु की मात्रा व OY_1-Y वस्तु की मात्रा के संयोग को बताता है अगर A बिन्दु से सूचित बंडल को B बिन्दु से सूचित बंडल की तुलना करें तो हम पाएंगे कि B बिन्दु के उपलब्ध होने पर उपभोक्ता B बिन्दु द्वारा दिखाये गये बंडल का चयन करेगा क्योंकि यहां उसे X वस्तु की मात्रा A बिन्दु द्वारा दिखाये गये बंडल से ज्यादा मिलती है। अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि A बिन्दु व B बिन्दु पर संतुष्टि का स्तर समान नहीं है। अतः तटस्थता वक्र क्षैतिज सरल रेखा के नहीं होते हैं।

रेखाचित्र 2.6 (ख) के अनुसार तटस्थता वक्र लम्बवत नहीं होते हैं। चित्र में A बिन्दु द्वारा दिखाये गये बंडल में X की OX_1 मात्रा तथा Y की OY_1 मात्रा है। तथा B बिन्दु पर दिखाए गए बंडल में X की OX_1 मात्रा तथा Y की OY_2 मात्रा है। अगर

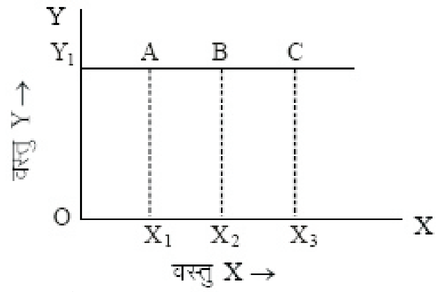

रेखाचित्र 2.6 (क)

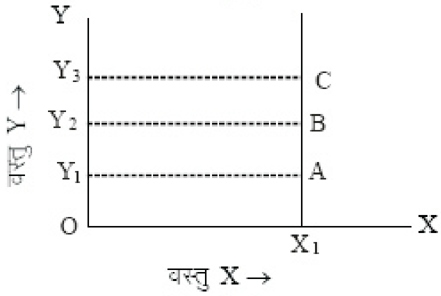

रेखाचित्र 2.6 (ख)

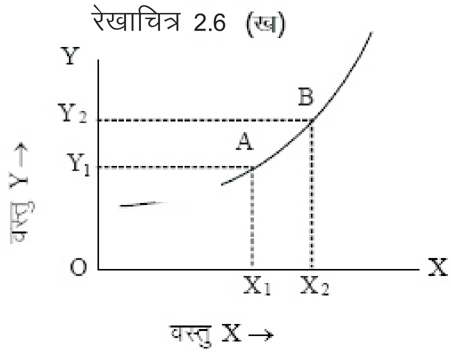

रेखाचित्र 2.6 (ग)

उपभोक्ता को A बिन्दु द्वारा दिए गए बंडल व B बिन्दु द्वारा दिए गए बंडल में से चयन करना है तो वह B बिन्दु का चयन करेगा। क्योंकि यहां उपभोक्ता को Y की मात्रा A बिन्दु की तुलना में अधिक मिलती है। अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि A बिन्दु व B बिन्दु पर संतुष्टि का स्तर समान नहीं है अतः तटस्थता वक्र लम्बवत नहीं होंगे।

रेखाचित्र 2.6 (ग) के अनुसार तटस्थता वक्र ढाल लिए नहीं होते हैं। चित्र में A बिन्दु द्वारा दिए गए बंडल की तुलना में उपभोक्ता B बिन्दु द्वारा दिए गए बंडल को पसंद करेगा क्योंकि B बिन्दु पर X की OX_2 मात्रा तथा Y की OY_2 मात्रा, A बिन्दु पर X की OX_1 मात्रा तथा Y की OY_1 मात्रा, से अधिक है। अतः इससे निष्कर्ष निकलता है कि A बिन्दु व B बिन्दु पर संतुष्टि का स्तर समान नहीं है अतः तटस्थता वक्र ऊपर की ओर धनात्मक ढाल लिए नहीं होंगे।

(2) तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर (Convex to the Origin) होते हैं– तटस्थता वक्र की यह विशेषता, घटती प्रतिस्थापन की सीमान्त दर के कारण होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

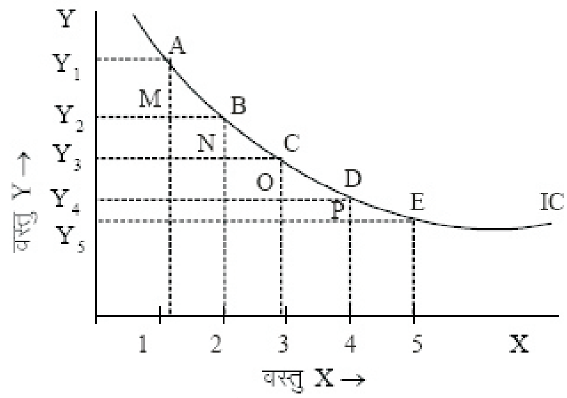

रेखाचित्र 2.7

2.7 चित्रानुसार X वस्तु की 2 इकाई मात्रा प्राप्त करने के लिए Y वस्तु की AM मात्रा का परित्याग करना पडता है। X वस्तु की 3 इकाई मात्रा प्राप्त करने के लिए Y वस्तु की BN मात्रा का परित्याग करना पड़ता है। जैसे जैसे उपभोक्ता के पास X वस्तु की अधिक मात्रा होती जाती है वैसे वैसे उपभोक्ता Y वस्तु की छोड़ने की मात्रा कम करता है। यह घटती हुई सीमान्त प्रतिस्थापन की दर के कारण होता है।

(3) तटस्थता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते हैं–

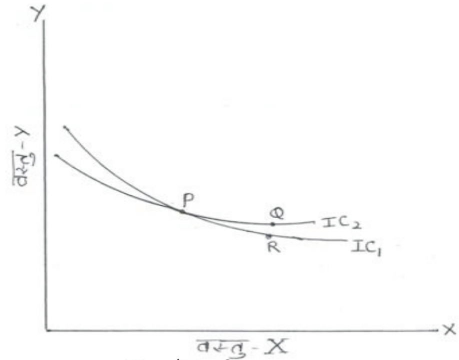

रेखाचित्र 2.8

चित्रानुसार माना दो तटस्थता वक्र IC_1 एवं IC_2 दोनों एक दूसरे को काटते हैं। P व R बंडल तटस्थता वक्र एक पर होने के कारण समान संतुष्टि को बताते हैं अर्थात उपभोक्ता P व R बंडल में तटस्थ है। अर्थात P=R

P व Q बंडल तटस्था वक्र दो पर होने के कारण समान संतुष्टि को बताते हैं उपभोक्ता इन दोनों बंडल में तटस्थ हैं अतः P=Q

इसका अर्थ यह हुआ कि Q=R अर्थात Q व R के बीच में उपभोक्ता तटस्थ होना चाहिए। ऐसा संभव नहीं है क्योंकि Q बिन्दु R बिन्दु से उपर हैं। अतः ये सिद्ध होता है कि दो तटस्थता वक्र एक दूसरे को नहीं काटते हैं।

बजट रेखा

तटस्थता वक्रों की जानकारी से उपभोक्ता यह निश्चित नहीं कर सकता है कि उसे विभिन्न वस्तुओं की कितनी मात्रा उपभोग करनी चाहिए। उपभोक्ता को इस बारे में निर्णय लेने के लिए इस बात का ज्ञान होना चाहिए कि उसे कितनी आय को विभिन्न वस्तुओं पर खर्च करना है और वस्तुओं की प्रति इकाई कीमत क्या है?

अगर बाजार में n वस्तुएं है और इनकी कीमतें क्रमशः P_1, P_2, ... P_n से दी जाती है और उपभोक्ता की आय M है तो बजट समीकरण निम्न प्रकार से दी जाती है।

$$M = P_1.x_1 + P_2.x_2 + ... + P_n.X_n$$

यहां पर $P_1, P_2, P_3 ... P_n$ वस्तुओं की कीमत एवं $X_1, X_2, ... X_n$ वस्तुओं की उपभोग की मात्रा है।

बजट रेखा का ग्राफ बनाने हेतु हम दो वस्तुएं X व Y लेते है। जिसकी प्रति इकाई कीमतें P_x , P_y से दी जाती है तो बजट समीकरण या बजट रेखा निम्नानुसार दी जाती है।

$$M = x.P_x + y.P_y$$

बजट रेखा को ग्राफ में निम्नानसार बनाया जाता है।

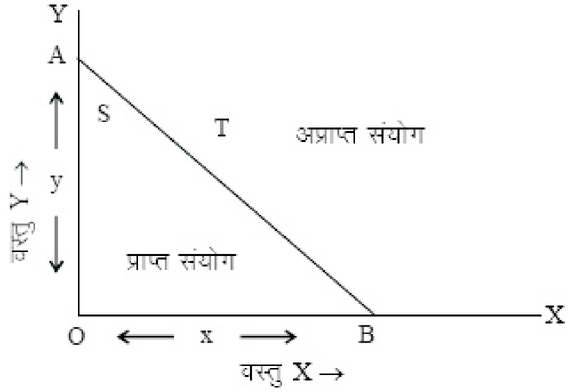

रेखाचित्र 2.9

रेखाचित्र 2.9 में वस्तु X को X अक्ष पर तथा Y वस्तु को Y अक्ष पर दर्शाया गया है। अब यह माने कि उपभोक्ता की आय (M) 80 रू है और X वस्तु की कीमत $P_x = 2$ रुपये प्रति इकाई है और y वस्तु की कीमत $P_y = 1$ रुपये प्रति इकाई है। अगर उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय 80 रुपये को X वस्तु पर खर्च करे तो वह X वस्तु की 40 इकाई क्रय करेगा। यहां पर X का मान 40 होगा और अगर उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय को Y वस्तु पर खर्च करेगा तो वह Y वस्तु की 80 इकाई क्रय करेगा अर्थात Y=80

अतः कीमत रेखा दो वस्तुओं के उन विभिन्न संयोगों को बतलाती है जिन्हें उपभोक्ता अपनी सीमित आय व दोनों वस्तुओं की कीमतों के दिए होने पर प्राप्त कर सकता हैं

चित्र 2.11 में A बिन्दु व बिन्दु B को जोड़ने वाली रेखा बजट रेखा कहलाती है।

AB बजट रेखा पर खींचे गए बिन्दुओं पर ही उपभोक्ता की सम्पूर्ण आय खर्च होती है। बजट रेखा का ढ़ाल निम्न प्रकार से दिया जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

$M = x.P_x + y.P_y$

$y.P_y = M - x.P_x$

$$y \quad \frac{M}{P_y} \quad \frac{P_x}{P_y}.x$$

यदि इस समीकरण की तुलना सरल रेखा के सामान्य समीकरण $y = m.x + c$ से करते हैं जहां पर m-ढ़ाल को तथा C-Y अक्ष पर अन्तखण्ड को दर्शाता है तो

$$m \quad \frac{P_x}{P_y}$$

अतः बजट रेखा का ढ़ाल कीमत अनुपातों के बराबर होता है।

उपभोक्ता का संतुलन

उपभोक्ता उस बिन्दु पर साम्य की स्थिति में होगा जहां वह अपनी संतुष्टि को अधिकतम करता है। तटस्थता वक्र विश्लेषण में उपभोक्ता के संतुलन के लिए निम्न दो शर्तों का होना आवश्यक है।

(1) उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु वह बिन्दु होता है जहां पर बजट रेखा एक तटस्थता वक्र को स्पर्श करती है। यह अधिकतम संतुष्टि का बिन्दु है।

(2) उपभोक्ता के संतुलन का बिन्दु वह बिन्दु है जहां पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर कीमत अनुपातों के बराबर होती है।

$$MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$$

यह उपभोक्ता के संतुलन की आवश्यक शर्त है।

(3) उपभोक्ता के संतुलन की तीसरी आवश्यक शर्त यह है कि संतुलन के बिन्दु पर प्रतिस्थापन की सीमान्त दर (MRS_{xy}) गिरती हुई होनी चाहिए अर्थात तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर (Convex) होना चाहिए।

उपभोक्ता के संतुलन का चित्र द्वारा स्पष्टीकरण।

उपभोक्ता के संतुलन का पता लगाने के लिए तटस्थता वक्र व बजट रेखा को साथ में ग्राफ में बनाया जाता है। जो तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के जितना समीप पाया जाता है वह संतुष्टि के कम स्तर को सूचित करता है जबकि मूल बिन्दु से दूर के तटस्थता वक्र संतुष्टि के ऊंचे स्तर को बताता है। बजट रेखा के दिए होने पर उपभोक्ता उच्चतम तटस्थता वक्र को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

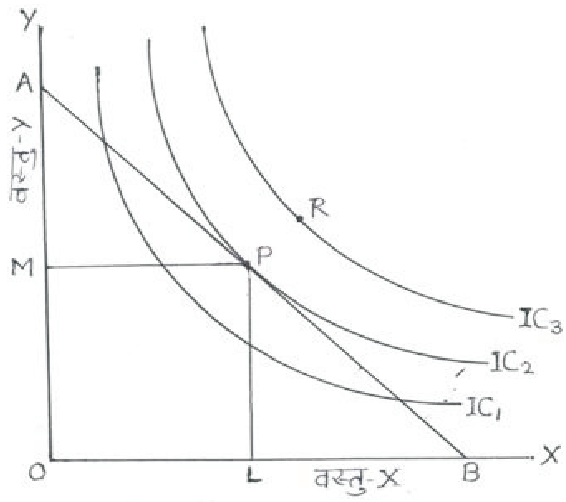

रेखाचित्र 2.10

रेखाचित्र 2.10 में AB बजट रेखा हैं तथा तटस्थता मानचित्र में IC_1, IC_2, IC_3, तीन तटस्थता वक्र है। बजट रेखा के दिए हुए होने पर उपभोक्ता अधिकतम IC_2 वक्र को प्राप्त कर सकता है। P बिन्दु पर बजट रेखा तटस्थता वक्र IC_2 को स्पर्श करती है। अतः यह उपभोक्ता के संतुलन को बताता है। इस बिन्दु पर उपभोक्ता X की OL मात्रा व Y की OM मात्रा खरीदता है।

निष्कर्ष : क्रमवाचक विश्लेषण अधिक वास्तविक मान्यताओं पर आधारित होने के कारण गणनावाचक विश्लेषण से अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

उपभोक्ता किसी वस्तु की खरीद अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिए करता है और उसका मुख्य उद्देश्य संतुष्टि को अधिकतम करना है।

किसी वस्तु की सभी इकाइयों से प्राप्त उपयोगिता का जोड़ कुल उपयोगिता कहलाती है।

किसी वस्तु की एक इकाई के उपभोग बढ़ाने से कुल उपयोगिता में होने वाला परिवर्तन सीमान्त उपयोगिता कहलाती है।

जैसे जैसे हम किसी वस्तु के उपभोग को बढ़ाते है तो हर उत्तरोतर इकाई के उपभोग से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता घटती रहती है।

उपभोक्ता तब संतुलन की स्थिति में होता है जब उसे अपनी खरीद से अधिकतम संतुष्टि प्राप्त होती है।

एक वस्तु की स्थिति में संतुलन की शर्त $MU_x = P_x$

दो वस्तुओं की स्थिति में उपभोक्ता के संतुलन की शर्त

$$\frac{MU_x}{P_x} \quad \frac{MU_y}{P_y}$$

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अर्थात दो वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता व कीमत का अनुपात बराबर होता है और यह मुद्रा की सीमान्त उपयोगिता के बराबर होती है।

एक तटस्थता वक्र दो वस्तुओं के विभिन्न संयोग दर्शाता है जो एक उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्रदान करता हैं।

प्रतिस्थापन की सीमान्त दर वह है जो Y वस्तु के लिए X वस्तु की प्रतिस्थापन की सीमान्त दर Y वस्तु की वे मात्राएं होती है जो X वस्तु की प्रत्येक अतिरिक्त इकाई को प्राप्त करने के लिए त्यागी जाती है। ताकि संतोष का स्तर समान रखा जा सके।

तटस्थता वक्रों की सहायता से उपभोक्ता का संतुलन होता है जब तटस्थता वक्र कीमत रेखा को स्पर्श करता है, जहां दोनों का ढाल बराबर होता है और तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नतोदर होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. n^{th} इकाई की सीमान्त उपयोगिता की गणना निम्न प्रकार से की जाती है।
   (अ) $MU_n = TU_n - TU_{n-1}$
   (ब) $MU_n = TU_n - TU_{n+1}$
   (स) $MU_n = \frac{TU_n + TU_{n+1}}{2}$
   (द) $MU_n = TU_n + TU_{n+1}$
2. दो वस्तुओं की स्थिति में, गणनावाचक विश्लेषण में उपभोक्ता के संतुलन की शर्त है
   (अ) $MRS_{xy} = \frac{P_x}{P_y}$
   (ब) $\frac{MU_x}{P_x} \quad \frac{MU_y}{P_y}$
   (स) $MU_x = MU_y$
   (द) इनमें से कोई नहीं
3. गणनावाचक विश्लेषण में यूटिल्स में मापते हैं।
   (अ) सीमान्त उपयोगिता
   (ब) उपयोगिता
   (स) कुल उपयोगिता
   (द) उपर्युक्त सभी
4. उपयोगिता का गुण है –
   (अ) एक उत्पाद से दूसरे उत्पाद में बदलती है।
   (ब) एक समय से दूसरे समय में बदलती है।
   (स) एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के लिए बदलती है।
   (द) उपर्युक्त सभी।
5. एक तटस्थता वक्र का ढाल –
   (अ) बाएं से दाएं घटता हुआ होता है।
   (ब) बाएं से दाएं बढ़ता हुआ होता है।
   (स) X अक्ष के क्षैतिज होता है।
   (द) X अक्ष के उर्ध्वाधर होता है।

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. तटस्थता वक्र को परिभाषित कीजिए ?
2. दो वस्तुओं की स्थिति में गणनावाचक विश्लेषण में उपभोक्ता के संतुलन की शर्त बतलाइये?
3. प्रतिस्थापन की सीमान्त दर को परिभाषित कीजिए?
4. तटस्थता वक्र मूल बिन्दु के उन्नत्तोदर क्यों होते हैं ?
5. बजट रेखा का गणितीय समीकरण लिखो।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. तटस्थता वक्र की मान्यताएं बताइयें।
2. सीमान्त उपयोगिता ह्रास नियम की मान्यताएं बतलाइये।
4. तटस्थता वक्र की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. गणनावाचक विश्लेषण में उपभोक्ता के संतुलन को समझाइये।
2. तटस्थता वक्र विश्लेषण की सहायता से उपभोक्ता के संतुलन की शर्तों को समझाइये।
3. तटस्थता वक्र की विशेषताओं को रेखाचित्र की सहायता से समझाइये।
4. सम सीमान्त उपयोगिता नियम की व्याख्या कीजिये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	ब	द	द	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 3

मांग की अवधारणा
(Concept of Demand)

क्या हम कभी यह विचार करते हैं कि हमारी वस्तुओं की कीमत कैसे निर्धारित होती है, और समय के साथ हमारी इच्छा, एवं आवश्यकताओं में क्यों और कैसे परिवर्तन आता है। इस अध्याय का उद्देश्य अर्थप्रणाली का आधार स्तम्भ मांग के अर्थ, इसको प्रभावित करने वाले घटक तथा इसमें होने वाले परिवर्तन को समझाना है। व्यक्तिगत और बाजार दोनों स्तर पर मांग अवधारणा का अध्ययन आवश्यक है।

मांग–

मांग में तीन तत्व सम्मिलित होते हैं– 1. किसी वस्तु की इच्छा या आवश्यकता, 2. इस वस्तु को खरीदने के लिए मुद्रा या पैसा, 3. इस वस्तु को खरीदने के लिए पैसा खर्च करने की इच्छा।

अगर आप किसी वस्तु की इच्छा कर रहे हैं लेकिन आप के पास उसे खरीदने के लिए पैसा नहीं है तो यह मांग नहीं होगी। साथ ही अगर आप के पास पैसा है तो भी इस वस्तु को खरीदने के लिए पैसा खर्च करने की इच्छा भी होनी चाहिए।

मांग सर्वथा कीमतों के साथ सम्बन्धित रहती है। ऐसा कहा जाता है कि किसी विशिष्ट कीमत पर किसी वस्तु की मांग अमुक है।

मांग को निम्न प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं।

किसी दी हुई कीमत पर किसी वस्तु की मांग उस मात्रा से है जो कि उस नियत समय पर उस दी हुई कीमत पर खरीदा जाएगा।

मांग से तात्पर्य उस वस्तु की मात्रा से है, जो उपभोक्ता विभिन्न कीमतों पर खरीदने के लिए तत्पर रहता है। मांग की अवधारणाा के साथ स्थान, समय व कीमत तीनों आते है।

बाजार मांग –

प्रत्येक बाजार में किसी वस्तु के अनेक क्रेता होते हैं। एक सरल उदाहरण द्वारा हम स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं माना कि अनार की कीमत 60रु. प्रतिकिलो होने पर A उपभोक्ता की मांग 4 किलोग्राम है तथा B उपभोक्ता की मांग 3 किलोग्राम है। और अर्थव्यवस्था में माना दो ही उपभोक्ता है तो 60रु. प्रति किलोग्राम अनार की कीमत पर बाजार मांग दोनों उपभोक्ता द्वारा मांगी जाने वाले अनार की मात्रा के योग के बराबर होगी। अतः इस कीमत पर बाजार मांग (4 + 3 = 7 किलोग्राम) होगी।

अतः बाजार मांग से तात्पर्य है कि किसी दी हुई कीमत पर समस्त उपभोक्ताओं द्वारा मांगी जाने वाली वस्तु की मात्राओं का योग बाजार मांग कहलाता है। किसी उपभोक्ता वस्तु की मांग अनेक कारकों जैसे वस्तु की कीमत, उपभोक्ता की आय, उपभोक्ता की रुचि और अधिमान पर निर्भर करती है।

मांग अनुसूची–

मांग अनुसूची बनाते समय सिर्फ वस्तु की स्वयं की कीमत में परिवर्तन के प्रभाव को वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा पर प्रभाव को सारणी रूप में दिखाया जाता है। इसके अलावा सभी कारक जो मांग को प्रभावित करते हैं उन्हें स्थिर मान लेते हैं।

मांग अनुसूची के दो प्रकार हैं–

(1.) वैयक्तिक मांग अनुसूची

(2.) बाजार मांग अनुसूची

(1.) वैयक्तिक मांग अनुसूची :–

किसी एक निश्चित समय में एक व्यक्तिगत उपभोक्ता द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली वस्तु की मात्रा को सारणी रूप में प्रकट करने पर वैयक्तिक मांग अनुसूची प्राप्त होती है।

तालिका 3.1 वैयक्तिक मांग अनुसूची

प्रति किग्रा. अनार की कीमत ₹	अनार की मांगी जाने वाली मात्रा प्रतिदिन
25	1000 gm.
50	750 gm.
75	500 gm.
100	250 gm.

उपरोक्त सूची में एक काल्पनिक वैयक्तिक मांग अनुसूची को बनाया गया है। जब अनार की कीमत 25रु. प्रति किलोग्राम है तो किसी एक उपभोक्ता द्वारा अनार की मांगी जाने वाली मात्रा 1 किलोग्राम है। जब अनार की कीमत बढकर 50रु. हो जाती है तो अनार की मांगी जाने वाली मात्रा घटकर 750 ग्राम हो जाती है। जब अनार की कीमत बढकर 100रु. प्रति किलोग्राम होती है तो अनार की मांगी जाने वाली मात्रा 250 ग्राम है।

(2.) बाजार मांग अनुसूची :–

किसी एक निश्चित समय में सभी उपभोक्ताओं द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली वस्तुओं की मात्रा का योग

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सारणी के रूप में दर्शाये जाने पर बाजार मांग अनुसूची प्राप्त होती है। सरलता के रूप में हम यह मानते हैं कि बाजार में दो उपभोक्ता A व B हैं तथा विभिन्न कीमतों पर उनके द्वारा मांगी जाने वाली वस्तु अनार की कीमत निम्न सारणी के अनुसार है। बाजार मांग दोनों उपभोक्ताओं द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली अनार की मात्रा का योग है।

तालिका 3.2

प्रति किलोग्राम कीमत ₹	**A** द्वारा अनार की मांगी जाने वाली मात्रा (1)	**B** द्वारा अनार की मांगी जाने वाली मात्रा (2)	बाजार मांग **1+2=3**
25	1000 ग्राम	1100 ग्राम	2100 ग्राम
50	750 ग्राम	800 ग्राम	1550 ग्राम
75	500 ग्राम	475 ग्राम	975 ग्राम
100	250 ग्राम	300 ग्राम	550 ग्राम

उपरोक्त तालिका में बाजार मांग A व B उपभोक्ताओं द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली अनार की मात्रा का योग है।

मांग वक्र (Demand Curve) –

मांग वक्र मांग अनुसूची के आधार पर निर्मित किया जाता है। एक मांग वक्र वही जानकारी प्रदान करता है जो मांग की अनुसूची प्रदान करती है लेकिन ये उसे एक रेखाचित्र के रूप में दर्शाता है।

मांग वक्र वह वक्र है जो विभिन्न कीमतों पर किसी उपभोक्ता द्वारा मांगी जाने वाली वस्तु की मात्रा का कीमत से विपरीत सम्बन्ध बताता है।

मांग वक्र दो प्रकार के होते हैं।

(1.) वैयक्तिक मांग वक्र

(2.) बाजार मांग वक्र

(1.) वैयक्तिक मांग वक्र :– किसी एक नियत समय पर एक व्यक्तिगत उपभोक्ता द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली मात्रा को ग्राफ के रूप में चित्रित करने पर हमें वैयक्तिक मांग वक्र प्राप्त होता है। निम्न चित्र मांग वक्र को दर्शाता है।

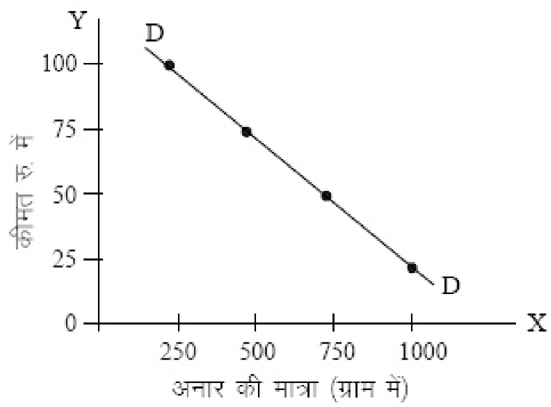

रेखाचित्र 3.1

इसमें DD मांग वक्र है। पूर्व में प्राप्त वैयक्तिक मांग अनुसूची के आंकडों को ग्राफ में चित्रित करने पर हमें DD मांग वक्र प्राप्त होता है जो यह बतलाता है कि जैसे जैसे अनार की कीमत बढ़ती है, वैसे वैसे उपभोक्ता द्वारा मांगी जाने वाली मात्रा में कमी होती है अतः वस्तु की कीमत व उपभोक्ता द्वारा इस कीमत पर मांगी जाने वाली मात्रा के बीच प्रतिलोम (Inverse) सम्बन्ध होता है।

(2.) बाजार मांग वक्र :–

किसी एक नियत समय में सभी उपभोक्ताओं द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली मात्राओं को ग्राफ के रूप में चित्रित करने पर हमें बाजार मांग वक्र प्राप्त होता है। निम्न चित्र बाजार मांग वक्र को दर्शाता है।

पूर्व में प्राप्त बाजार मांग अनुसूची के आंकड़ों को ग्राफ में चित्रित करने पर हमें बाजार मांग वक्र DD प्राप्त होता है।

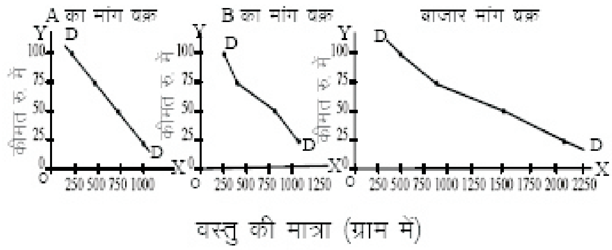

रेखाचित्र 3.2

बाजार मांग वक्र वैयक्तिक मांग वक्रों के क्षैतिज योग (horizontal summation) से प्राप्त होता है चित्र में दी हुई कीमत 25रु. पर A की मांग 1000 ग्राम तथा इसी कीमत पर B की मांग 1100 ग्राम है तो इस कीमत पर बाजार मांग 2100 ग्राम (1000+1100) हो। इसी तरह से अन्य कीमतों पर भी बाजार मांग को निकाला जाता है। इस तरह विभिन्न कीमतों पर बाजार मांग को ग्राफ के निरूपित करने पर बाजार मांग प्राप्त होती है।

मांग के निर्धारक तत्व

मांग के निर्धारक तत्व निम्न हैं :–

(1.) वस्तु की स्वयं की कीमत

(2.) उपभोक्ता की आय

(3.) संबंधित वस्तुओं (प्रतिस्थापन या पूरक वस्तुएँ) की कीमत

(4.) उपभोक्ता की पसन्द, रूचि

(5) भविष्य के बारे में उपभोक्ता की कीमत प्रत्याशाएं

इसे गणितीय रूप में निम्न प्रकार से लिख सकते है।

$D_n = f(P_n, P_1, P_2, P_3 ...... P_{n-1}, Y, T, E)$

इसे मांग फलन के रूप में जाना जाता है।

इसके अनुसार वस्तु n की मांग उसकी कीमत P_n अन्य वस्तुओं की कीमत $[P_1 P_2 ...... P_{n-1}]$, उपभोक्ता की आय (Y) उपभोक्ता की पसन्द (T), भविष्य के बारे में उपभोक्ता की कीमत

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रत्याशाएं (E) आदि पर निर्भर करती है।

सर्वप्रथम हम वस्तु की कीमत व उसकी मांगी जाने वाली मात्रा के बीच सम्बन्ध को जानते हैं।

(1.) कीमत व वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा में सम्बन्ध :

अन्य बातों के स्थिर रहने पर, (cebrius paribus) वस्तु की कीमत व उसकी मांगी जाने वाली मात्रा में प्रतिलोम सम्बन्ध होता है।

(2.) वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा व संबधित वस्तुओं की कीमतों के मध्य सम्बन्ध :

इसके अन्तर्गत हम दो प्रकार की वस्तुओं का विवेचन कर सकते हैं।

1. पूरक वस्तुएं

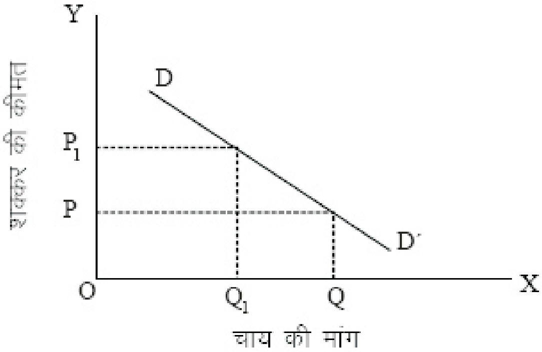

रेखाचित्र 3.3 (अ)

पूरक वस्तु शक्कर की कीमत OP से बढकर OP_1 होने पर चाय की मांग OQ से घटकर OQ_1 हो जाती है।

अतः पूरक वस्तु में मांग वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है।

2. स्थानापन्न वस्तुएं

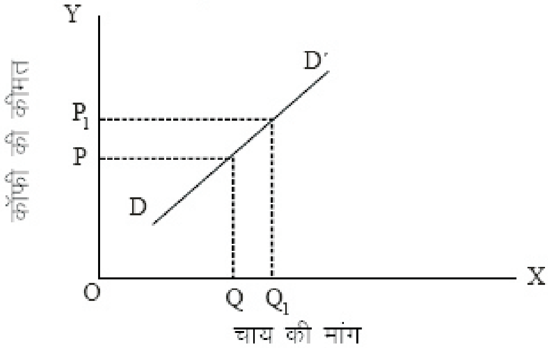

रेखाचित्र 3.3 (ब)

कॉफी की कीमत OP से बढकर OP_1 होने पर चाय की मांग OQ से बढ़कर OQ_1 होगी।

अतः स्थानापन्न वस्तुओं में मांग वक्र धनात्मक होता है।

वस्तुएं एक दूसरे की पूरक हो सकती है जैसे टेनिस का बल्ला व टेनिस की गेंद, ईंटे व सींमेट। इसके अनुसार यदि टेनिस की गेंद की कीमत बढ़ती है तो इसकी मांग कम होगी तथा साथ ही टेनिस के बल्ले की मांग भी कम होगी। अतः पूरक वस्तुओं में मांग वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है।

इसके विपरीत वस्तुएं एक दूसरे की स्थानापन्न होती हैं जैसे चाय व कॉफी। अगर कॉफी की कीमतें बढ़ती हैं, जबकि चाय की कीमत स्थिर रहती है तो लोग चाय की मांग बढा देंगे और कॉफी की मांग कम हो जाएगी। अतः स्थानापन्न वस्तुओं में मांग वक्र धनात्मक होता है।

(3.) मांग व आय का सम्बन्ध :–

जब उपभोक्ता की आय बढ़ती है तो सामान्य रूप से वस्तु की मांग भी बढ़ती है। विलासिता की वस्तुएं इसके अन्तर्गत आती हैं। अतः वस्तु की मांग व उपभोक्ता की आय के बीच में धनात्मक सम्बन्ध होता है।

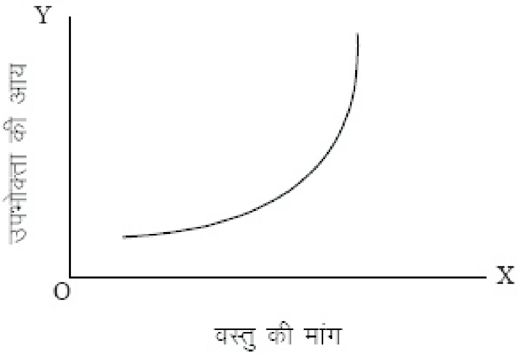

रेखाचित्र 3.4

कुछ वस्तुएं ऐसी होती हैं जिनकी मांग आय के बढ़ने के साथ कुछ समय तक बढ़ती है, उसके बाद आय के बढ़ने के बाद मांग घटती है। ऐसा घटिया वस्तुओं में होता है। अनाज, ज्वार, बाजरा, व मक्का की मांग को हम इस तरह से देख सकते हैं।

(4.) मांग का उपभोक्ता की पसन्द से सम्बन्ध :–

वस्तुओं की मांग उपभोक्ता की रुचि और अधिमान पर भी निर्भर करती है। ये नए अविष्कार, विज्ञापनों आदि से प्रभावित होती है।

(5.) भविष्य के बारे में उपभोक्ता की प्रत्याशाएं :–

अगर उपभोक्ता को ऐसा लगता है कि भविष्य में किसी वस्तु के स्टॉक में कमी होगी तो वे उस वस्तु की वर्तमान मांग बढ़ा देंगे। इसके विपरीत भविष्य में किसी वस्तु की कीमत कम होने की संभावना है तो उपभोक्ता उसका वर्तमान उपभोग घटा देगा।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कारक हैं जो बाजार की मांग को प्रभावित करते हैं, वे निम्नानुसार है :–

(1.) किसी देश की जनसंख्या का आकार व संरचना

(2.) राष्ट्रीय आय का वितरण

(1.) जनसंख्या का आकार एवं संरचना :

अगर किसी देश की जनसंख्या ज्यादा होगी तो FMCG (Fast moving consumer goods) वस्तुओं की मांग ज्यादा होगी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

और अगर जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा युवाओं का है तो Life style products मोबाईल आदि की मांग अधिक होगी।

(2.) राष्ट्रीय आय का वितरण :

अगर देश में आय का वितरण असमान है तो विलासिता की वस्तुओं की मांग ज्यादा होगी और आय का समान वितरण है तो आवश्यक वस्तुओं की भी मांग ज्यादा होगी।

मांग मात्रा में परिवर्तन एवं मांग में परिवर्तन :–

किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन (कमी अथवा वृद्धि) से उस वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा में परिवर्तन को एक ही मांग वक्र पर चलने से दिखाया जाता है।

जबकि किसी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त अन्य कारक जैसे उपभोक्ता की आय में बढ़ोतरी या कमी उपभोक्ता की रुचि व पसन्द में परिवर्तन या प्रतिस्थापन वस्तुओं की कीमतों में परिवर्तन के कारण मांग वक्र का उपर या नीचे की ओर विवर्तित होना मांग में परिवर्तन कहलाता है।

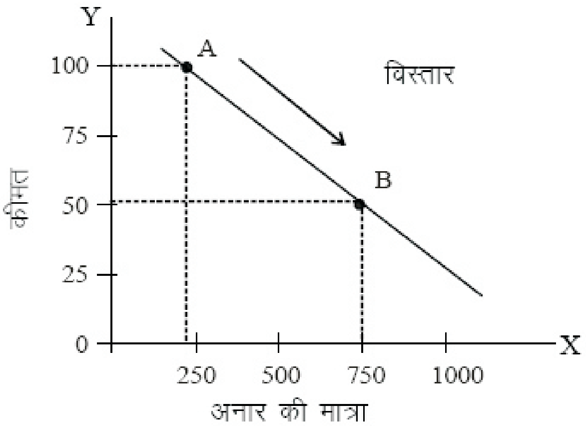

चित्र अ मांग का विस्तार

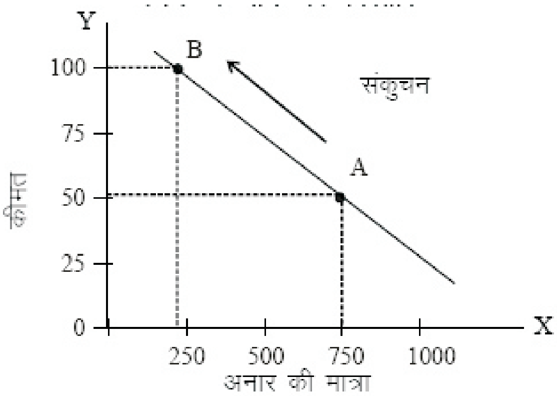

चित्र ब मांग का संकुचन

रेखाचित्र 3.5

अन्य बातें समान रहने पर जब केवल कीमत में कमी के कारण वस्तु की अधिक मात्रा खरीदी जाती है तो उसे मांग का विस्तार कहते है। इसमें हम उसी मांग वक्र पर ऊपर से नीचे की ओर गति करते है।

चित्र (अ) के अनुसार जब अनार की कीमत 100रु. प्रति किलोग्राम है तब उपभोक्ता द्वारा मांगी जाने वाली मात्रा 250 ग्राम है जब अनार की कीमत घटकर 50रु. प्रति किलोग्राम हो जाती है तब अनार की मांग 250 ग्राम से बढकर 750 ग्राम हो जाती है। इसे मांग की मात्रा में वृद्धि कहते हैं। A से B तक का चलन मांग मात्रा के विस्तार (Expansion of Demand) को दर्शाता है।

चित्र (ब) के अनुसार जब अनार की कीमत 50 रु. प्रति किलोग्राम है तो अनार की मांगे जाने वाली मात्रा 750 ग्राम है।

अन्य बातें समान रहने पर जब केवल कीमत में वृद्धि होने पर वस्तु की कम मात्रा खरीदी जाती है तो उसे मांग का संकुचन कहते है। इसमें उसी मांग वक्र पर नीचे से ऊपर की ओर गति करते है। जब अनार की कीमत 50रु. प्रति किलोग्राम से बढ़कर 100रु. प्रति किलोग्राम हो जाती है तो वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा घटकर 250 ग्राम हो जाती है। इसे मांग का संकुचन (Contraction of demand) कहते हैं या मांग की मात्रा में कमी कहते हैं।

मांग वक्र में विर्वतन :–

मांग वक्र में दो प्रकार के विर्वतन होते हैं

(1.) मांग वक्र का दाहिनी अथवा आगे की ओर खिसकना

(2.) मांग वक्र का बाएं अथवा नीचे की ओर खिसकना

(1.) मांग वक्र का दाहिनी ओर आगे की तरफ खिसकना

रेखाचित्र 3.6 (अ) के अनुसार किसी वस्तु की स्वयं की कीमत अपरिवर्तित रहते हुए यदि उपभोक्ता की आय में वृद्धि के फलस्वरूप प्रारम्भिक मांग वक्र DD बदल कर D_1D_1 उपर की ओर दाहिने ओर खिसक जाता है इसे मांग में वृद्धि (Increase in demand) कहते हैं।

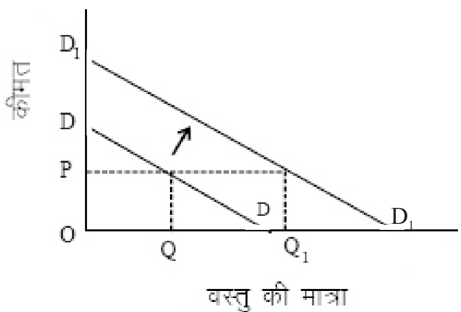

रेखाचित्र 3.6 (अ)

OP कीमत पर मांग मात्रा OQ से OQ_1 हो जाती है।

(2.) मांग वक्र का बाएं अथवा नीचे की ओर खिसकना

रेखाचित्र 3.6 (ब) के अनुसार किसी वस्तु की स्वयं की कीमत अपरिवर्तित रहते हुए उपभोक्ता की आय में कमी के फलस्वरूप प्रारम्भिक मांग वक्र DD से बायीं ओर नीचे की ओर खिसककर D_1D_1 हो गया है इसे (Decrease in demand) या मांग की कमी कहते है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

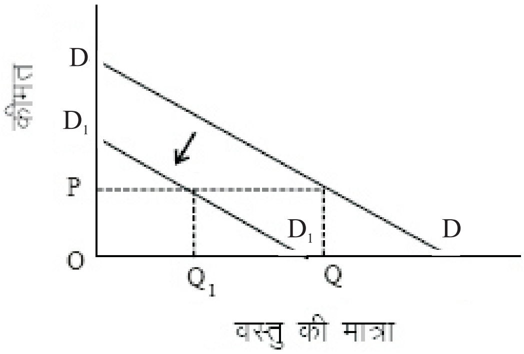

रेखाचित्र 3.6 (ब)

OP कीमत पर मांग OQ से घटकर OQ_1 हो जाती है।

मांग में वृद्धि या मांग में कमी, उपभोक्ता की आय के अतिरिक्त स्थानापन्न वस्तुओं की कीमतों में बदलाव, पसन्द व अभिरुचि में परिवर्तन तथा वस्तुओं की कीमतों के बारे में भावी प्रत्याशा पर भी निर्भर करती है।

मांग के नियम (Law of demand) :–

एक वस्तु की मांग पर अनेक घटकों का प्रभाव पड़ता है। जैसे वस्तु की स्वयं की कीमत, उपभोक्ता की आय, संबंधित वस्तुओं की कीमतें, उपभोक्ता की पसन्द, भविष्य के बारे में उपभोक्ता की कीमत प्रत्याशाएं।

मांग का नियम यह बतलाता है कि 'अन्य बातों के स्थिर रहने पर', एक वस्तु की कीमत के घटने पर उस वस्तु की मांग की मात्रा में वृद्धि होगी और कीमत के बढ़ने पर उसकी मांग की मात्रा में गिरावट आएगी।

इसे निम्न चित्र द्वारा समझाया जा सकता है।

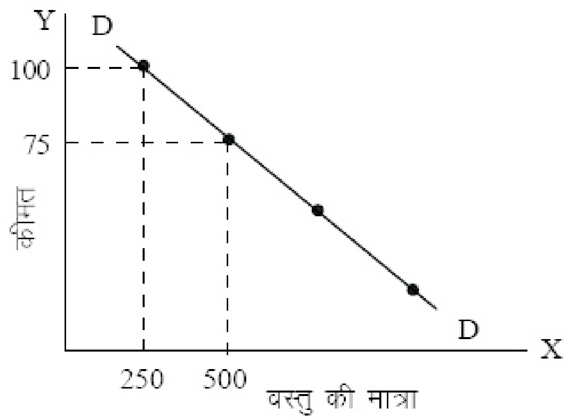

रेखाचित्र 3.7

रेखाचित्र 3.7 में Y अक्ष पर अनार की प्रति किलोग्राम कीमत दी गई है तथा X अक्ष पर अनार की इन कीमतों पर मांगी जाने वाली मात्रा दी गई है।

जब अनार की कीमत 100 रु. प्रति किलोग्राम है तब उपभोक्ता द्वारा अनार की मांगी जाने वाली मात्रा 250 ग्राम है। कीमत के घटकर 75रु. प्रति किलोग्राम होने पर अनार की मांगी जाने वाली मात्रा बढकर 500 ग्राम हो जाती है।

अतः हम देखते है कि' अन्य बातों के स्थिर रहने पर' वस्तु की कीमत में कमी आने से उपभोक्ता द्वारा मांगी जाने वाली मात्रा बढ़ती है। अतः कीमत व वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा में प्रतिलोम संबंध होता है।

मांग के नियम की व्युत्पत्ति –

किसी वस्तु की कीमत और उसकी मांगी जाने वाली मात्रा के प्रतिलोम सम्बन्ध या मांग के नियम को निम्न दो तरीकों से व्युत्पन्न किया जा सकता है–

(1.) सीमान्त उपयोगिता = कीमत के सम्बन्ध से

(2.) सम सीमान्त उपयोगिता नियम

$$\frac{MU_x}{P_x} \quad \frac{MU_y}{P_y}$$ से

(1.) सीमान्त उपयोगिता – कीमत

उपभोक्ता संतुलन की दशा में उतनी मात्रा की मांग करता है जहां पर MU = P की शर्त पूरी होती है।

Case 1 यदि MU > P

यदि किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उसकी सीमान्त उपयोगिता कीमत से अधिक हो जाती है और वह उपभोक्ता को उस वस्तु की अधिक खरीद के लिए प्रोत्साहित करती है अतः जब किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उपभोक्ता की उस वस्तु की मांग बढ़ती है और ऐसा तब तक होता है जब तक सीमान्त उपयोगिता पुनः घटकर कीमत के बराबर नहीं हो जाती है।

Case 2 यदि MU < P

यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ जाती है तो उसकी सीमान्त उपयोगिता कीमत से कम हो जाती है। अतः उपभोक्ता तब तक किसी वस्तु की मांग घटाएगा जब तक सीमान्त उपयोगिता बढकर कीमत के बराबर न हो जाए। अतः कीमत के बढ़ने पर मांग घटती है।

(2.) सीमान्त उपयोगिता नियम –

इस नियम के अनुसार उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में अपनी सीमित आय को इस तरह से खर्च करता है ताकि वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता का उनकी कीमत के साथ अनुपात समान रहता है।

दो वस्तुओं X व Y के संदर्भ में
उपभोक्ता संतुलन की स्थिति में

$$\frac{MU_x}{P_x} \quad \frac{MU_y}{P_y}$$

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Case (1.) इस साम्य की स्थिति में यदि X की कीमत (P_x) गिरती है तो $\frac{MU_x}{P_x}$ $\frac{MU_y}{P_y}$ ऐसी स्थिति में उपभोक्ता Y वस्तु की तुलना में X वस्तु की अधिक सीमान्त उपयोगिता पा रहा है अतः वह X की ज्यादा इकाइयां खरीदेगा तथा Y की कम खरीदेगा।

अतः यह बताता है कि जब X की कीमत घटती है तो वह X की अधिक मांग करेगा। और वह X की मांग तब तक करता रहेगा जब तक पुनः $\frac{MU_x}{P_x}$ $\frac{MU_y}{P_y}$

Case (2.) यदि की कीमत X बढ़ती है तब $\frac{MU_x}{P_x}$ $\frac{MU_y}{P_y}$

ऐसी स्थिति में उपभोक्ता को Y वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता X वस्तु से प्राप्त सीमान्त उपयोगिता से अधिक मिलती है। अतः वह X की मांग कम करेगा तथा Y की ज्यादा। अतः X की कीमत बढने पर वह X की मांग कम करेगा।

अतः X वस्तु की कीमत व उसकी मांग के बीच विलोम सम्बन्ध है। वह Y की मांग तब तक करता रहेगा जब तक पुनः $\frac{MU_x}{P_x}$ $\frac{MU_y}{P_y}$ की अवस्था प्राप्त नहीं हो जाती।

मांग के नियम के लागू होने के कारणः—

(1.) ह्रासमामान सीमान्त उपयोगिता का नियम :—

इस नियम के अनुसार जैसे जैसे उपभोक्ता एक वस्तु की अधिक से अधिक इकाइयां खरीदता है तो उत्तरोत्तर खरीद की मात्रा से सीमान्त उपयोगिता उत्तरोत्तर घटती जाती है। अगर उपभोक्ता को अधिक संतोष प्राप्त होता है तो वह उसकी कीमत भी अदा करेगा।

अतः उस वस्तु की उत्तरोत्तर खरीद के लिए वह समान कीमत अदा नहीं करेगा बल्कि कम कीमत अदा करेगा।

(2.) प्रतिस्थापन प्रभाव :—

प्रतिस्थापन प्रभाव से तात्पर्य है यदि कोई वस्तु सापेक्षतया सस्ती हो जाती है तो वह मंहगी वस्तु के लिए प्रतिस्थापित की जाती है। उदाहरण के लिए जैसे X वस्तु की कीमत Y वस्तु की तुलना में कम हो जाती है तो सस्ती वस्तु X को मंहगी वस्तु Y के लिए प्रतिस्थापित किया जाता है अर्थात् X वस्तु की मांग बढ़ जाती है।

(3.) आय प्रभाव :—

आय प्रभाव, उस प्रभाव को कहते हैं जब किसी वस्तु की कीमत में परिवर्तन के फलस्वरूप उपभोक्ता की वास्तविक आय में भी परिवर्तन होता है और इसका प्रभाव वस्तु की मांग पर पड़ता है।

जब किसी वस्तु की कीमत घटती है उपभोक्ता की क्रय शक्ति या वास्तविक आय बढ़ जाती है और वह समान मौद्रिक आय से उस वस्तु की ज्यादा मात्रा खरीद सकता है। कीमत प्रभाव इन दो सम्मिलित प्रभावों, प्रतिस्थापन प्रभाव व आय प्रभाव का योग होता है।

(4.) जब किसी वस्तु की कीमत घटती है तो कई नये उपभोक्ता जो पूर्व में उस वस्तु को नहीं खरीद पा रहे थे वे अब इसे खरीद पाने की स्थिति में हो जाते है और पुराने उपभोक्ता घटी हुई कीमत पर अपनी उपभोग की मात्रा को बढ़ा देते हैं। इस प्रकार वस्तु की कुल मांग में वृद्धि होती है।

(5.) जब किसी वस्तु की कीमत घटती है तो उस वस्तु का उपयोग अन्य उपयोगों के लिए भी बढ़ता है। इसके फलस्वरूप कीमत के घटने पर मांग भी बढ़ती है।

मांग के नियम के अपवाद :—

मांग के नियम के अपवाद जानने का आशय उन दशाओं को जानना होता है जिसमें मांग वक्र ऊपर की ओर जाते है। वहां मांग का नियम लागू नहीं होता है।

(1.) गिफिन वस्तुएं :— ये वस्तुएं घटियाँ वस्तुओं की वह किस्म है, जिसमें इन वस्तुओं की कीमतें बढ़ने पर इनकी मांग बढ़ती है और कीमतों के घटने पर मांग भी घट जाती है।

ज्वार व बाजरा गिफिन वस्तुओं का उदाहरण है। इन वस्तुओं की कीमत घटने पर उपभोक्ता द्वारा इन वस्तुओं का उपभोग घटा दिया जाता है। अतः गिफिन वस्तुओं में मांग का नियम लागू नहीं होता है।

(2.) प्रतिष्ठात्मक प्रतीक वाली वस्तुओं का उपभोग उनकी कीमत अधिक होने पर अधिक होता है। जैसे— हीरे पन्ने के आभूषण आदि।

(3) वस्तु की भावी कीमत में परिवर्तन की संभावना।

(4) उपभोक्ता की अज्ञानता एवं गलत धारणाएं।

(5) जीवन की अनिवार्य वस्तुओं की मांग।

महत्वपूर्ण बिन्दु

किसी एक नियत समय पर एक व्यक्तिगत उपभोक्ता द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली मात्रा को वैयक्तिक मांग कहते है।

किसी एक नियत समय में सभी उपभोक्ताओं द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली मात्रा बाजार मांग कहलाती है।

किसी एक नियत समय में एक व्यक्तिगत उपभोक्ता द्वारा विभिन्न कीमतों पर मांगी जाने वाली वस्तु की मात्रा को सारणी के रूप में प्रकट करने पर वैयक्तिक मांग अनुसूची प्राप्त होती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किसी एक नियत समय में सभी उपभोक्ताओं द्वारा विभिन्न कीमतो पर मांगी जाने वाली वस्तुओं की मात्रा के योग को सारणी के रूप में प्रयुक्त करने पर बाजार मांग अनुसूची प्राप्त होती है।

मांग फलन किसी वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा तथा इसे प्रभावित करने वाले कारकों पर निर्भर करती है। संकेतों में $D_x = f(P_x, I, ...P_y, T)$

इससे तात्पर्य यह है कि जब उपभोक्ता की आय, संबधित वस्तुओं की कीमत P_y तथा पसन्द T को स्थिर रखा जाता है तो X वस्तु की मांग उसकी स्वयं की कीमत P_x का प्रतिलोम फलन होती है।

मांग का नियम किसी वस्तु की कीमत और उसकी मांगे जाने वाली मात्रा के प्रतिलोभ सम्बन्ध को बतलाता है। जबकि अन्य कारकों को स्थिर रखा जाता है।

किसी वस्तु की कीमत के घटने पर इस वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा के बढ़ने को मांग का विस्तार कहते हैं जब अन्य कारक जो मांग को प्रभावित करते हैं उन्हें स्थिर माना जाता है।

किसी वस्तु की कीमत के बढ़ने पर उस वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा के घटने को मांग का संकुचन कहते है। जब अन्य कारको को स्थिर रखा जाता है।

किसी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त किसी अन्य कारकों जैसे आय आदि में वृद्धि से मांग वक्र के दाहिने उपर की ओर खिसकना मांग में वृद्धि कहलाता है।

किसी वस्तु की कीमत के अतिरिक्त किसी अन्य कारकों जैसे आय आदि में कमी के फलस्वरूप मांग वक्र के नीचे दाहिने और खिसकना मांग में कमी कहलाता है।

वे वस्तुएं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय बढ़ने से बढ़ती है उसे सामान्य वस्तु कहते हैं।

वे वस्तुएं जिनकी मांग उपभोक्ता की आय के बढ़ने के फलस्वरूप घटती है। उसे घटिया वस्तु कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(1) मांग का नियम, वस्तु की कीमत एवं उसकी मांगी जाने वाली मात्रा के बीच .... सम्बन्ध को बताती है।
(अ) धनात्मक (ब) अनन्त
(स) शून्य (द) प्रतिलोम

(2) बाजार मांग वक्र व्यक्तिगत मांग वक्रों के ....जोड़ से प्राप्त होता है।
(अ) क्षैतिज (ब) लम्बवत
(स) तिरछी (द) इनमें से कोई नहीं

(3) मांग का विस्तार व संकुचन निम्न में से किसके द्वारा होता है।
(अ) उस वस्तु की कीमत में बदलाव के कारण
(ब) अन्य वस्तुओं की कीमत में बदलाव के कारण
(स) उपभोक्ता की रुचि व पसन्द बदलने पर
(द) उपभोक्ता की आय में बदलाव के कारण

(4) यदि किसी वस्तु की मांग फलन $D_x = 35 - 4\,P_x$ से दिया जाता है 5 रु प्रति इकाई कीमत पर वस्तु की मांग होगी–
(अ) 20 (ब) 15
(स) 35 (द) 0

(5.) मांग का नियम कौनसी वस्तुओं में लागू नहीं होता है–
(अ) गिफिन वस्तुओं (ब) सामान्य वस्तुओं
(स) स्थानापन्न वस्तुओं (द) पूरक वस्तुओं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. गिफिन वस्तुओं का अर्थ बताइये।
2. मांग के नियम को परिभाषित कीजिए।
3. वस्तु की वैयक्तिक मांग वक्रों से बाजार मांग वक्र को कैसे निकाला जाता है।?
4. यदि उपभोक्ता की आय बढ़ने पर वह किसी वस्तु की मांग की मात्रा को बढ़ाता है तो वह वस्तु कैसी होगी?
5. यदि मांग वक्र आय के बढ़ने के फलस्वरूप नीचे बायीं ओर खिसक जाता है तो यह क्या कहलाएगा?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. किसी एक मांग वक्र पर चलन तथा मांग वक्र में विवर्तन को चित्र बनाकर समझाइए।
2. सामान्य वस्तु एवं घटिया वस्तु में अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
3. यदि X वस्तु एवं Y वस्तु प्रतिस्थापन वस्तु है तो Y वस्तु की कीमत में कमी का X वस्तु की मांग पर क्या प्रभाव होगा। चित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. मांग के नियम को सारणी व चित्र बनाकर समझाइए।
2. एक मांग वक्र के लिए मांग में परिवर्तन एवं मांग मात्रा में परिवर्तन में अन्तर स्पष्ट करो।
3. किसी वस्तु की मांग पर निम्न के प्रभाव को समझाइए
(1) आय में वृद्धि।
(2) संबधित वस्तुओं की कीमतों में वृद्धि।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
द	अ	अ	ब	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 4

मांग की कीमत लोच

(Price Elasticity of Demand)

पिछले अध्याय में हमने मांग के नियम का अध्ययन किया जो यह बतलाता है कि वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा व उसकी कीमत में प्रतिलोम सम्बन्ध होता है। अतः वस्तु की कीमत में कमी होने पर उसकी मांगी जाने वाली मात्रा बढ़ती है तथा वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उसकी मांगी जाने वाली मात्रा घटती है। अर्थशास्त्रियों के लिए यह जानना जरुरी है कि किसी वस्तु की कीमत के परिवर्तन होने पर वस्तु की मांगे जाने वाली मात्रा की क्या प्रतिक्रियात्मकता है।

मांग की कीमत लोच :–

श्रीमति रॉबिन्सन के अनुसार "किसी कीमत पर मांग की लोच कीमत में थोड़े परिवर्तन के प्रत्युत्तर में क्रय की गई मात्रा के आनुपातिक परिवर्तन को कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त होती है।"

अतः मांग की लोच बताती है कि कीमत में परिवर्तन होने पर मांग की मात्रा में कितना परिवर्तन होता है अर्थात मांग की कीमत के प्रति संवेदनशीलता को अभिव्यक्त करता है।

$$\text{मांग की कीमत लोच :–} \frac{\text{मांग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन}}$$

अथवा

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\text{मांग की मात्रा में परिवर्तन}}{\text{मांग की प्रारम्भिक मात्रा}} \div \frac{\text{कीमत में परिवर्तन}}{\text{प्रारम्भिक कीमत}}$$

यदि हम मांग की मात्रा को q, मांग की मात्रा के परिवर्तन को Δq, कीमत को p तथा कीमत में परिवर्तन को Δp से सूचित करने पर

$$\text{मांग की लोच} = \frac{\Delta q / q}{\Delta p / p} = \frac{\Delta q}{\Delta p} \cdot \frac{p}{q}$$

यहां पर q – मांग की प्रारम्भिक मात्रा p – प्रारम्भिक कीमत

Δq – मांग की मात्रा मे परिवर्तन Δp– कीमत में परिवर्तन

चूंकि मांग व कीमत के परिवर्तन एक दूसरे के विपरीत दिशा में होते हैं अतः मांग की लोच ऋणात्मक होती है।

संख्यात्मक प्रश्न

1. किसी वस्तु की कीमत के 10 प्रतिशत गिरने से उसकी मांग 10 इकाई से बढ़कर 14 इकाई हो जाती है। अतः मांग की लोच की गणना कीजिए।

उत्तर :–

$$\text{मांग में प्रतिशत वृद्धि} = \frac{4}{10} \cdot 100 = 40\%$$

$$\text{मांग की कीमत लोच (ed)} = \frac{\text{मांग में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

$$= \frac{40}{10} = 4$$

2. जब कीमत 7 रु. से बढ़कर 10 रु. होती है तो किसी वस्तु की मांग 6 इकाई से गिरकर 4 इकाई हो जाती है। इस स्थिति में मांग की कीमत लोच की गणना कीजिए।

उत्तर :–

$$\text{मांग की कीमत लोच} = \frac{\text{मांग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत आनुपातिक परिवर्तन}}$$

$$\text{मांग की मात्रा में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{4-6}{6}$$

$$= \frac{\cancel{-2}}{\cancel{6}\,3}$$

$$= \frac{-1}{3}$$

$$\text{कीमत में आनुपातिक परिवर्तन} = \frac{10-7}{7}$$

$$= \frac{3}{7}$$

$$\text{अतः मांग की लोच} = \frac{-1}{3} \div \frac{3}{7}$$

$$= \frac{-7}{9} = -0.77$$

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मांग की लोच की श्रेणियां :–

मांग की लोच की पांच श्रेणियाँ होती है –

(1) पूर्णतया लोचदार ($ed = \infty$)

(2) लोचदार ($ed > 1$)

(3) इकाई के बराबर लोच $ed = 1$

(4) बेलोच ($ed = <1$)

(5) शून्य लोच ($ed = 0$)

इन्हें निम्नानुसार समझाया जा सकता है

(1) पूर्णतया लोचदार ($ed = \infty$)

पूर्णतया लोचदार मांग उस स्थिति को कहते हैं, जहां पर प्रचलित कीमतों (Prevailing Price) पर वस्तु की मांग अनन्त होती है। दूसरे शब्दों में कीमतों के स्थिर रहने पर वस्तु की मांगे जाने वाली मात्रा घटती या बढ़ती रहती है। यह वह स्थिति है, जिसमें कीमतों में तनिक सी वृद्धि करने पर वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा शून्य हो सकती है।

पूर्ण प्रतिस्पर्धा में एक फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार होता है। मांग कीमत के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती है।

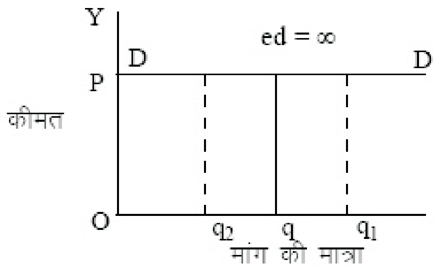

रेखाचित्र 4.1

चित्र में देखने से यह ज्ञात होता है कि प्रचलित कीमत OP पर मांग oq, oq_1 या oq_2 या कोई भी संख्या हो सकती है। यह बताता है कि कीमतों के स्थिर रहने पर वस्तु की मांगे जाने वाली मात्रा कुछ भी हो सकती है। इसमें मांग वक्र x अक्ष के समानान्तर होता है।

(2) सापेक्षतया लोचदार मांग ($ed = >$) **(इकाई से अधिक लोच)**

जब मांग का आनुपातिक परिवर्तन, कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से अधिक होता है उस स्थिति में मांग की लोच एक से अधिक होती है।

सामान्यतया विलासिता की वस्तुओं की मांग लोचदार होती है अगर कीमतें थोड़ी सी कम की जाए तो इसकी मांग बहुत अधिक बढ़ जाती है।

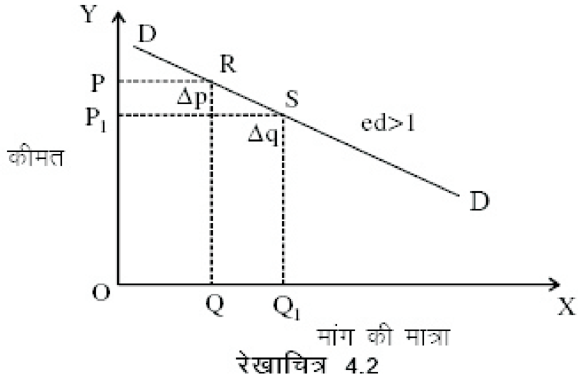

रेखाचित्र 4.2

चित्र में OP कीमत पर वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा OQ है अतः कुल खर्च (expenditure) = OP X OQ = क्षेत्रफल OQRP

जब कीमत के घटने पर अर्थात OP_1, होने पर वस्तु की मांगे जाने वाली मात्रा बढ़कर OQ_1 होती है

तब कुल खर्च = Op_1 x OQ_1 = क्षेत्रफल OQ_1 SP_1

चित्र में क्षेत्रफल OQ_1 $SP_1 >$ OQRP

इससे सिद्ध हुआ कि अगर कीमत के घटने पर कुल खर्च बढ़ता है तो ऐसी स्थिति में मांग की कीमत लोच इकाई से अधिक होती है।

(3) इकाई के बराबर लोच ($ed = 1$)

जब मांग का आनुपातिक परिवर्तन कीमत के आनुपातिक परिवर्तन के बराबर होता है, तब लोच इकाई के बराबर होती है। ऐसी स्थिति में मांग वक्र आयातकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbola) होता है जिसके सब बिन्दुओं पर मांग की लोच इकाई के बराबर होती है।

आयातकार अतिपरवलय (Rectangular Hyperbola) वह वक्र है जिसके नीचे खींचे गए सभी आयतों का क्षेत्र समान होता है। इसके अनुसार कीमतों के घटने या बढ़ने से वस्तु पर किया गया खर्च (expenditure) अगर समान रहता है तो मांग की लोच इकाई के बराबर होती है।

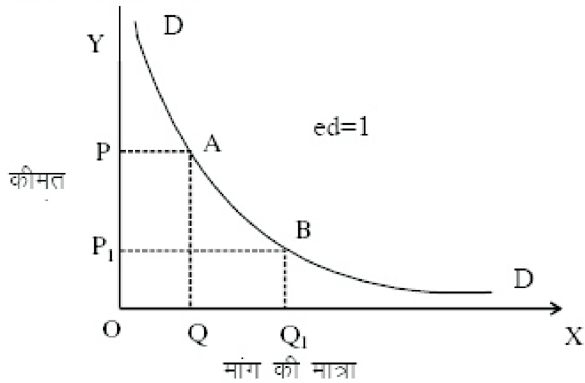

रेखाचित्र 4.3

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चित्र में A बिन्दु पर कीमत = OP तथा वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा OQ है।

अतः A बिन्दु पर खर्च = OP x OQ = क्षेत्रफल OQAP कीमत के घटकर OP_1 होने पर अर्थात मांग वक्र के B बिन्दु पर वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा = OQ_1 अतः B बिन्दु पर खर्च = $OP_1 x OQ_1$ = क्षेत्रफल $OQ_1 BP_1$

यदि मांग वक्र आयताकार अतिपरवलय है

तब क्षेत्रफल OQAP = OQ_1BP_1

अतः इस मांग वक्र के प्रत्येक बिन्दु पर मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर होती है।

(4) बेलोचदार मांग की लोच (ed<1)

जब मांग का आनुपातिक परिवर्तन कीमत के आनुपातिक परिवर्तन से कम होता है उस स्थिति में मांग की लोच एक से कम होती है।

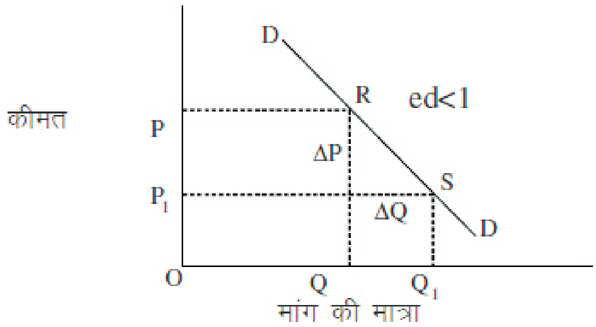

रेखाचित्र 4.4

चित्र में OP कीमत पर वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा OQ है। अतः R बिन्दु पर खर्च = OP x OQ = क्षेत्रफल OQRP

जब कीमत के घटने पर अर्थात OP_1 होने पर वस्तु की मांगी जाने वाली मात्रा बढ़कर OQ_1 हो जाती है तब S बिन्दु पर कुल खर्च = $OP_1 x OQ_1$ = क्षेत्रफल $OQ_1 SP_1$

चित्र में क्षेत्रफल OQ_1SP_1 < OQRP.

इससे सिद्ध हुआ है कि अगर कीमत के घटने पर कुल खर्च घटता है तो ऐसी स्थिति में मांग की लोच इकाई से कम होती है।

(5) शून्य लोच (ed = o)

जब कीमत के परिवर्तन से मांग पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता है तो ऐसी स्थिति में शून्य लोच भी होती है। इस स्थिति में मांग वक्र Y अक्ष के समानान्तर होता है।

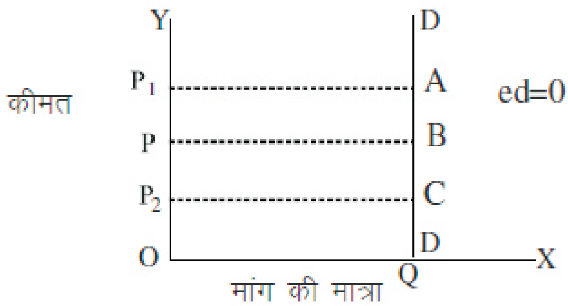

रेखाचित्र 4.5

चित्र में कीमत के OP, OP_1, या OP_2 कुछ भी होने पर मांग में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता है अर्थात मांग OQ ही बनी रहती है तो यह शून्य लोच की स्थिति है।

मांग की कीमत लोच को मापने की विधियां–

मांग की कीमत लोच को निम्न विधियों से मापा जा सकता है।

(1) आनुपातिक या प्रतिशत विधि :– इस विधि में मांग की कीमत लोच, मांग मे आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन का कीमत में आनुपातिक या प्रतिशत परिवर्तन का भाग देने से प्राप्त होती है।

$$ed = \frac{\text{मांग में आनुपातिक (प्रतिशत) परिवर्तन}}{\text{कीमत में आनुपातिक (प्रतिशत) परिवर्तन}}$$

$$ed = \frac{\text{मांग में परिवर्तन / प्रारम्भिक मांग}}{\text{कीमत में परिवर्तन / प्रारम्भिक कीमत}}$$

$$e_d \quad \frac{\frac{Q_1 \quad Q}{Q}}{\frac{P_1 \quad P}{P}}$$

$$e_d \quad \frac{\frac{Q}{Q}}{\frac{P}{P}} \quad \frac{Q}{P} \quad \frac{P}{Q}$$

यहां पर e_d = मांग की कीमत लोच

Q = प्रारम्भिक मांग

P = प्रारम्भिक कीमत

Q_1 = नई मांग

P_1 = नई कीमत

Q = मांग में परिवर्तन

P = कीमत में परिवर्तन

उदाहरण माना अनार की कीमत 100 रु. है तो अनार की उपभोक्ता द्वारा मांगे जाने वाली मात्रा 250 ग्राम है। जब अनार की कीमत घटकर 50 रु. हो जाती है तो उपभोक्ता द्वारा मांगे जानी वाली मात्रा बढ़कर 750 ग्राम हो जाती है। प्रतिशत विधि द्वारा मांग की कीमत लोच ज्ञात कीजिए।

उत्तर – यहां P = 100 रू., P_1 = 50 रू.

Q = 250 ग्राम, Q_1 = 750 रू.

Q = 500 ग्राम,

P = 50

$$e_d \quad \frac{\frac{500}{250}}{\frac{50}{100}} \quad 4$$

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(2) ज्योमिति विधि (बिन्दु विधि)

ज्योमिति विधी का प्रयोग मांग वक्र के किसी बिन्दु पर मांग की कीमत लोच की गणना में किया जाता है।

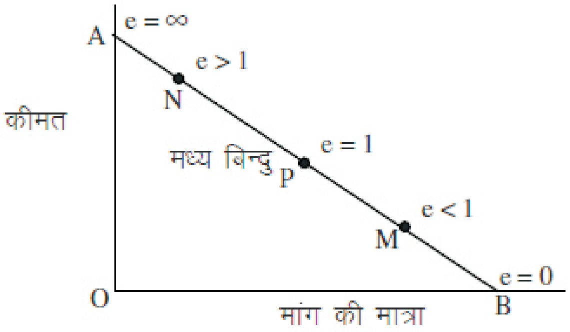

चित्र में AB एक सरल रेखीय मांग फलन है। P एक बिन्दु है जो इस मांग वक्र को दो हिस्सो में PB (निचला हिस्सा) तथा PA (ऊपरी हिस्सा) में बांटता है।

P बिन्दु पर लोच का माप मांग वक्र का निचला हिस्सा तथा मांग वक्र के ऊपरी हिस्से का अनुपात होता है।

अर्थात

e_d (P बिन्दु पर) $\frac{PB}{PA}$ 1

चूंकि P बिन्दु इस मांग वक्र का मध्य बिन्दु भी है अतः निचला हिस्सा = उपरी हिस्सा अतः इस बिन्दु P पर मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर होती है।

माना हमें इस मांग वक्र AB के PB टुकड़े के बीच में M बिन्दु पर मांग की कीमत लोच निकालनी है तो

e_d (बिन्दु M पर) $\frac{\text{निचला हिस्सा}}{\text{ऊपरी हिस्सा}}$ $\frac{MB}{MA}$

अतः e_d बिन्दु M पर एक से कम है।

माना हमें B बिन्दु पर मांग लोच निकालनी है तो

e_d (बिन्दु B पर) $\frac{\text{निचला हिस्सा}}{\text{ऊपरी हिस्सा}}$ $\frac{O}{AB}$ 0

माना हमें इस मांग वक्र AB के PA टुकड़े के बीच में N बिन्दु पर मांग की कीमत लोच निकालनी है तो

e_d (बिन्दु N पर) $\frac{\text{निचला हिस्सा}}{\text{ऊपरी हिस्सा}}$ $\frac{NB}{NA}$

∵ NB NA

अतः N बिन्दु पर e_d एक से अधिक (ed>1) होती है।

माना हमें A बिन्दु पर मांग लोच ज्ञात करनी है तब

e_d (बिन्दु A पर) $\frac{\text{निचला हिस्सा}}{\text{ऊपरी हिस्सा}}$ $\frac{BA}{O}$

अतः A बिन्दु पर मांग की लोच अनन्त (ed 0) होगी। मांग की लोच की इस विधि का उपयोग तब किया जाता है जब कीमत और मांग के बीच आंकड़ों में अधिक अंतर हो। इस विधि के द्वारा मांग वक्र पर स्थित दो बिन्दुओं के मध्य मांग की लोच ज्ञात की जाती है।

(3) कुल व्यय विधि

इस विधि के अनुसार कीमत में परिवर्तन के फलस्वरुप कुल खर्च (Total Outlay) में परिवर्तन के आधार पर मांग की कीमत लोच मापी जा सकती है।

मार्शल के अनुसार मांग की कीमत लोच तीन प्रकार की होती है।

(1) लोचदार मांग (2) ऐकिक मांग की लोच (3) बेलोचदार मांग

(1) लोचदार मांग :– यदि कीमत मे थोड़ा सी कमी करने से कुल खर्चा बढ़ता है या कीमत को थोड़ा सा बढ़ाने पर कुल खर्च घटता है तो मांग लोचदार कहलाती है। माना बीकानेरी भुजिया की कीमत 90 रु. प्रति किलोग्राम है इस पर भुजिया की मांग 400 किलोग्राम है तो भुजिया पर कुल खर्च = 90 X 400 = 36000 रु.

माना भुजिया की कीमत घटकर 80रु. हो गयी है तो इस पर मांग बढ़कर 550 किलोग्राम हो जाए तो अब भुजिया पर किया कुल खर्च = 80 X 550 = 44000 रु. चूंकि कीमत के घटने पर कुल खर्च बढ़ा है अतः ऐसी स्थिति में मांग की कीमत लोच इकाई से अधिक है।

(2) ऐकिक मांग की लोच यदि कीमत मं थोड़ा सा परिवर्तन करने पर कुल खर्च अपरिवर्तित रहता है तो मांग की लोच इकाई के बराबर होती है।

अगर पानी की बोतल की कीमत 10 रु. है उस पर पानी की मांग 400 बोतल है तो कुल खर्च = 10 x 400 = 4000 रु. अगर पानी की कीमत घटकर 8 रु. हो जाए और मांग बढ़कर 500 रु बोतल हो जाए तो कुल खर्च = 8 x 500 = 4000 रु. हम देखते है कि पानी पर कुल खर्च 4000 अपरिवर्तित रहता है अतः मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर है।

(3) बेलोचदार मांग

यदि कीमत में थोड़ी कमी करने से कुल खर्च भी कम हो जाता है या कीमत में थोड़ी वृद्धि करने पर कुल खर्च बढ़ जाता है उदाहरण के तौर पर यदि नमक की कीमत 10 रु. प्रति किलोग्राम है तो इस पर कुल मांग 100 किलोग्राम है तो नमक पर किया गया खर्च 10 x 100 = 1000 रु. है। यदि नमक की कीमत घटकर 8 रु

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रति किलोग्राम है तो नमक की मांग बढ़कर 110 है तो नमक पर किया गया खर्च 8 x 110 = 880 रु. है तो मांग की कीमत लोच इकाई से कम होगी नमक की कीमत कम होने पर कुल खर्च कम होता है इसलिए मांग की कीमत लोच बेलोचदार अर्थात $e<1$ होती है।

अतः लोचदार मांग के सम्बन्ध में कीमत व कुल खर्च विपरीत दशा में होते है। जबकि कम लोचदार मांग में कीमत व कुल खर्च एक दिशा में बढ़ते है। मांग की लोच के एक के बराबर होने पर कुल खर्च बदलता नहीं है। इस विधि की सबसे बड़ी सीमा यही है कि इसमें हम यह पता लगा सकते है कि लोच एक से ज्यादा, एक से कम व एक के बराबर होगी। लोच का सही – सही मापन इस विधि से संभव नहीं है।

संख्यात्मक प्रश्न

1. जब किसी वस्तु की कीमत 11रु. प्रति इकाई है तब उपभोक्ता उसकी 8 इकाई खरीदता है। जब कीमत घटकर 8रु. प्रति इकाई हो जाती है तब वह उसकी 11 इकाई खरीदता है। कुल खर्च की विधि से मांग की लोच ज्ञात कीजिए।

   उत्तर :– कुल खर्च की विधि से पहली स्थिति में

   कुल खर्च = 11 x 8 = 88 रु.

   दूसरी स्थिति में कुल खर्च = 8 x 11 = 88 रु.

   दोनों स्थिति मे कुल खर्च समान है अतः मांग की कीमत लोच इकाई के बराबर होगी।

2. निम्न तालिका के आधार पर मांग की कीमत लोच की गणना प्रतिशत विधि से कीजिए।

कीमत प्रति इकाई (रु)	कुल खर्च (रु)
10	180
9	162

उत्तर :– हम कुल खर्च में कीमत का भाग देकर दोनो ही स्थिति में मांग (q) निकालेंगे।

$$q_1 \quad \frac{180}{10} \quad 18$$

$$q_2 \quad \frac{162}{9} \quad 18$$

यहां पर $P_1 = 10, Q_1 = 18$

$P_2 = 9, \; Q_2 = 18$

$$e_d \quad \frac{\frac{0}{18}}{\frac{1}{10}} \quad 0$$

मांग की लोच के निर्धारक घटक

मांग की लोच निम्न कारकों पर निर्भर करती है।

(1) वस्तु की प्रकृति पर :– जो वस्तुएं अत्यावश्यक होती है उनकी मांग बेलोच होती है। इनकी कीमते बढ़ने पर भी उपभोक्ता इनके उपभोग को घटा नहीं सकता जैसे – अनाज व दवाएं आदि। $(e_d < 1)$

दूसरी किस्म की वस्तुएं आरामदायक वस्तुएं होती हैं। इन वस्तुएं की मांग की लोच एक होती है। क्योंकि कीमतों के बदलने पर भी इन पर उपभोक्ता द्वारा किया गया खर्च समान रहता है। $(ed=1)$

तीसरी किस्म की वस्तुएं विलासिता की वस्तुएं (Luxury goods) होती हैं। इनकी कीमतों में परिवर्तन होने पर इनकी मांगी जाने वाली मात्राओं में ज्यादा परिवर्तन होता है। अतः इनकी मांग अधिक लोचदार होती है $(ed > 1)$ । इन वस्तुओं का उदाहरण जैसे – वातानुकुलित संयत्र।

(2) प्रतिस्थापन वस्तुओं की उपलब्धता पर :–

वे वस्तुएं जिनके निकट के स्थानापन्न पदार्थ होते हैं जैसे चाय और कॉफी, इनकी मांग लोचदार होती है।

वे वस्तुएं जिनके निकट के स्थानापन्न नहीं होते हैं। उनकी मांग कम लोचदार होती है जैसे गेहूँ ।

(3) वस्तुओं के विभिन्न उपयोग :–

वे वस्तुएं जिनके कई उपयोग होते हैं उनकी मांग लोचदार होती है अगर इन वस्तुओं की कीमत काफी बढ़ जाती है तो उपभोक्ता इनका दूसरे उपयोगों से प्रयोग घटाकर सबसे ज्यादा उपयोग में होने वाले काम में करेंगे। जैसे बिजली की दरों में वृद्धि के फलस्वरुप बिजली का प्रयोग पानी गरम करने में या खाना बनाने में नहीं होगा।

(4) उपभोक्ता की बजट में इस वस्तु की महत्ता :–

अगर उपभोक्ता अपनी आय में से किसी वस्तु पर बहुत कम अनुपात में खर्च करते हैं तो ऐसी वस्तु की मांग की लोच बहुत कम होती हैं। ऐसी वस्तुएं माचिस, सेफ्टिपिन, पेन्सिल है। वे वस्तुएं जिन पर उपभोक्ता अपनी आय का बड़ा हिस्सा खर्च करता है उनकी मांग काफी लोचदार होती है जैसे कार इत्यादि।

(5) उपभोग को स्थगित करना :–

वस्तुओं की मांग लोचदार होगी जिनके उपभोग को स्थगित किया जा सकता है। गृह निर्माण की मांग ऐसा उदाहरण है। जब ब्याज दरें अधिक होती है तो लोग गृह निर्माण हेतु ऋणों की मांग कम कर देते हैं।

(6) उपभोक्ताओं की आदतों पर :–

वे वस्तुएं जिनके उपभोक्ता आदी हो जाते हैं उनकी मांग बेलोच होती है जैसे सिगरेट, तम्बाकु आदि। इन वस्तुओं पर करों को बढ़ाने पर भी इन वस्तुओं के उपभोग को कम नहीं किया जा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सकता।

(7) समयावधि पर :–

अल्पकाल में किसी वस्तु की मांग बेलोच होती है, जबकि दीर्घकाल में वस्तु की मांग लोचदार होती है क्योंकि अल्पकाल की तुलना में दीर्घकाल में उपभोक्ता अपनी उपभोग प्रवृत्ति को बदल सकता है।

उपरोक्त अध्ययन से मांग की कीमत लोच विश्लेषण को विस्तृत रूप में समझाया गया है साथ ही साथ मांग की लोच के अन्य प्रकार भी है जैसे आय लोच, तिरछी लोच और प्रतिस्थापन लोच।

मांग की लोच की बहुत अधिक व्यावहारिक उपयोगिता है। इसकी सहायता से विभिन्न बाजारों में साधन कीमत निर्धारण, सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार सम्बंधी समस्याओं का विश्लेषण किया जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

कीमतों में परिवर्तन के फलस्वरुप मांग मे होने वाले परिवर्तन की प्रतिक्रियाशीलता मांग की कीमत लोच कहलाती है और यह ऋणात्मक होती है क्योंकि वस्तु की कीमत व उसकी मांगी जाने वाली मात्रा में सम्बन्ध प्रतिलोम होता है।

मांग की लोच की विभिन्न श्रेणियां

(1) पूर्णतया लोचदार **ed =**

किसी एक विशेष कीमत पर अनन्त मांग होती है और कीमत में तनिक वृद्धि से मांग शून्य हो जाती है।

(2) लोचदार **(ed > 1)**

जब मांगी जाने वाली मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन > कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से

(3) इकाई लोच **ed = 1**

जब मांगी जाने वाली मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन = कीमत में प्रतिशत परिवर्तन के

(4) बेलोचदार **(ed < 1)**

जब मांगी जाने वाली मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन < कीमत में प्रतिशत परिवर्तन से

(5) शून्य लोच **ed = 0**

पूर्णतया बेलोचदार जब कीमत में परिवर्तन से मांग में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

मांग की कीमत लोच मापन की विधियां

(a) प्रतिशत विधि

मांग की कीमत लोच

$$ed = \frac{\text{वस्तु की मांगे जाने वाली मात्रा में प्रतिशत परिवर्तन}}{\text{कीमत में प्रतिशत परिवर्तन}}$$

(b) बिन्दु विधि

मांग की कीमत लोच

$$ed = \frac{\text{मांग वक्र का निचला हिस्सा}}{\text{मांग वक्र का ऊपरी हिस्सा}}$$

(c) कुल व्यय विधि :–

इस विधि में कीमत में परिवर्तन के फलस्वरुप कुल खर्च में परिवर्तन के आधार पर मांग की कीमत लोच निकाली जाती है।

(1) यदि कीमत में थोड़ा सा कमी करने से कुल खर्च बढ़ता है या कीमत को थोड़ा सा बढ़ाने पर कुल खर्च घटता है तो मांग लोचदार होती है।

(2) यदि कीमत में थोड़ा सा परिवर्तन करने पर कुल खर्च अपरिवर्तित रहता है तो मांग की लोच इकाई के बराबर होती है।

(3) यदि कीमत में तनिक कमी करने से कुल खर्च भी कम हो जाता है या कीमत में तनिक वृद्धि करने पर कुल खर्च बढ़ जाता है तो मांग बेलोच (इकाई से कम) होती है।

मांग की लोच को प्रभावित करने वाले कारक

(1) वस्तु की प्रकृति

(2) प्रतिस्थापन वस्तुओं की उपलब्धता

(3) वस्तुओं के विभिन्न उपयोग

(4) उपभोक्ता के बजट में इस वस्तु की महत्ता

(5) उपभोक्ता की आदतों पर

(6) समयाविधि पर

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. यदि किसी वस्तु की कीमत बढ़ने के फलस्वरुप उस वस्तु की मांग में कोई परिवर्तन नहीं होता है तब उसकी मांग होगी–

(अ) पूर्णतया बेलोचदार

(ब) इकाई के बराबर

(स) अनन्त

(द) पूर्णतया लोचदार

2. वस्तु की कीमत में वृद्धि से बेलोच मांग की स्थिति में उपभोक्ता का कुल व्यय पर क्या प्रभाव पड़ेगा–

(अ) अपरिवर्तित (ब) शून्य

(स) बढ़ेगा (द) घटेगा

3. ज्योमिति विधि से मांग की लोच का सूत्र है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) $\frac{\text{मांग वक्र का निचला हिस्सा}}{\text{मांग वक्र का ऊपरी हिस्सा}}$

(ब) $\frac{\text{मांग वक्र का ऊपरी हिस्सा}}{\text{मांग वक्र का निचला हिस्सा}}$

(स) $\frac{q/q}{p/p}$

(द) $\frac{p/p}{q/q}$

4. यदि समोसे की कीमत में 10 प्रतिशत वृद्धि होने से उसकी मांग 10 प्रतिशत गिरती है। अतः समोसे की मांग होगी।
(अ) इकाई लोच के बराबर
(ब) शून्य लोच
(स) इकाई लोच से अधिक
(द) इकाई लोच से कम

5. बिन्दु विधि में बिन्दु P पर मांग की लोच होगी।

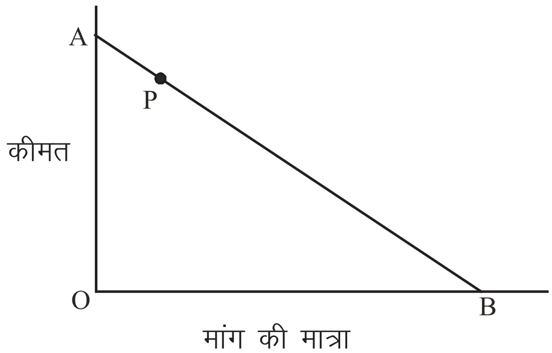

(अ) अधिक लोचदार (ब) इकाई लोच
(स) कम लोचदार (द) इनमें से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. मांग की कीमत लोच को परिभाषित कीजिए।
2. यदि मांग वक्र x अक्ष के सामानान्तर है तो मांग की लोच होगी।
3. किसी मांग वक्र के मध्य बिन्दु पर मांग की लोच क्या होगी।
4. पानी की मांग बेलोचदार क्यों होती है।
5. ज्यामितीय विधि से मांग की लोच ज्ञात करने का सूत्र क्या है।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. मांग की कीमत लोच को प्रभावित करने वाले दो कारकों को समझाइये।
2. पूर्णतया बेलोच मांग व पूर्णतया लोचदार मांग वक्र को चित्र बनाकर समझाइये।
3. प्रतिशत विधि से मांग की कीमत लोच कैसे ज्ञात करते हैं।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. मांग की लोच की विभिन्न श्रेणियों को चित्र बनाकर समझाइयें।
2. मांग की कीमत लोच को मापने की विधियों को समझाइयें।
3. मांग की लोच के निर्धारित घटकों को विस्तार से वर्णन कीजिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	स	अ	अ	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 5

पूर्ति की अवधारणा
(Concept of Supply)

किसी भी वस्तु या सेवा के कीमत निर्धारण में उसकी माँग और पूर्ति का विश्लेषण करना अति आवश्यक है। आइये हम पूर्ति की अवधारणा को विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं। सर्वप्रथम हमें पूर्ति के अर्थ को समझना होगा।

किसी वस्तु की पूर्ति का अभिप्राय वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित अवधि में, निश्चित कीमत पर बेचने को तत्पर रहता है।

सामान्यतः हम उत्पादक द्वारा तैयार माल के स्टॉक और पूर्ति का अर्थ एक ही मानते हैं जबकि अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से ये दो अलग–अलग अवधारणाएँ हैं। यद्यपि पूर्ति स्टॉक का एक भाग कही जा सकती हैं। इसे इस प्रकार सरल उदाहरण की सहायता से समझा जा सकता है। यदि एक उत्पादक ने अपनी तेल मिल में 100 टिन तेल का उत्पादन किया है तो ये सभी 100 टिन उसके द्वारा तैयार माल का स्टॉक कहलाएगा। यदि वह उस वित्तीय वर्ष में 90 टिन बाजार भाव पर बेचने के लिए तैयार है तो ये 90 टिन उसकी पूर्ति मात्रा कहलाएगी।

अतः पूर्ति स्टॉक का वह भाग हैं जिसे उत्पादक विक्रय करने के लिए निर्धारित अवधि में तत्पर हैं।

पूर्ति को प्रभावित करने वाले तत्व :–

किसी वस्तु अथवा सेवा की पूर्ति बाजार में अनेक कारकों से प्रभावित होती है। कुछ ऐसे कारक हैं जिनसे पूर्ति प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होती है जैसे वस्तु की बाजार कीमत और वस्तु को उत्पादित करने वाले साधनों की कीमत। इसी प्रकार कुछ अन्य कारक भी परोक्ष रूप से पूर्ति को प्रभावित करते हैं जो इस प्रकार हैं :–

(1) वस्तु की बाजार कीमत :– जब किसी वस्तु अथवा सेवा की बाजार कीमतें अधिक होती है, तो उसके उत्पादक को अधिक लाभ प्राप्त होता हैं इससे उत्साहित होकर बाजार में उस वस्तु के सभी उत्पादक अपना उत्पादन बढ़ाकर पूर्ति मात्रा बढ़ा देते हैं, इसके विपरीत बाजार कीमत कम होने पर वस्तु की पूर्ति भी कम हो जाती है।

(2) वस्तु के उत्पादक साधनों की कीमतें :– वस्तु के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कीमतें बढने पर उसकी उत्पादन लागत बढ़ जाती है। इसके विपरीत जिन वस्तुओं के उत्पादन में प्रयुक्त साधनों की कीमतें घट जाती हैं, उनकी उत्पादन लागत भी घट जाती है। ऐसे में अधिक उत्पादन लागत पर कम उत्पादन होने से बाजार में उत्पाद की पूर्ति घट जाती है और इसके विपरीत उत्पादन लागत घटने पर उसकी बाजार पूर्ति बढ़ जाती है।

(3) सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें :– बाजार में कभी–कभी वस्तु की पूर्ति अन्य सम्बन्धित वस्तुओं (पूरक या स्थानापन्न) की कीमतों के परिवर्तन से प्रभावित होती है। जिस वस्तु की सम्बन्धित वस्तु की कीमतें बढ़ती हैं तो उत्पादक उस वस्तु के उत्पादन को बढ़ाने की ओर प्रेरित होते हैं और अधिक लाभ प्राप्त करते हैं। ऐसे में जिस वस्तु की कीमत में कोई वृद्धि नहीं हुई है, उसकी पूर्ति कम हो जाती है।

पूरक वस्तुएँ :– व्यवहार में ऐसी वस्तुएँ पाई जाती हैं, जो अकेले क्रय तो की जा सकती हैं किंतु उसकी उपयोगिता तभी है जब उससे सम्बन्धित अन्य वस्तु को भी क्रय किया जाए। (अतः ऐसी वस्तुएँ जिनका एक साथ उपयोग किया जाता है तथा एक वस्तु के अभाव में दूसरी वस्तु की उपयोगिता शून्य हो जाती है।) उदाहरण के लिए पैन और स्याही, कार और पैट्रोल आदि पूरक वस्तुएँ हैं।

स्थानापन्न वस्तुएँ :– ऐसी वस्तुएँ जिनमें एक वस्तु के स्थान पर उससे सम्बन्धित अन्य वस्तु का उपयोग करने पर उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है स्थानापन्न वस्तुएँ कहलाती हैं। उदाहरण के लिए चाय और कॉफी दोनों गर्म पेय पदार्थ हैं और एक के स्थान पर दूसरे पेय का उपयोग करने से व्यक्ति को समान संतुष्टि प्राप्त होगी। इसी प्रकार पेप्सी और कोक भी स्थानापन्न वस्तु के उदाहरण हैं।

(4) तकनीकी / प्रौद्योगिकी परिवर्तन :– समय के साथ उत्पादन की नई–नई तकनीकें विकसित हो रही हैं जो कम समय और कम लागत पर अधिक उत्पादन प्रदान करती हैं जिससे किसी वस्तु विशेष की पूर्ति बाजार में बढ़ जाती है। ऐसे तकनीकी सुधार नवप्रवर्तनों को जन्म देते हैं इससे उत्पादकों के लाभों में यकायक वृद्धि होती है।

(5) विशेष अवसर :– भारतीय अर्थव्यवस्था में त्यौहारों एवं उत्सवों का विशेष महत्व है जिसमें विशिष्ट वस्तुओं या सेवाओं की माँग अचानक बढ़ती है अतः उसकी पूर्ति करने हेतु ऐसे विशेष अवसरों पर उत्पादक अपना लाभ अधिकतम करने के लिये अपनी पूर्ति बढ़ा कर बिक्री बढ़ाने का प्रयास करते हैं।

(6) आगतो की गुणवत्ता :– कई बार अच्छे किस्म का कच्चा माल उपयोग करने से भी वस्तु की उत्पादन मात्रा में वृद्धि होती है। विशेषकर कृषिगत उत्पादन में अच्छे किस्म के "हाइब्रिड" बीजों के उपयोग से पैदावार में अत्यधिक वृद्धि प्राप्त होती है जिससे उसकी पूर्ति बढ़ जाती है।

(7) परिवहन लागतें :– बाजार पूर्ति पर परिवहन लागतों का भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि बेहतर परिवहन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सुविधाओं के कारण लागतें कम होती हैं तो इसका सीधा प्रभाव वस्तु की परिवहन मात्रा पर पड़ता है और पूर्ति बढ़ जाती है।

पूर्ति का नियम

पूर्ति का नियम :— एक निश्चित समय पर वस्तु विशेष पूर्ति की मात्रा और उसकी कीमत में फलनात्मक सम्बंध को व्यक्त करता है।

$$S_x=f(P)$$

अन्य बातें समान रहने पर, वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी पूर्ति बढ़ जाती है और कीमत घटने पर पूर्ति घट जाती है, इसे ही पूर्ति का नियम कहते हैं।

अतः पूर्ति का नियम यह बताता है कि वस्तु की कीमत और पूर्ति समान दिशा में गतिशील होते हैं अर्थात् वस्तु की कीमत और पूर्ति में प्रत्यक्ष और धनात्मक सम्बन्ध होता है।

पूर्ति के नियम की मान्यताएँ :—

1. वस्तु विशेष के उत्पादन साधनों की पूर्ति और कीमतें स्थिर रहें।
2. वस्तु विशेष के उत्पादन की तकनीक स्थिर रहे।
3. वस्तु विशेष के प्रति विक्रेता एवं क्रेता की रुचि स्थिर रहे।
4. वस्तु विशेष की पूर्ति विभाज्य हो।
5. वस्तु विशेष से संबधित वस्तुओं की कीमतें स्थिर रहें।
6. सरकार द्वारा आरोपित कर एवं अनुदान स्थिर रहें।
7. कृषिगत पदार्थों की पूर्ति हेतु मौसम और जलवायु दशाएँ स्थिर रहें।
8. कृषिगत पदार्थों की पूर्ति उसकी कीमत की तुलना में समयावधि (Time Lag) के पश्चात् ही परिवर्तित हो पाती हैं।

पूर्ति के नियम की क्रियाशीलता के कारण :—

ऊँची कीमतों पर लाभ अधिकतम करने के लिए फर्में अधिक मात्रा बेचने का प्रयास करती हैं।

ऊँची बाजार कीमतों पर नए उत्पादकों का आगमन

दीर्घकाल में सभी उत्पादन साधनों की पूर्ति परिवर्तनशील होती है। अतः वस्तु की पूर्ति को बढ़ाना आसान होता है।

पूर्ति अनुसूची एवं पूर्ति वक्र के द्वारा पूर्ति के नियम का स्पष्टीकरण :—

पूर्ति अनुसूची का निर्माण पूर्ति नियम के आधार पर किया जा सकता है। पूर्ति अनुसूची दो प्रकार की होती है—

(1) व्यक्तिगत फर्म पूर्ति अनुसूची

(2) बाजार पूर्ति अनुसूची

व्यक्तिगत फर्म पूर्ति अनुसूची में किसी फर्म विशेष के द्वारा समय विशेष पर बाजार कीमतों पर उपलब्ध पूर्ति मात्रा को दर्शाया जाता है।

व्यक्तिगत फर्म की पूर्ति अनुसूची एवं पूर्ति वक्र :—

उदाहरण के लिये तालिका में एक बिस्किट उत्पादक की दो फर्मों की पूर्ति अनुसूचियों को प्रदर्शित किया गया है। निम्न तालिका में अलग—अलग फर्मों द्वारा दी हुई कीमतों पर बिस्किटों की पूर्ति मात्रा को प्रदर्शित किया है :—

फर्म A की पूर्ति अनुसूची		फर्म B की पूर्ति अनुसूची	
बिस्किट पैकेट कीमतें (रु में)	प्रतिदिन पूर्ति मात्रा (पैकेट में)	बिस्किट पैकेट कीमतें (रु में)	प्रतिदिन पूर्ति मात्रा (पैकेट में)
10	300	10	400
20	400	20	600
30	500	30	800
40	600	40	1000

उपर्युक्त फर्मों के द्वारा बाजार कीमतों पर उपलब्ध पूर्ति मात्रा के अनुरूप इनके पूर्ति वक्रों का स्वरूप नीचे दिखाए रेखाचित्रों में प्रदर्शित किया गया है। x-अक्ष पर बिस्किट पैकेट की पूर्ति मात्रा को और y-अक्ष पर अलग—अलग कीमतों को लिया गया है। कीमत और पूर्ति के संयोग बिंदुओं से प्राप्त वक्र एक धनात्मक ढाल वाला होता है। जिसे व्यक्तिगत पूर्ति वक्र कहा जाता है।

बाजार पूर्ति अनुसूची एवं पूर्ति वक्र :—

बाजार पूर्ति अनुसूची में विभिन्न बाजार कीमतों पर विशिष्ट वस्तु की पूर्ति करने वाली सभी फर्मों की पूर्ति मात्रा का योग प्रदर्शित किया जाता है। यदि बाजार में किसी वस्तु विशेष का उत्पादन करने वाली दो ही फर्में हैं A और B, जिनकी व्यक्तिगत पूर्ति तालिका ऊपर अलग—अलग दर्शायी गई है, बाजार की पूर्ति उपर्युक्त दोनों फर्मों द्वारा उपलब्ध पूर्ति के योग से इस प्रकार प्राप्त की जा सकती है —

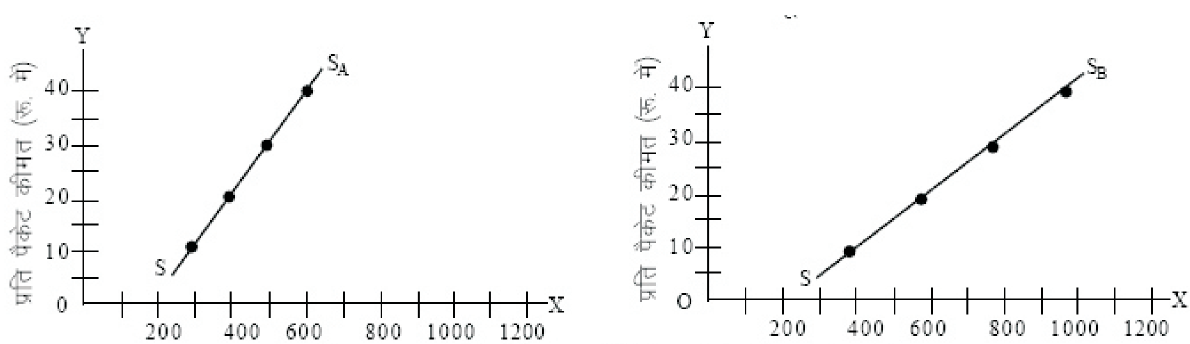

रेखाचित्र 5.1 : पूर्ति की मात्रा (बिस्किट पैकेटों की संख्या)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बाजार की पूर्ति अनुसूची			
बिस्किट पैकेट किमतें (रूपयों में)	बिस्किट पूर्ति A – फर्म द्वारा	बिस्किट पूर्ति B – फर्म द्वारा	बाजार कुल पूर्ति A+B = कुल पूर्ति
10	300	400	300 + 400 = 700
20	400	600	400 + 600 = 1000
30	500	800	500 + 800 = 1300
40	600	1000	600 + 1000 = 1600

बाजार पूर्ति वक्र (Market supply curve) :-

उपर्युक्त तालिका के आधार पर दोनों फर्मों A और B, की पूर्ति मात्राओं के योग से प्राप्त कुल बाजार पूर्ति से जो वक्र खींचे जाते हैं उन्हें बाजार पूर्ति वक्र कहते हैं। यह व्यक्तिगत फर्मों के पूर्ति वक्रों के क्षैतिज योग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। नीचे दिखाए रेखाचित्र में S_M वक्र बाजार पूर्ति वक्र है इसका धनात्मक ढाल वस्तु की कीमत और पूर्ति मात्रा के बीच प्रत्यक्ष धनात्मक सम्बन्ध को दर्शाता हैं।

बाजार पूर्ति वक्र

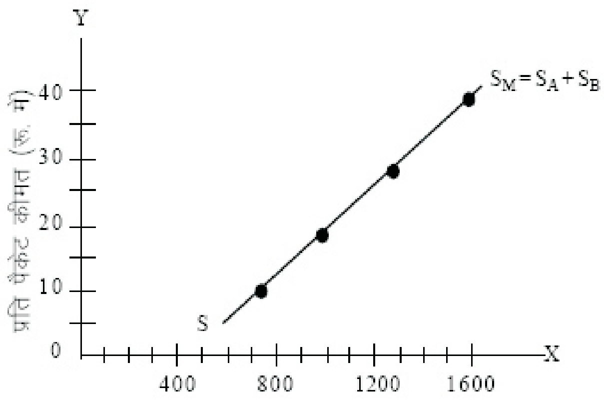

रेखाचित्र 5.2 : (बिस्किट पैकटों की संख्या)

उपर्युक्त रेखाचित्र में X अक्ष पर बिस्किट पैकटों की संख्या तथा Y अक्ष पर प्रति पैकेट कीमत को प्रदर्शित किया गया है। बाजार पूर्ति वक्र S_M व्यक्तिगत फर्म के पूर्ति वक्र S_A और S_B का क्षैतिज योग को प्रदर्शित करता हैं।

पूर्ति मात्रा में परिवर्तन :–

पूर्ति मात्रा में परिवर्तन केवल उस वस्तु की कीमत, जिसकी हम पूर्ति का विश्लेषण कर रहे हैं, से होता है। जबकि पूर्ति वक्र में परिवर्तन (शिफ्ट) 'अन्य कारकों' में परिवर्तन के फलस्वरूप होता है जिन्हें हम स्थिर मानकर चलते हैं। जैसे प्रोद्यौगिकी परिवर्तन, कच्चे माल की कीमत, विशेष अवसर, कर इत्यादि।

सर्वप्रथम हम वस्तु की पूर्ति मात्रा में परिवर्तन को वक्र के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं।

पूर्ति मात्रा में परिवर्तन (संकुचन व विस्तार)

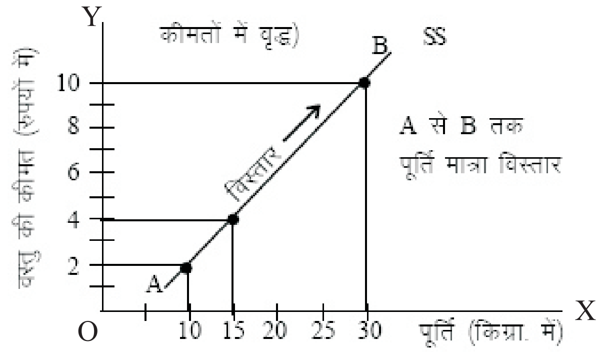

रेखाचित्र 5.3 :

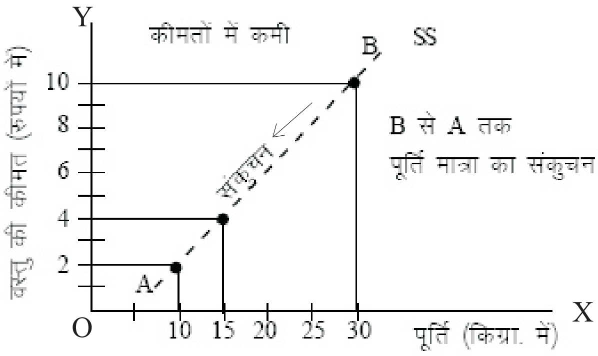

रेखाचित्र 5.4 :

उपरोक्त रेखाचित्र 5.3 से स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी पूर्ति मात्रा 10 (2 रुपये कीमत पर) किलोग्राम से बढ़कर 30 किलोग्राम (10 रुपये कीमत पर) हो जाती है जो पूर्ति मात्रा के विस्तार को दर्शाती है जिसे रेखाचित्र 5.3 में SS पूर्ति वक्र के A से B बिन्दु के मध्य वृद्धि (विस्तार) के रूप में दर्शाया गया है। इसी प्रकार उपरोक्त रेखाचित्र 5.4 से स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत में कमी आने पर उसकी पूर्ति 30 किलोग्राम से घटकर 10 किलोग्राम रह जाती है जिसे रेखाचित्र 5.4 में SS वक्र के B से A बिंदु के मध्य कमी (संकुचन) के रूप में दर्शाया गया हैं।

पूर्ति वक्र में परिवर्तन (विर्वतन) :–

पूर्ति वक्र में परिवर्तन वस्तु विशेष की कीमत में परिवर्तन से नहीं बल्कि 'अन्य कारकों' में परिवर्तन हो जाने से उत्पन्न होता है, जैसे प्रोद्यौगिक परिवर्तन, सम्बन्धित वस्तुओं की कीमतें, कर नीति, विशेष अवसर, इत्यादि से सम्पूर्ण पूर्ति वक्र ही शिफ्ट हो जाता है।

रेखाचित्र 5.5 A से स्पष्ट हैं कि प्रोद्यौगिक परिवर्तन में सुधार के फलस्वरुप बिना वस्तु की कीमत बढे उसकी पूर्ति मात्रा Qसे बढ कर Q_1 हो जाती है जो पूर्ति वक्र दाएँ शिफ्ट होना अर्थात पूर्ति में वृद्धि को दर्शाती हैं जिसे रेखाचित्र A में SS पूर्ति वक्र के बिन्दु E से SS_1 पूर्ति वक्र के बिन्दु E_1 तक दर्शाया गया है। इसी प्रकार उत्पादन लागत बढ़ने पर उसका पूर्ति वक्र बायीं ओर शिफ्ट हो जाता है अर्थात पूर्ति में कमी हो जाती है जिसे रेखाचित्र 7.5 B

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

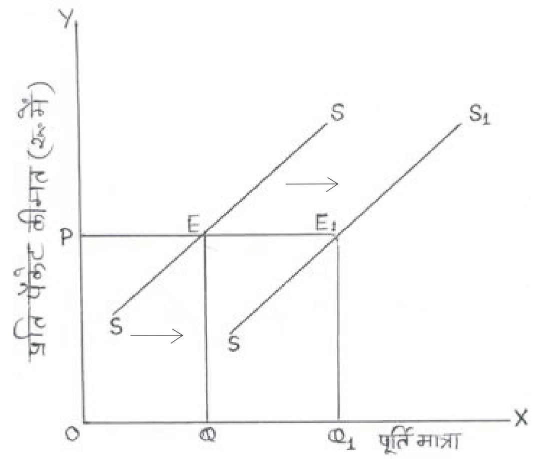

रेखाचित्र 5.5 (A)

पूर्ति वक्र नीचे विर्वतन होना पूर्ति में वृद्धि

में SS वक्र के E से E_1 पूर्ति वक्र के बिन्दु E_1 तक दर्शाया गया हैं। पूर्ति मात्रा Q से घटकर Q_1 हो जाती हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- पूर्ति स्टॉक का वह भाग है जिसे उत्पादक विक्रय करने के लिए निर्धारित अवधि में तत्पर है।
- किसी वस्तु की पूर्ति का अभिप्राय वस्तु की उस मात्रा से है जिसे विक्रेता एक निश्चित अवधि में, निश्चित कीमत पर बेचने को तत्पर रहता है।
- अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी पूर्ति बढ़ जाती है और कीमत घटने पर पूर्ति घट जाती है, इसे ही पूर्ति का नियम कहते हैं।
- स्थानापन्न वस्तुएँ : ऐसी वस्तुएँ जिसमें एक वस्तु के स्थान पर उससे सम्बन्धित अन्य वस्तु का उपयोग करने पर उपभोक्ता को समान संतुष्टि प्राप्त होती है।
- व्यक्तिगत फर्म पूर्ति अनुसूची में किसी फर्म विशेष के द्वारा समय विशेष पर विभिन्न बाजार कीमतों पर उपलब्ध पूर्ति मात्रा को दर्शाया जाता है।
- बाजार पूर्ति अनुसूची में ऐसी अनेक व्यक्तिगत फर्मों के द्वारा विभिन्न बाजार कीमतों पर उपलब्ध पूर्ति मात्राओं के योग को दर्शाया जाता हैं।
- पूर्ति मात्रा में परिवर्तन केवल उस वस्तु की कीमत, जिसकी हम पूर्ति का विश्लेषण कर रहें हैं, से होता हैं।
- पूर्ति वक्र में परिवर्तन (शिफ्ट) 'अन्य कारकों' में परिवर्तन के फलस्वरूप होता हैं जिन्हें हम स्थिर मानकर चलते हैं।

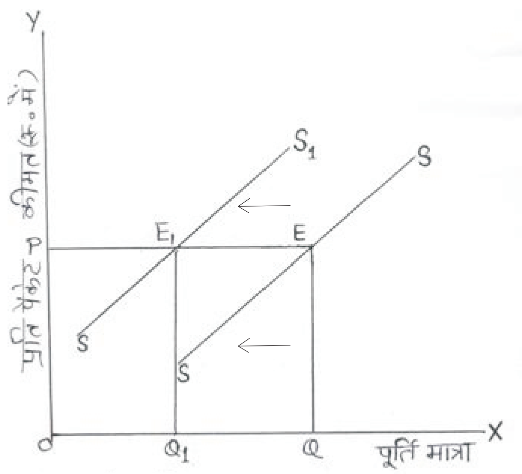

रेखाचित्र 5.5 (B)

पूर्ति वक्र ऊपर विवर्तन होना पूर्ति में कमी

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

(1) निम्न में से कौन सा तत्व पूर्ति को प्रभावित करता है –
(अ) वस्तु की कीमतें (ब) साधनों की कीमतें
(स) प्रोद्यौगिकी में परिवर्तन (द) उपर्युक्त सभी

(2) वस्तु की कीमत और उसकी पूर्ति के मध्य सम्बन्ध होता है–
(अ) प्रत्यक्ष व धनात्मक (ब) प्रत्यक्ष व ऋणात्मक
(स) आनुपातिक सम्बन्ध (द) अप्रत्यक्ष सम्बन्ध

(3) एक सामान्य वस्तु के पूर्ति वक्र का ढाल होता है–
(अ) धनात्मक (ब) आयताकार
(स) ऋणात्मक (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

(4) यदि एक उत्पादक किसी निश्चत समयावधि में कुल 200 इकाई उत्पादित करता है और उनमें से यदि 180 इकाई बिक्री हेतु बाजार में उपलब्ध करवाता है तो बाजार में उसकी पूर्ति होगी–
(अ) 200 (ब) 20
(स) 380 (द) 180

(5) निम्न में से कौनसा कारक पूर्ति वक्र में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी नहीं है –
(अ) कच्चे माल की कीमतें (ब) प्रोद्यौगिकी में परिवर्तन
(स) वस्तु की कीमत (द) विशेष अवसर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

1– पूर्ति को परिभाषित कीजिए।
2– स्टॉक से क्या अभिप्राय है?
3– पूर्ति के नियम से आप क्या समझते हैं?
4– बाजार पूर्ति का अर्थ लिखिये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1– पूर्ति तथा स्टॉक में भेद कीजिए।

2– पूर्ति के नियम की कोई चार मान्यताएँ लिखिए।

3– पूर्ति के नियम की क्रियाशीलता के कोई चार कारण लिखिए।

4– निम्नलिखित आंकड़ों से बाजार पूर्ति की गणना कीजिए।

कीमत	10	20	30	40	50	60	70
अ–फर्म की पूर्ति	10	15	20	30	40	50	60
ब–फर्म की पूर्ति	20	30	40	60	80	100	120

उत्तर : 30, 45, 60, 90, 120, 150, 180

5– पूर्ति वक्र में परिवर्तन को रेखाचित्रों की सहायता से समझाइये।

निबंधात्मक प्रश्न :–

1– पूर्ति को समझाइये तथा पूर्ति को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों का वर्णन कीजिए।

2– पूर्ति के नियम से आप क्या समझते हैं? पूर्ति के नियम को एक उदाहरण द्वारा तालिका और रेखाचित्र की सहायता से समझाइये।

3– पूर्ति वक्र में परिवर्तन (विवर्तन) किन कारणों से होता है? प्रोद्यौगिकी परिवर्तनों का प्रभाव किस प्रकार से पड़ता है? रेखाचित्र की सहायता से समझाइये।

4– पूर्ति में 'संकुचन' और 'विस्तार' को रेखाचित्र की सहायता से समझाइये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
द	अ	अ	द	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 6

उत्पादन फलन
(Production Function)

प्रारंभिक–

सामान्यतः वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति का उनकी कीमत से प्रत्यक्ष या सीधा सम्बन्ध देखा जाता है। अर्थात् वस्तुओं व सेवाओं की कीमत बढ़ने पर उन वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति बढती है। इसी प्रकार कीमत घटने पर उन वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति घटती है। एक अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति उन वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन की मात्रा पर आश्रित होती हैं। वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन की मात्रा ठीक इसी प्रकार दो बातों पर निर्भर करती है:–

1. उत्पादन के साधनों, या पड़तों **(Inputs)** की कीमतें 2. उत्पादन के साधनों या आदा **(Inputs)** के तथा उत्पादन अर्थात् प्रदा या निर्गत **(Outputs)** के बीच पाये जाने वाले भौतिक या मात्रात्मक सम्बन्ध पर। इस प्रकार उत्पादन के साधनों आदा या पड़तों (Inputs) व प्रदा या निर्गत (Outputs) के बीच पाये जाने वाले भौतिक या मात्रात्मक सम्बन्ध का आर्थिक–विश्लेषण करना आवश्यक हो जाता है। विभिन्न आर्थिक चरों में परस्पर संबंध पाया जाता है। जैसे – मांग फलन में वस्तुओं व सेवाओं की मांग व कीमत, पूर्ति फलन में वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति व कीमत। इसी तरह उत्पादन फलन में उत्पादन व उत्पादन में योगदान देने वाले उत्पादन के साधन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। जैसे श्रम, पूँजीं, भूमि, प्रबन्धन व तकनीक तथा साहस या उद्यमशीलता (L, K, N, T, E) व उनसे उत्पादित उत्पादन एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं।

फलन का अर्थ–

'फलन' गणित का एक तकनीकी विशेष शब्द (Technical Term) है। सामान्यतः 'फलन' का अर्थ दो चरों (स्वतन्त्र व आश्रित चर) के बीच पाया जाने वाला मात्रात्मक सम्बन्ध होता है। जैसे $Y = f(X)$ को (Y is function of X) के रूप में व्यक्त करते हैं। अर्थात् Y जो एक आश्रित चर है, वह स्वतन्त्र चर X से मात्रात्मक रूप में सम्बन्धित हैं। यहाँ 'f '– फलन का एक संकेत चिन्ह है। अल्फा सी. चियांग के शब्दों में 'फलन एक विशेष क्रम में चरों (स्वतन्त्र व आश्रित चर) के जोड़ों का समूह है। जिनकी (फलन की) यह विशेषता है कि फलन उनके बीच **X** का कोई एक मूल्य **Y** के एक अद्वितीय मूल्य का निर्धारण करता है।'

उत्पादन फलन का अर्थ –

उत्पादन फलन एक मात्रात्मक सम्बन्ध होता है। अर्थात किसी वस्तु की मात्रा जैसे एक मीटर कपड़ा व उस वस्तु (यहाँ– एक मीटर कपड़ा) के उत्पादन हेतु काम में आने वाले साधनों की मात्रा जैसे एक श्रमिक, दस हजार की मशीन व 20 फिट लम्बी व 20 फिट चौड़ी जमीन का उपयोग होता है। अतः एक मीटर कपड़ा के उत्पादन व एक श्रमिक, दस हजार की मशीन व 20 फिट लम्बी व 20 फिट चौड़ी जमीन के बीच का सम्बन्ध मात्रात्मक सम्बन्ध कहलायेगा। उपर्युक्त सम्बन्ध मात्रात्मक सम्बन्ध इसलिए कहलायेगा कि इसमें एक मीटर कपड़ा व एक श्रमिक की मात्रा व दस हजार की मशीन व 20 फिट लम्बी व 20 फिट चौड़ी जमीन की मात्रा तुलनात्मक रूप से जुड़ी हैं। उत्पादन फलन को निम्न प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं–

$$Q_{\text{1 Meter Cloth}} = f(20 \times 20\text{Land}, \ 1\text{ L}, 10{,}000\text{ K})$$

उत्पादन फलन की परिभाषाएँ – उत्पादन फलन को विभिन्न अर्थशास्त्रियों द्वारा अलग–अलग तरह से परिभाषित किया गया है । विभिन्न परिभाषाएँ निम्न हैं–

"उत्पादन फलन एक अभियान्त्रिकी (Engineering) संकल्पना (विचार या प्रत्यय) है, जो उत्पादन के साधनों (Inputs) की सहायता से उत्पादन (Outputs) के बीच विद्यमान तकनीकी व मात्रात्मक सम्बन्ध को समझाता है।" –हेण्डरसन व क्वॉण्ट

"यदि एक फर्म द्वारा उत्पादित उत्पादन की मात्रा Q है जब उत्पादन के साधन श्रम, पूँजीं, भूमि, प्रबन्धन व तकनीक तथा साहस या उद्यमशीलता **(Ld, L, K, O)** को उत्पादन में लगाया जाता है, हम उस उत्पादन–फलन को इस प्रकार लिखेंगे :– **$Q = f(Ld, L, K, O)$**" –डॉ. बलवन्त कन्दोई

"उत्पादन के साधनों की मात्रा और उत्पादन की मात्रा के मध्य सम्बन्ध उत्पादन फलन कहलाता है।" –एन. ग्रेगॉरी मेन्कीव

इस प्रकार उत्पादन फलन का हिन्दी में सरल रूप निम्न प्रकार लिख सकते हैं :– उ = फ (श्र, पूँ, भू, त, सा) जहाँ संकेताक्षरों का निम्न अर्थ हैं: – उ = उत्पादन, फ = फलन का संकेत चिह्न, श्र = श्रम, पूँ = पूँजीं, भू = भूमि, त = प्रबन्धन व तकनीक, तथा सा = साहस या उद्यमशीलता।

उत्पादन फलन की मान्यताएँ–

पूर्व में यह ज्ञात है कि मान्यतायें वे मूलभूत व आवश्यक बातें, दशायें या शर्ते होती हैं जिन पर नियम या सिद्धान्त निर्भर करते हैं। इन मूलभूत व आवश्यक बातों का पूरा होना किसी नियम व सिद्धान्त के वास्तव में खरा उतरने या पूर्णतः सत्य सिद्ध होने के लिए आवश्यक होता है। उत्पादन फलन को पूर्णतः सत्य सिद्ध होने के लिए भी आवश्यक कुछ मान्यतायें या दशायें या शर्ते

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

होती हैं। उत्पादन फलन की मुख्य मान्यतायें निम्न हैं:–

1. उत्पादन फलन की एक निश्चित तकनीक होती है जो बाहर से दी हुई है।
2. उत्पादन के साधनों की कीमते जो बाहर से दी हुई है।
3. उत्पादन फलन का सम्बन्ध एक निश्चित समय की अवधि से होता है।
4. उत्पादन के साधनों के संयोग–अनुपात एक सीमा तक ही बदल सकते हैं।
5. उत्पादन के साधनों की आपस में समरूपता होती है।
6. उत्पादन के साधनों की परिवर्तनीयता संभव है।
7. उत्पादन के साधनों के परिवर्तन की प्रक्रिया एक–एक करके की जाती है।
8. उत्पादन के साधनों का एक सीमा तक ही प्रतिस्थापन हो सकता है।
9. अल्पकाल में उत्पादन के स्थिर–साधनों की पूर्ति बेलोचदार होती है।
10. फर्म का एक उद्देश्य लाभ अथवा उत्पादन का अधिकतमकरण करना है।
11. उत्पादन में साधनों का उपयोग पूर्ण–कार्य कुशलता से किया जाता है।

यदि उपर्युक्त मान्यताओं में कोई बदलाव होता है तो उत्पादन फलन में भी बदलाव करना पड़ेगा।

उत्पादन फलन की विशेषताएँ–

उत्पादन फलन की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर उत्पादन फलन की कुछ प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं:–

1. उत्पादन फलन अभियान्त्रिकी (Engineering) संकल्पना है।
2. उत्पादन फलन साधनों व उत्पादन के प्रवाह से सम्बन्धित हैं।
3. यह साधनों द्वारा रूपान्तरित उत्पादन के सम्बन्ध को व्यक्त करता है।
4. उत्पादन फलन साधनों व उन साधनों द्वारा उत्पादित उत्पादन की भौतिक मात्रा को बताता है।
5. उत्पादन फलन का सम्बन्ध एक निश्चित समय की अवधि से होता है।
6. एक उत्पादन फलन में एक श्रम की इकाई का दूसरी से व एक पूँजीं की इकाई का दूसरी से प्रतिस्थापन किया जा सकता हैं।
7. उत्पादन फलन एक निश्चित दी हुई तकनीक से सम्बन्धित होता है।
8. उत्पादन फलन के द्वारा केवल साधनों और उत्पादन की भौतिक मात्रा को सम्मिलित करते हैं किन्तु उनकी कीमतों को सम्मिलित नहीं करते हैं।
9. अवधि के आधार पर उत्पादन फलन अल्पकालीन व दीर्घकालीन होता है।

उपर्युक्त विशेषताएँ जानने के बाद उत्पादन में होने वाले परिवर्तनों को समझना आवश्यक है। उत्पादन फलन की सहायता से अल्पकाल व दीर्घकाल की अवधियों में उत्पादन में होने वाले परिवर्तनों को समझ सकते हैं। समय के आधार पर उत्पादन के साधनों व उनके अनुपातों में परिवर्तनशीलता को ध्यान में रखते है।

अल्पकालीन व दीर्घकालीन उत्पादन फलन में अन्तर –

समय के आधार पर उत्पादन फलन अल्पकालीन व दीर्घकालीन होते हैं। दोनों उत्पादन फलनों में साधन–अनुपातों से प्रमुख अन्तर होता है। अल्पकाल में उत्पादन में परिवर्तन अल्पकालीन उत्पादन फलन की शर्तो के अन्तर्गत होता है। अल्पकाल में स्थिर तथा परिवर्तनशील साधनों के अनुपात उत्पादन में परिवर्तन के साथ साथ बदलते रहते हैं। दीर्घकाल में इसके विपरीत सभी साधनों में एक साथ तथा समान अनुपात में परिवर्तन करने के कारण सभी साधनों के अनुपात पूर्व की भांति अपरिवर्तित रहते है।

इसी तरह दोनों उत्पादन फलनों में दूसरा प्रमुख अन्तर तकनीकी परिवर्तन से सम्बन्धित होता है। अल्पकालीन उत्पादन फलन की दशा में तकनीक की दशा पूर्ववत अपरिवर्तित रहती है। दीर्घकाल में सभी साधनों में परिवर्तन सम्भव होता है। अतः तकनीकी परिवर्तन की लचीली दशा होती है।

समय के आधार पर उत्पादन फलन दो प्रकार के होते हैः–

1. स्थिर–अनुपातों के उत्पादन फलन
2. परिवर्तनशील–अनुपातों के उत्पादन फलन

1. स्थिर–अनुपातों के उत्पादन फलन :–

दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। यद्यपि दीर्घकाल में उत्पादन के सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं। दीर्घकालीन उत्पादन फलन को 'स्थिर–अनुपातों के उत्पादन फलन ' कहते हैं। 'पैमाने के प्रतिफल' (Returns To Scale) की स्थिति में उत्पादन के साधनों के मध्य तथा साधनों एवम् उत्पादन की मात्रा के अनुपात स्थिर रहते हैं।

'पैमाने के प्रतिफल' के शब्द 'पैमाने' (Scale) का आशय जानना आवश्यक है। यहाँ 'पैमाने' **(Scale)** का आशय मापने की किसी एक विशेष इकाई जैसे–मीटर, लीटर, किलोग्राम, गज, फीट, संख्या या भूमि के क्षेत्रफल के माप की इकाई बीघा/एकड़/हैक्टेयर से हो सकता है। माना एक व्यक्ति 1 मीटर कपड़ा खरीदता है किन्तु यदि कपड़ा मापने की इकाई (पैमाना) मीटर के स्थान पर सेन्टी मीटर कर दिया जाये तब यह कहा जायेगाा कि व्यक्ति ने 100 सेन्टीमीटर कपड़ा खरीदा। इसी तरह इकाई (पैमाना) बदलने पर उस बदली गई इकाई (पैमाना) में माप दर्शायेंगे। इसी तरह, माना 2 एकड़ के एक खेत में 5 श्रमिक 10 क्विण्टल (10 बोरी गेंहूँ) का उत्पादन करते हैं। अतः यहाँ 'एकड़'

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

भूमि के माप की इकाई (पैमाना) है। 5 श्रमिक व 10 बोरी गेंहूँ क्रमशः श्रमिकों एवम् उत्पादन (गेंहूँ) के माप की इकाई (पैमाना) है। अब यदि भूमि के माप की इकाई (पैमाना) 2 से बढ़ाकर 4, श्रमिकों के माप की इकाई (पैमाना) बढ़ाकर क्रमशः 10 श्रमिक करते है। इसी प्रकार उत्पादन (गेंहूँ) के माप की इकाई (पैमाना) बढ़कर 20 क्विण्टल (20 बोरी गेंहूँ) का उत्पादन हो जाता है। उपर्युक्त स्थिति में यह स्पष्ट होता है कि दोनो साधनों– भूमि, श्रमिक तथा उत्पादन (गेंहूँ) को मापनें की इकाइयों (पैमानों) में दो गुणा / दो गुनी वृद्धि हुई। अर्थात् साधनों के पैमानों को दो गुणा करने पर उत्पादन के रूप में प्रतिफल का पैमाना भी दो गुणा हो गया। यद्यपि साधनों व उत्पादन में समान अनुपात में परिवर्तन होता है किन्तु उत्पादन व आवश्यक साधन का अनुपात या गुणांक में कोई परिवर्तन नहीं होता है। जिसमें भूमि व श्रम का अनुपात प्रत्येक दशा में 1:2.5 रहता है। जब 2 एकड़ के खेत में 5 श्रमिक 10 क्विण्टल गेंहूँ के उत्पादन करने पर भूमि व उत्पादन का अनुपात 1:5 तथा श्रम व उत्पादन का अनुपात 1:2 रहता हैं। तब भूमि व श्रम की मात्रा को दुगुना करने पर उत्पादन भी दो गुना हो जाता है किन्तु भूमि व श्रम का अनुपात 1:20, भूमि व उत्पादन का अनुपात 1:5 तथा श्रम व उत्पादन का अनुपात 1:2 पहले की तरह स्थिर रहते हैं। स्थिर–अनुपातों के उत्पादन फलन की स्थिति को निम्न तालिका संख्या 6.1 व रेखाचित्र –6.1 की सहायता से समझ सकते हैं:–

तालिका 6.1 : पैमाने के प्रतिफल के अर्न्तगत साधनों में परिवर्तन

भूमि (हैक्टेयर में)	भूमि की मात्रा में परिवर्तन	श्रम के घण्टें घण्टों	श्रम के में परिवर्तन
5	–	100	–
10	2 गुणा	200	2 गुणा
15	3 गुणा	300	3 गुणा
20	4 गुणा	400	4 गुणा
25	5 गुणा	500	5 गुणा
30	6 गुणा	600	6 गुणा
35	7 गुणा	700	7 गुणा
40	8 गुणा	800	8 गुणा

अर्थशास्त्र में पैमाने के प्रतिफल का अभिप्राय उत्पादन की वह स्थिति जिसमें सभी साधनों को एक निश्चित अनुपात या प्रतिशत, जैसे 10 प्रतिशत या 20 प्रतिशत या 200 प्रतिशत (2 गुणा), 300 प्रतिशत (3गुणा), परिवर्तित करतें हैं। उपर्युक्त तालिका संख्या–6.1 व निम्न रेखाचित्र –6.1 का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में जब भूमि की मात्रा 5 हैक्टेयर होती है तब श्रम की मात्रा (घण्टों में) 100 होती है। भूमि की मात्रा में परिवर्तन करके 10 हैक्टेयर तथा श्रम की मात्रा (घण्टों में) 200 कर दी जाती है। इसी तरह भूमि की मात्रा में परिवर्तन 2 गुणा, 3 गुणा, 8 गुणा करने के साथ ही भूमि की मात्रा से सम्बन्धित श्रम की मात्रा (घण्टों में) भी क्रमशः 2 गुणा, 3 गुणा, 8 गुणा कर दी जाती है। इससे एक बात स्पष्ट होती है कि भूमि व श्रम की मात्रा का समान प्रतिशत की मात्रा में परिवर्तन किया जाता है। इस प्रकार समान अनुपात / समान प्रतिशत से दोनो साधनों में परिवर्तन करने के कारण उनके अनुपात समान रहते हैं। इसका यह अर्थ है कि जब उत्पादन की मात्रा क्रमशः 100, 200 व 300 होती है तब भी श्रम व पूँजी की मात्रा का एक निश्चित व न्यूनतम आनुपातिक–मात्रात्मक सम्बंध स्थिर रहता है। यहाँ श्रम के द्वारा पूँजीं का प्रतिस्थापन नहीं किया जाता है। इस प्रकार यह 'स्थिर–अनुपातों के उत्पादन फलन' की स्थिति कहलाती है।

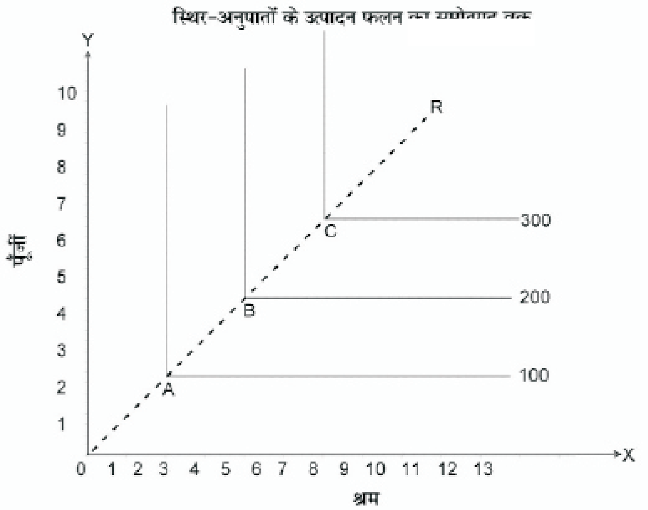

रेखाचित्र 6.1

स्थिर–अनुपातों के उत्पादन फलन में विभिन्न प्रकार के पैमाने के प्रतिफल प्राप्त होते है। माना – 1 श्रम + 1 एकड़ भूमि के संयोग से गेहूँ का 2 क्विंटल उत्पादन होता है। यदि उत्पादन के साधनों के अनुपात को दुगना करते हैं, अर्थात् 2 श्रम + 2 एकड़ भूमि करने पर गेहूँ का उत्पादन 6 क्विंटल हो जाता है। इसे बढ़ते पैमाने के प्रतिफल कहते हैं क्योंकि उत्पादन के साधनों में होने वाली आनुपातिक वृद्धि की तुलना में उत्पादन में अधिक अनुपात में वृद्धि होती है।

यदि उत्पादन के साधन के अनुपात को दुगना करने पर अर्थात् 2 श्रम + 2 एकड़ भूमि करने पर गेहूँ का उत्पादन 3 क्विंटल होता है तो इसे घटते पैमाने के प्रतिफल कहते हैं क्योंकि उत्पादन के साधनों में होने वाली आनुपातिक वृद्धि की तुलना में उत्पादन में आनुपातिक वृद्धि कम होती है।

जब उत्पादन के साधनों व उत्पादन की वृद्धि समान अनुपात

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

में होती है तो उसे स्थिर पैमाने के प्रतिफल कहते हैं। यदि 2 श्रम + 2 एकड़ भूमि होने पर उत्पादन 4 क्विंटल गेहूँ का होता है तो इसे स्थिर पैमाने के प्रतिफल कहते हैं।

पैमाने के प्रतिफल दीर्घकाल मे लागू होते हैं जब सभी उत्पादन के साधनों में वृद्धि की जा सकती है।

अल्पकालीन उत्पादन फलन :–

अल्पकाल का आशय वह समय की अवधि जिसमें उत्पादन में वृद्धि केवल परिवर्तनशील साधन (श्रम) के द्वारा ही की जा सकती है। अल्पकाल में उत्पादन में परिवर्तन की प्रक्रिया का वर्णन अल्पकालीन उत्पादन सिद्धान्त कहलाता है जिसके अलग–अलग नाम पाये जाते है।

घटता हुआ सीमान्त उत्पादन या साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियमः– अल्पकाल में उत्पादन के परिवर्तन की स्थिति को अर्थशास्त्र में अलग–अलग नामों से जाना जाता है। विभिन्न नामों में से 'घटता हुआ सीमान्त उत्पादन नियम' तथा 'साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' शब्द का अधिकांशतः प्रयोग हुआ। 'घटता हुआ सीमान्त उत्पादन नियम' शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम फ्रान्सिसी अर्थशास्त्री टुर्गोट (Turgot) ने किया जिसे माल्थस, डेविड रिकार्डो ने जिसे अपने सिद्धान्तों में प्रयोग में लिया। मार्शल ने कृषि के सन्दर्भ में 'घटता हुआ सीमान्त उत्पादन नियम' शब्द का प्रयोग बहुत बार किया। श्रीमती जॉन रोबिन्सन ने भी इसी शब्द का प्रयोग करते हुए उत्पादन के साधनों के बीच अपूर्ण स्थानापन्नता को इसका कारण बताया। बाद में स्टिगलर, बेन्हम व वर्तमान अर्थशास्त्रियों में पिण्ड्यिक व रुबिनफील्ड ने नया नाम 'एक सीमा के बाद घटता हुआ सीमान्त उत्पादन' बताया। रिचर्ड जी. लिप्से व के. ए. क्रिस्टल ने थोड़ी सावधानीपूर्वक इन्ही शब्दों का प्रयोग किया। पॉल ए. सेम्युलसन ने 'एक बिन्दु के बाद घटता हुआ सीमान्त उत्पादन' शब्द का प्रयोग किया। के. ई. बौल्डिंग ने इस नियम को 'अन्ततः घटती सीमान्त भौतिक उत्पादकता का नियम' बताया। अर्थशास्त्री गौल्ड व लेजर ने घटता हुआ सीमान्त उत्पादन को आंकड़ों पर आधारित पाया। एन. सी. रे ने ह्रासमान सीमान्त उत्पादन नियम को निगमन–तर्क से सम्बन्धित बताया।

ह्रासमान सीमान्त उत्पादन के स्थान पर एम. एम. बोबर ने उत्पादन के साधनों की विभाजकता व परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम के मध्य विरोधाभाष का उल्लेख किया। सर्वप्रथम सन् 1947 में ई. एच. चैम्बरलीन ने अल्पकाल में उत्पादन के परिवर्तन की स्थिति को 'उत्पादन के साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' बताया। ई. एच. चैम्बरलीन ने स्पष्ट किया कि उत्पादन के साधनों की विभाजकता तथा साधनों के अनुपातों के परिवर्तन अल्पकाल में उत्पादन में परिवर्तन प्रमुख निर्धारक होते है।

ए. एन. मैकलोड व एफ. एच. हॉन, थोम्सन एम. वाईथन, मॉरिस एच. पेस्टन व एल. हार्वे लेबिन्स्टीन तथा ई. एच. चैम्बरलीन के बीच तार्किक विचार विमर्श चलता रहा। अन्ततः अर्थशास्त्र में अल्पकाल से सम्बन्धित उत्पादन के परिवर्तन की स्थिति को 'उत्पादन के साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' के नाम से जाना जाता है।

अल्पकाल में जब एक साधन की मात्रा को स्थिर रख कर व दूसरें अन्य साधन को परिवर्तित करने पर साधनों के अनुपातों में परिवर्तनशीलता का पता चलता है। इसीलिए अल्पकालीन उत्पादन के नियम को 'उत्पादन के साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' कहा जाता है जिसे निम्न तालिका से देख सकते हैं:–

तालिका 6.2

भूमि (हैक्टेयर में)	श्रम के घण्टें	कुल उत्पादन
5	0	0
5	1	2
5	2	6
5	3	12
5	4	18
5	5	20
5	6	20
5	7	14

उपर्युक्त तालिका 6.2 के स्तम्भ 1 के अनुसार भूमि की मात्रा स्थिर है। तालिका 6.2 के स्तम्भ 2 में श्रम की मात्रा में निरन्तर परिवर्तन किया जा रहा है। भूमि व श्रम की मात्राओं को अनुपात के रूप में दिखाने पर दोनों साधनों का अनुपात क्रमशः 5:0, 5:1, 5:2, 5:3, 5:4, 5:5, 5:6, 5:7, होते जाते हैं। इसी तरह न्यूनतम आवश्यक साधन भूमि व उत्पादन का अनुपात क्रमशः 5:0, 5:2, 5:6, 5:12, 5:18, 5:20, 5:20, 5:14, होते हुए परिवर्तित होता है। इस प्रकार साधनों के मध्य व न्यूनतम आवश्यक साधनों के अनुपात में परिवर्तन होता है। इसका यह निष्कर्ष है कि :– 1. प्रारम्भ में अल्पकालीन उत्पादन सिद्धान्त के लिए 'घटता हुआ सीमान्त उत्पादकता का नियम' के नाम का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान में उसके स्थान पर 'साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। 2. इस उत्पादन सिद्धान्त को केवल अल्पकाल में ही लागू किया जा सकता हैं। 3. अल्पकालीन उत्पादन सिद्धान्त की स्थिति में केवल परिवर्तनशील साधन (श्रम) में ही परिवर्तन किया जा सकता है। 4. इस उत्पादन सिद्धान्त की स्थिति में उत्पादन–साधनों के संयोजन–अनुपात में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बदलाव करना सम्भव है।

अतः पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में दोनो साधनो के अनुपात में परिवर्तन नहीं होता है। किन्तु इसके ठीक विपरीत अल्पकालीन 'उत्पादन के साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' की स्थिति में दोनो साधनों के अनुपात में परिवर्तन होता है, जिसे पूर्व में समझ चुके है।

'परिव्यय/खर्चे के प्रतिफल' (Returns To Outlays) :– पैमाने के प्रतिफल की स्थिति में सभी साधनों में समान अनुपात या प्रतिशत से परिवर्तन करते है। अलग–अलग अनुपात या प्रतिशत जैसे पूँजीं को 10 प्रतिशत, भूमि के क्षेत्रफल को 20 प्रतिशत तथा श्रमिकों को 200 प्रतिशत (2 गुणा), 300 प्रतिशत (3गुणा), में परिवर्तित नहीं किया जाता हैं। जब उत्पादन के साधनों को उन पर होने वाले परिव्यय/खर्चे (Outlays) को समान अथवा अलग–अलग अनुपात या प्रतिशत से परिवर्तित करतें हैं तो उसे 'परिव्यय/खर्चे के प्रतिफल' (Returns To Outlays) कहते हैं।

पैमानें के प्रतिफल (Returns To Scale) व परिव्यय/खर्चे के प्रतिफल (Returns To Outlays) में अन्तर होता है। पैमानें के प्रतिफल (Returns To Scale) की स्थिति में साधन संयोजन–अनुपात पहले की तरह स्थिर रहते हैं। किन्तु परिव्यय/खर्चे के प्रतिफल (Returns To Outlays) में संयोजन–अनुपात में परिवर्तन हो जाता है। दीर्घकालीन उत्पादन फलन को निम्न रूप से दिखाया जाता है। अर्थात् उत्पादन–साधनों के ऊपर एक सिरे–रेखा नहीं होती है। अतः सभी उत्पादन–साधन परिवर्तनशील होंगे : – उ = फ (श्र, पूँ, भू, त, सा)

उत्पादन फलन के विभिन्न प्रकार – अर्थशास्त्र में भिन्न–भिन्न प्रकार के उत्पादन फलन के बारे में वर्णन पाया जाता है। आर्थिक समस्याओं का विश्लेषण विभिन्न प्रकार के उत्पादन फलन की सहायता से किया जाता है। कुछ उत्पादन फलन अपने से पहले के उत्पादन फलन पर सुधार करते हुए नवीन रूप में विकसित हुए हैं। अर्थशास्त्र में उत्पादन फलन के भिन्न–भिन्न प्रारूप (Forms) है जिनमें मुख्य निम्न हैं :–

1. रेखीय समरूप (Linear Homogeneous) उत्पादन फलन,
2. कॉब–डगलस (Cobb-Douglas) का उत्पादन फलन,
3. आदा–प्रदा प्रकार का (Input-Output) उत्पादन फलन,
4. प्रक्रिया–विश्लेषण (Activity Analysis) उत्पादन फलन,
5. स्थिर प्रतिस्थापन की लोच उत्पादन फलन (CES),
6. परिवर्तनशील प्रतिस्थापन की लोच (VES) उत्पादन फलन,
7. अतिक्रमी–लघुगुणकीय (Transcendental-Logarithmic) उत्पादन फलन हैं।

इस प्रकार अल्पकालीन व दीर्घकालीन उत्पादन फलनों में अन्तर किया जाता है। उत्पादन–साधनों के परिवर्तन द्वारा उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन भी अलग–अलग होते हैं। अल्पकालीन व दीर्घकालीन उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को क्रमशः 1. उत्पादन–साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम तथा 2. पैमाने के प्रतिफल के नियम कहते हैं।

उत्पादन फलन का महत्वः– इसका सम्बन्ध अभियान्त्रिकी से है। किन्तु अनुकूलतम–उत्पादन से सम्बन्धित निर्णय लेने में किसी भी वस्तु या सेवा के अलग–अलग वैकल्पिक–उत्पादन फलन की जानकारी आवश्यक होती है। उत्पादन फलनों की तुलना द्वारा उचित निर्णय हेतु इसका ज्ञान व अवबोध आवश्यक माना जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- ♦ वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन की मात्रा दो बातों पर निर्भर करती हैः– 1. उत्पादन के साधनों, या पड़तों (Inputs) की कीमतें 2. उत्पादन के साधनों या आदा (Inputs) के तथा उत्पादन अर्थात् प्रदा या निर्गत (Outputs) के बीच पाये जाने वाले भौतिक या मात्रात्मक सम्बन्ध पर।
- .. सामान्यतः 'फलन' का अर्थ दो चरों (स्वतन्त्र व आश्रित चर) के बीच पाया जाने वाला मात्रात्मक सम्बन्ध होता है।
- .. हेण्डरसन व क्वॉण्ट के अनुसार, उत्पादन फलन एक अभियान्त्रिकी (Engineering) संकल्पना (विचार या प्रत्यय) है, जो उत्पादन के साधनों (Inputs) की सहायता से उत्पादन (Outputs) के बीच विद्यमान तकनीकी व मात्रात्मक सम्बन्ध को समझाता है।
- ♦ अल्पकालीन उत्पादन की स्थिति में केवल श्रम ही परिवर्तनशील साधन होता है अतः उत्पादन के शेष साधन स्थिर होते हैं। श्रम को छोड़ कर सभी स्थिर–साधनों के संकेतों के ऊपर एक सिरे–रेखा खींच कर फलन को दिखाया जाता है।
- ♦ सन् 1947 में ई. एच. चैम्बरलीन ने अल्पकाल में उत्पादन के परिवर्तन की स्थिति को 'उत्पादन के साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम' बताया।
- ♦ उत्पादन फलन दीर्घकालीन में अपने मूल रूप में–'पैमाने के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रतिफल' नाम से जाना जाता है। यद्यपि दीर्घकालीन में सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं किन्तु इसमें तकनीक में सुधार को सम्मिलित नहीं किया जाता है। अर्थात् तकनीक का स्तर पूर्ववत ही रखा हुआ माना जाता है। 'पैमाने के प्रतिफल' के शब्द 'पैमाने' (Scale) का आशय मापने की किसी एक विशेष इकाई जैसे–मीटर, लीटर, किलोग्राम, गज, फीट, संख्या या भूमि के क्षेत्रफल के माप की इकाई बीघा/एकड़/हैक्टेयर से हो सकता है।

- अल्पकालीन व दीर्घकालीन उत्पादन की मात्रा में होने वाले परिवर्तन को क्रमशः 1. उत्पादन–साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम तथा 2. पैमाने के प्रतिफल के नियम कहते हैं।
- यद्यपि उत्पादन फलन का प्रत्यक्षरूप में सम्बन्ध अभियान्त्रिकी से है। किन्तु अर्थशास्त्र में अनुकूलतम–उत्पादन से सम्बन्धित निर्णय लेने के लिए किसी भी वस्तु या सेवा के अलग–अलग वैकल्पिक–उत्पादन फलनों की जानकारी आवश्यक होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. उत्पादन फलन कौन से दो चरों मे मध्य सम्बन्ध बताता है –
   (अ) पड़तों और निर्गत में
   (ब) मांग और कीमत में
   (स) पूर्ति और कीमत में
   (द) उपभोग और आय में
2. उत्पादन फलन साधनो व उत्पाद के कौन से सम्बन्ध को व्यक्त करते हैं –
   (अ) मात्रात्मक (ब) गुणात्मक
   (स) आर्थिक (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. समय के आधार पर उत्पादन फलन होते हैं ?
   (अ) अल्पकालीन (ब) दीर्घकालीन
   (स) मध्यकालीन (द) दोनों (अ) और (ब)
4. 'घटता हुआ सीमान्त उत्पादन नियम' शब्द का प्रयोग किसने नहीं किया हैं ?
   (अ) श्रीमती जॉन रोबिन्सन
   (ब) मार्शल
   (स) स्टिगलर
   (द) ई. एच. चैम्बरलीन
5. उत्पादन फलन उ =फ (श्र, पूँ, भू, त, सा) में सिरे रेखा का अर्थ हैं–
   (अ) सिरे रेखा के नीचे साधन परिवर्तनशील है
   (ब) सिरे रेखा के नीचे साधन स्थिर है
   (स) सिर रेखा के नीचे साधन समरूप है
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. फलन किसे कहते हैं ?
2. उत्पादन फलन किसे कहते हैं ?
3. समय के आधार पर उत्पादन फलन कितने प्रकार के होते हैं?
4. 'पड़तो' का क्या अभिप्राय है ?
5. 'पैमाने' शब्द का क्या अभिप्राय है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. उत्पादन फलन की अवधारणा को संक्षेप में समझाइये।
2. उत्पादन फलन की विशेषताओं को संक्षेप में समझाइये।
3. उत्पादन फलन की मान्यताओं को बताइये।
4. घटता हुआ सीमान्त उत्पादन का नियम या साधनों के परिवर्तनशील अनुपातों के प्रतिफल के नियम में से कौनसा नाम आपके अनुसार सही है व क्यों ? संक्षेप में समझाइये।
5. पैमानें के प्रतिफल व परिव्यय/खर्चे के प्रतिफल में अन्तर को संक्षेप में समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. उत्पादन फलन की अवधारणा का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. अल्पकालीन व दीर्घकालीन उत्पादन फलन में अन्तर करते हुए विस्तार से समझाइये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	अ	द	द	ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 7

उत्पादन की अवधारणा
(Concept of Production)

प्रारंभिक –

उपभोग आर्थिक क्रियाओं का आदि व अंत माना जाता है। हमने पूर्व अध्याय में उपभोक्ता से सम्बन्धित उपयोगिता विश्लेषण के दो दृष्टिकोण गणनात्मक एवं क्रमवाचक का अध्ययन किया है। किसी वस्तु में वह क्षमता जो मानवीय आवश्यकताओं को पूरा कर सकती, उपयोगिता कहलाती है। यह वस्तुओं में उपयोगिता का सृजन 'उत्पादन प्रक्रिया' द्वारा होता है। उत्पादन से ही उपभोग सम्भव हो सकता है। वस्तुओं व सेवाओं की मांग उन वस्तुओं व सेवाओं के उपभोग पर आधारित होती है। इसी तरह वस्तुओं व सेवाओं की पूर्ति भी उनके उत्पादन की मात्रा द्वारा निर्धारित होती हैं। किसी देश की राष्ट्रीय–आय व प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय–आय (PCI) का आधार भी उत्पादन के स्तर से निर्धारित होता है। उत्पादन के स्तर में वृद्धिकारी परिवर्तन से एक देश में सम्पन्नता व आर्थिक सम्वृद्धि होती है। उत्पादन की सम्वृद्धि एवं गुणवत्ता का लोगों के जीवनस्तर पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

उत्पादन का अर्थ –

'उत्पादन' किसी वस्तु की उपयोगिता का सृजन, उपयोगिता में वृद्धि या उपयोगिता का निर्माण करना कहा जाता है। उत्पादन के कई रूप होते हैं। जैसे एक किसान अनाज या अन्य खाद्य वस्तुएँ उत्पादित करता है। एक कारखाने में कपड़े, मशीनों, खिलौनों, जूतों, साबुन, सीमेन्ट, फर्नीचर इत्यादि का उत्पादन होता है। इसी तरह विभिन्न प्रकार की सेवाएँ जैसे शिक्षा, चिकित्सा, बैंकिंग, वकीलों की सेवाएँ, हिसाब–किताब रखना, डाक व टेलिफोन द्वारा संचार–सेवाएँ, यातायात व माल–ढुलाई इत्यादि भी उत्पादन कहलाती हैं।

उत्पादन की परिभाषाएँ –

अर्थशास्त्रियों द्वारा उत्पादन की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं। जिनमें प्रमुखतः अल्फ्रेड मार्शल (Alfred Marshall), ने उत्पादन को उपयोगिता का सृजन करना बताया। फ्रेजर (Fraser) ने उत्पादन की परिभाषा उपयोगिता की पुनः स्थापना करना माना। इसी तरह मेयर्स (Mayers) ने संकुचित अर्थ में उत्पादन को आदान–प्रदान हेतु वस्तुओं व सेवाओं के रूप में परिणाम देने वाली प्रक्रिया बताया। जेराल्ड डब्लु. स्टॉन ने 'उत्पादन, साधनों को निर्गतों (उत्पादन) में परिवर्तित करने की प्रक्रिया है।' के रूप में परिभाषित किया है।

सरल शब्दों में 'उत्पादन एक प्रकार का वस्तुओं व सेवाओं का प्रवाह है। उत्पादन की एक विशेष प्रक्रिया है। उत्पादन प्रक्रिया के द्वारा किसी वस्तु या सेवा की 'मानवीय आवश्यकता को संतुष्ट करने की क्षमता' में वृद्धि या क्षमता का सृजन या निर्माण होता हो।

उत्पादन के विभिन्न साधन व उनका वर्गीकरण –

उत्पादन एक उपयोगिता के सृजन की प्रक्रिया होती है। उत्पादन के द्वारा एक अवधि में वस्तुओं व सेवाओं का प्रवाह (Flow) के रूप में निर्माण किया जाता है। इस प्रकार उत्पादन कुछ साधनों जैसे श्रम, पूँजीं, भूमि, प्रबन्धन व तकनीक तथा साहस या उद्यमशीलता (L, K, N, T, E) की सहायता से किया जाता है। उत्पादन के साधनों को आदा या पड़तें (Inputs) कहते हैं। वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को प्रदा या निर्गत (Outputs) कहतें हैं। उत्पादन के साधनों का आर्थिक–विश्लेषण करने पर उनकी प्रकृति अलग–अलग पायी जाती है। प्रकृति के अनुसार उत्पादन के साधन निम्नानुसार होते हैं –

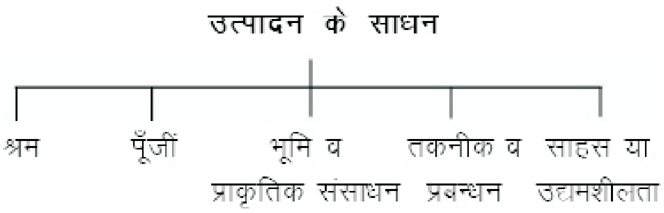

1. भूमि (Land) –

भूमि (Land) को प्रकृति का उपहार माना जाता है। भूमि में कृपणता का गुण पाया जाता है अर्थात् भूमि की मात्रा सीमित होती है। भूमि की उर्वरा शक्ति में भिन्नता भी पाई जाती है।

2. श्रम (Labour) –

श्रम से अभिप्राय धन या मुद्रा के बदले किया जाने वाला शारीरिक या मानसिक उत्पादक–कार्य। परम्परावादी आर्थिक विचारों के अनुसार श्रम उत्पादन का एक मूल साधन है। श्रम को उत्पादन का सक्रिय–साधन माना जाता है। श्रम अन्य साधनों (पूँजीं, भूमि, प्रबन्धन व तकनीक इत्यादि) को उत्पादन की प्रक्रिया में सक्रिय करता है। श्रम की पूर्ति मात्रात्मक व गुणात्मक दोनो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रकार की होती है। आज विश्व में पूँजीं, प्रबन्धन व तकनीक तथा साहस या उद्यमशीलता का बहुत महत्व है। फिर भी उत्पादन कार्यों हेतु श्रम के महत्व में कमी नहीं आई है। श्रमिक उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही होता है।

3. पूँजी (Capital) –

पूँजीं को उत्पादन का तीसरा महत्त्वपूर्ण साधन बताया जाता है। पूँजी को संकुचित अर्थ में नकद वित्त (Capital in Cash) के रूप में प्रयोग होता था। आज पूँजी का आशय विभिन्न प्रकार की मशीनों, यन्त्रों इत्यादि से है।

4. प्रबन्धन व तकनीक (Technology) –

उत्पादन का एक और महत्त्पूर्ण साधन प्रबन्धन व तकनीक (Technology) होता है। प्रबन्धन व तकनीक (Technology) की सहायता से उत्पादन का संगठन (Organisation) किया जाता है। आज उत्पादन के बड़े पैमाने पर संगठन, विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। प्रबन्धकीय पक्ष प्रबन्धकों द्वारा व तकनीकी पक्ष का संगठन, तकनीकी विशेषज्ञों द्वारा किया जाता है। तकनीकी विशेषज्ञों के द्वारा उत्पादन की विभिन्न वैकल्पिक तकनीकों में चुनाव किया जाता और उसे उत्पादन प्रक्रिया में प्रयुक्त किया जाता है। इसी प्रकार प्रबन्धकीय विशेषज्ञों द्वारा विभिन्न प्रकार के संगठन जैसे वैयक्तिक स्वामित्व, साझेदारी निगम में चयन कर अनुकूलतम संगठन (Organisation) संरचना को अपनाया जाता है। प्रबन्धन व तकनीक के द्वारा उत्पादन रखा जाता है।

5. साहस या उद्यमशीलता (Entrepreneurship)–

साहस या उद्यमशीलता (Entrepreneurship) उत्पादन का पाँचवाँ महत्वपूर्ण साधन होता है। उत्पादन में विभिन्न प्रकार की जोखिमें व अनिश्चितता वहन करनी पड़ती है। एक समाजवादी अर्थव्यवस्था में साहसी द्वारा उठाया गया जोखिम कम होता है जबकि पूँजीवादी अर्थव्यवस्था, एक स्वतंत्र अर्थव्यवस्था होती है, सरकारी हस्तक्षेप नगण्य होता है अतः साहसी व्यवसायों में अधिक जोखिम वहन करना पड़ता है।

उत्पादन के साधनों का संगठन इस प्रकार किया जाता है कि उत्पादन करने की तकनीक अन्य तकनीकों से अधिक लाभदायी हो। उत्पादन करने लिए सस्ते साधनों को अधिक मात्रा में काम में लिया जाता है। उदाहरण जैसे– पूँजी की तुलना में श्रम सस्ता होता है तो श्रम का अधिक उपयोग किया जाता है। श्रम का अधिक उपयोग करने पर श्रम प्रधान **(Labour intensive)** तकनीक कहलाती है। इसी प्रकार पूँजी सस्ती होने की स्थिति में पूँजी का श्रम की तुलना में अधिक उपयोग किया जाता है। पूँजी का श्रम की तुलना में अधिक उपयोग करने पर पूँजी प्रधान **(Capital Intensive)** तकनीक कहलाती है। इस प्रकार साधनों की कीमतों के आधार पर उत्पादन के साधनों का संगठन किया जाता है।

उत्पादन करने लिए साधनों (आगतों) की मात्रा में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में भी परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होता है। उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के आधार पर विभिन्न प्रकार की अवधारणाएँ प्रतिपादित की गई है

तालिका– 7.1: कुल, औसत व सीमान्त उत्पादन

भूमि (हैक्टेयर में)	श्रम की इकाई	कुल उत्पादन TP	औसत उत्पादन AP	सीमान्त उत्पादन MP
5	0	0	0	0
5	1	5	5	5
5	2	12	6	7
5	3	21	7	9
5	4	28	7	7
5	5	30	6	2
5	6	30	5	0
5	7	28	4	–2

उत्पादन करने लिए साधनों (आगतों) की मात्रा में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) करते हैं। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में भी परिवर्तन (कमी या वृद्धि) होता है। उत्पादन के साधनों मे परिवर्तन के आधार पर विभिन्न प्रकार की अवधारणाएँ प्रतिपादित की गई है जिनका अध्ययन तालिका 7.1 की सहायता से समझ सकते हैं:–उपर्युक्त तालिका का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि:– अल्पकाल में कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन ज्ञात करते हैं। उनमें से किसी एक की सहायता से बाकी दो अन्य प्रकार के उत्पादन को ज्ञात किया जा सकता है, जैसे निम्न तालिका के अनुसार जब श्रम की मात्रा को क्रमशः 1, 2, 3,.. बढ़ाते हैं तब सीमान्त उत्पादन क्रमशः 5, 7, 9, 7, 2, 0..... इत्यादि रहता है। इस प्रकार सीमान्त उत्पादन की सहायता से श्रम की 3 मात्रा पर कुल उत्पादन = प्रथम श्रम की इकाई का सीमान्त उत्पादन + दूसरी श्रम की इकाई का सीमान्त उत्पादन+ तीसरी श्रम की इकाई का सीमान्त उत्पादन। अर्थात् कुल उत्पादन = 5+7+9 = 21 कुल उत्पादन की इकाइयों का उत्पादन होगा।

इसी प्रकार जब श्रम की मात्रा को क्रमशः 1, 2, 3,.. बढ़ाते है तब कुल उत्पादन क्रमशः 5, 12, 21, 28, 30, व 30.... इत्यादि रहता है। कुल उत्पादन में क्रमशः जब श्रम की मात्रा का भाग देते है तब औसत उत्पादन 5, 6, 7, 7, 6, व 5...... इत्यादि हो जाता है।

उत्पादन सिद्धांत की व्याख्या करने से पहले उत्पादन की तीन निम्न अवधारणाओं को समझना आवश्यक होता है

1. कुल उत्पादन
2. औसत उत्पादन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

3. सीमान्त उत्पादन

1. कुल उत्पादन (Total Product: TP) – किसी एक समयावधि में उत्पादन के सभी साधनों का प्रयोग करके कुल जितना उत्पादन किया जाता है उसे कुल उत्पादन कहते है। कुल उत्पादन की गणना दो प्रकार से की जा सकती है।

अ. एक साधन की विभिन्न इकाइयों से प्राप्त सीमान्त उत्पादों को जोड़कर, अथवा

ब. औसत उत्पाद को साधन की इकाइयों से गुणा करके

TP= MP

अथवा AP गुणा श्रम संख्या

2. औसत उत्पादन (Average Product: AP) – कुल उत्पाद में परिवर्तनशील साधन की इकाइयों की संख्या का भाग देकर हम उस साधन श्रम संख्या के औसत उत्पाद की गणना कर सकते है अर्थात

AP= TP/L

3. सीमान्त उत्पादन (Marginal Product: MP) – किसी परिवर्तनशील साधन की मात्रा में एक इकाई का परिवर्तन करने के कारण कुल उत्पादन में जो परिवर्तन होता है उसे उस साधन का सीमान्त उत्पाद कहते है अर्थात

MP= TP/ L

TP= उत्पादन में परिवर्तन

L = श्रम की संख्या में एक इकाई से परिवर्तन

सीमान्त उत्पाद की गणना निम्न सूत्र से भी की जा सकती है–

$MP = TP_n - TP_{n-1}$

उपर्युक्त तालिका व उस पर आधारित आगे दिये गये कुल उत्पादन, औसत उत्पादन तथा सीमान्त उत्पादन के वक्रों को देखने पर स्पष्ट होता है कि:–

जब तक सीमान्त उत्पादन बढ़ता है, कुल उत्पादन बढ़ती दर से बढ़ता है। यह उत्पादन की पहली स्थिति है। उपर्युक्त तालिका के अनुसार श्रम की 1 से 3 तक इकाइयाँ लगाने पर उत्पादन पहली स्थिति में होता है। आगे चलकर दूसरी स्थिति में जब सीमान्त उत्पादन समान या घटता जाता है, तब कुल उत्पादन स्थिर अथवा घटती दर दर से बढ़ता है। उत्पादन की यह स्थिति श्रम की 4 से 6 तक इकाइयाँ लगाने पर प्राप्त होती है। तीसरी व अन्तिम स्थिति में जब सीमान्त उत्पादन घटता–घटता ऋणात्मक हो जाता है तब कुल उत्पादन भी घटने लग जाता है। श्रम की 7 वीं से इकाई को लगाने पर उत्पादन ऋणात्मक (–2) हो जाता है । एक विवेकशील उत्पादक दूसरी स्थिति तक ही उत्पादन करता है। इस स्थिति को रेखाचित्र–7.1 व 7.3 की सहायता से समझ सकते हैं।

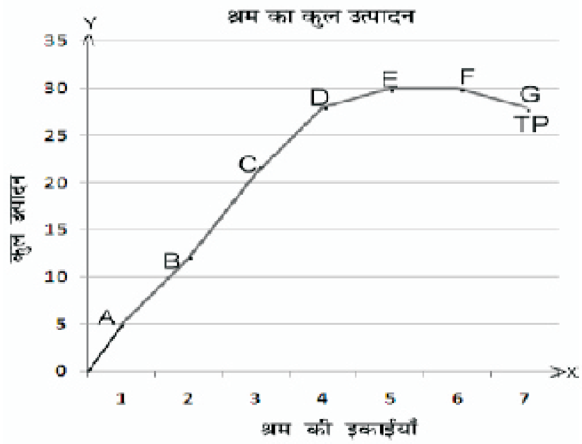

रेखाचित्र 7.1

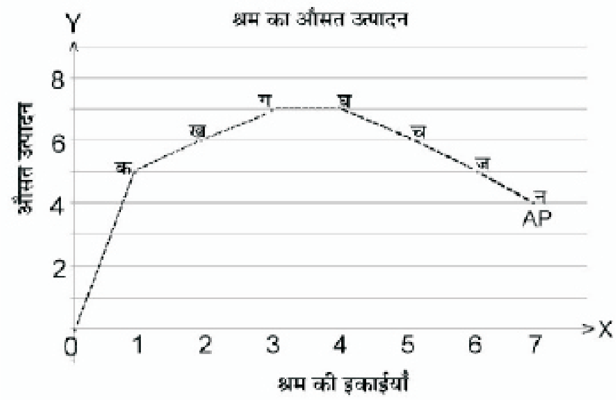

रेखाचित्र 7.2

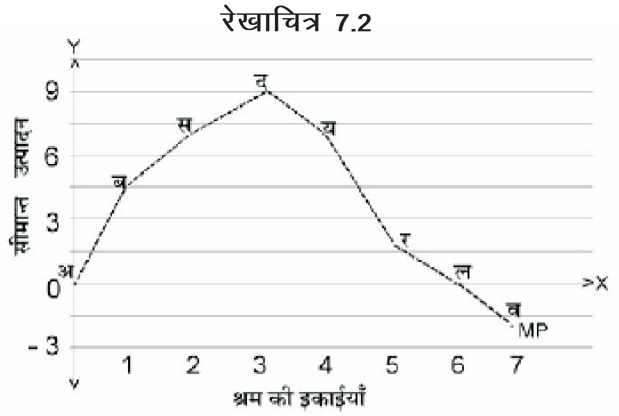

रेखाचित्र 7.3

1. औसत उत्पादन व सीमान्त उत्पादन के परिवर्तन एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं। सीमान्त उत्पादन, उत्पादन के तात्कालिक परिवर्तन को बताता है। सीमान्त उत्पादन के परिवर्तन सदा औसत उत्पादन के परिवर्तन की तुलना में अधिक बढ़ते हैं अथवा घटते हैं। जब सीमान्त उत्पादन बढ़ता है तब सीमान्त उत्पादन वक्र सदा औसत उत्पादन वक्र के ऊपर स्थित होता है। सीमान्त उत्पादन के घटने पर सीमान्त उत्पादन वक्र सदा औसत उत्पादन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वक्र के नीचे स्थित होता है।

2. औसत उत्पादन वक्र, सीमान्त उत्पादन वक्र की तुलना में धीरे–धीरे बढ़ता है व धीरे–धीरे ही घटता है। जब औसत उत्पादन बढ़ता है तो सीमान्त उत्पादन अधिक तेज गति से बढ़ता है। विलोमशः जब औसत उत्पादन घटता है तो सीमान्त उत्पादन अधिक तेज गति से घटता है।

परिवर्तनशील अनुपातों का नियम (Law of Variable Proportions) :-

आधुनिक अर्थशास्त्रियों ने अल्पकालीन उत्पादन फलन के रूप में उत्पत्ति ह्रास नियम को सभी क्षेत्रों पर लागू होने का तर्क प्रस्तुत किया। उन्होंने इस बात पर जोर देते हुए तर्क रखा कि कृषि क्षेत्र की तरह प्रत्येक उत्पादन क्षेत्र में एक परिवर्तनशील साधन की उत्तरोत्तर इकाइयाँ बढ़ाने पर एक सीमा के पश्चात् उस साधन की सीमान्त उत्पादकता में ह्रास होना प्रारम्भ होता है जिससे कुल उत्पादन घटने लगता है। इस नियम को परिवर्तन परिवर्तनशील अनुपातों के नियम नाम से जाना जाता है।

प्रो स्टिगलर के अनुसार – ''यदि उत्पत्ति के अन्य साधनों की इकाई को स्थिर रखकर किसी एक साधन की समान इकाइयाँ जोड़ी जावें तो एक सीमा के पश्चात् सीमान्त उत्पत्ति में कमी हो जावेगी।''

श्रीमती जोन रॉबिन्सन के अनुसार – ''उत्पत्ति ह्रास नियम यह बताता है कि किसी एक उत्पत्ति के साधन की मात्रा को स्थिर रखा जाये तथा अन्य साधनों की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि की जाये तो एक निश्चित बिन्दु के बाद उत्पादन में घटती हुई दर से वृद्धि होगी।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि एक सीमा के पश्चात् परिर्वतनशील साधन की सीमान्त उत्पादकता में कमी होने से कुल उत्पादन में भी ह्रास होने लगता है। चाहे एक साधन को स्थिर रखकर अन्य साधनों में परिवर्तन करें या अन्य साधनों को स्थिर रखकर एक साधन को बढ़ाया जाये।

उत्पादन के साधनों के अनुपात में परिवर्तन के कारण उत्पादन में परिवर्तन को परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहा जाता है। परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अनुसार एक साधन को स्थिर रख कर व दूसरे साधन को परिवर्तित करने पर कुल, औसत व सीमान्त उत्पादन में अलग–अलग तरह से परिवर्तन होता है।

नियम की मान्यताएं–

1. उत्पादन का एक साधन परिवर्तनशील होता है जबकि अन्य साधन स्थिर रहते है।
2. उत्पादन के साधनों के अनुपात में परिवर्तन सम्भव है।
3. परिवर्तन साधन की सभी इकाइयां समरूप होती है।
4. उत्पादन की तकनीक में कोई परिवर्तन नहीं होता है।
5. यह नियम केवल अल्पकाल में लागू होता है दीर्घकाल में नहीं।

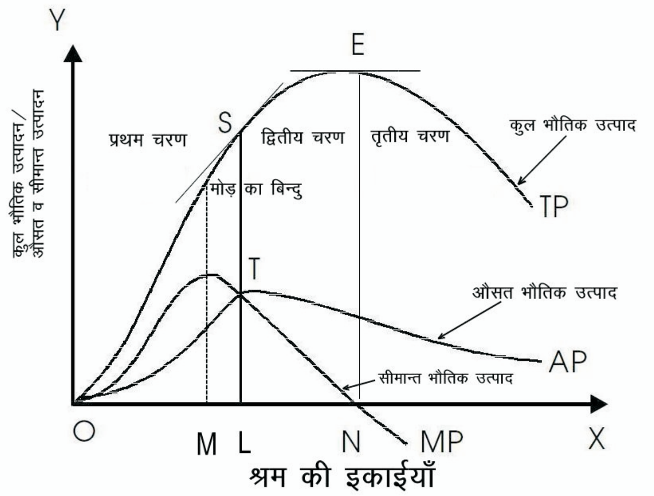

चित्रः–7.4 परिवर्तनशील अनुपातों के बढ़ता, स्थिर व घटते प्रतिफल

कभी कुल उत्पादन बढ़ती हुई दर से बढ़ता है। यह परिवर्तन कभी समान दर से व कभी घटती दर से होता है। इस प्रकार अलग–अलग दर से उत्पादन में परिवर्तन कुछ कारणों पर निर्भर करतें हैं जिसे निम्न रेखाचित्र की सहायता से समझ सकते हैंः–

(अ) उत्पादन की प्रथम अवस्था :– प्रारम्भ में जब कुछ साधनों को स्थिर व श्रम को परिवर्तित करने पर उत्पादन में बढ़ती दर से वृद्धि होती है। स्थिर–साधनों जैसे भूमि या पूँजीं का आकार श्रम की तुलना में बहुत बड़ा होता है। श्रम को क्रमशः परिवर्तित करने पर स्थिर–साधन का अधिक कुशलता पूर्वक उपयोग होने लगता है। परिणामतः उत्पादन के साधनों के अनुपातों की अनुकूलता के कारण साधनों के मध्य अच्छा तालमेल होने के कारण उत्पादन बढ़ती दर से बढ़ता है। इस स्थिति को उपर्युक्त चित्र के प्रथम चरण की स्थिति से समझ सकते हैं। जब श्रम की मात्रा O से M बिन्दु तक बढ़ाते हैं तब कुल उत्पादन में वृद्धि के कारण बढ़ती दर से वृद्धि होती है। इस स्थिति में सीमान्त उत्पादन में वृद्धि होने के कारण औसत उत्पादन वक्र के ऊपर सीमान्त उत्पादन वक्र स्थित होता है। इसी प्रकार कुल उत्पादन वक्र का ढ़ाल बहुत अधिक है जो 'मोड़ के बिन्दु' से आगे L बिन्दु तक गिरने लगता है। इसके बाद में द्वितीय अवस्था आरम्भ हो जाती है।

(ब) उत्पादन की द्वितीय अवस्था :– उत्पादन की द्वितीय अवस्था क्षैतिज अक्ष पर L बिन्दु से N बिन्दु तक होती है। द्वितीय अवस्था में कुल उत्पादन में घटती दर से वृद्धि होती है। द्वितीय अवस्था के बाद साधनों की अनुकूलता समाप्त हो जाती है। विशेष स्थितियों में स्थिर–साधनों जैसे भूमि, पूँजी तथा श्रम का आकार आनुपातिक हो जाता है। स्थिर–साधनों तथा श्रम के आकार की आनुपातिकता के कारण उत्पादन समान दर से बढ़ता है। जब द्वितीय अवस्था L बिन्दु से आरम्भ होती है तब सीमान्त उत्पादन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वक्र ऊपर से औसत उत्पादन वक्र को काटते हुए बराबर होता है। इस बिन्दु पर औसत उत्पादन अधिकतम होता है। द्वितीय अवस्था के N बिन्दु पर अन्त की स्थिति में सीमान्त उत्पादन वक्र क्षैतिज अक्ष को स्पर्श करते हुए शून्य हो जाता है। जब सीमान्त उत्पादन वक्र के शून्य होने के कारण कुल उत्पादन वक्र E बिन्दु पर अधिकतम होता है।

(स) उत्पादन की तृतीय अवस्था :– एक सीमा के बाद स्थिर–साधनों तथा श्रम का आकार आनुपातिक नहीं रहता है। स्थिर–साधनों पर श्रम का बहुत अधिक दबाव बढ़ने के कारण यही तालमेल कम होने लगता है। स्थिर– साधनों व श्रम के तालमेल के अभाव के कारण कुल उत्पादन में कमी होती है। उपर्युक्त चित्रानुसार तृतीय अवस्था में जब एक उत्पादक श्रम में **N** बिन्दु के बाद भी वृद्धि करता है तब कुल उत्पादन वक्र **E** बिन्दु के नीचें गिरने लगता है। श्रम में वृद्धि **N** बिन्दु के बाद करने पर सीमान्त उत्पादन वक्र के ऋणात्मक होने के कारण कुल उत्पादन वक्र **E** बिन्दु के बाद नीचे गिरने लगता है।

विवेकपूर्ण उत्पादन की अवस्था :

एक उत्पादक की विवेकपूर्ण उत्पादन की अवस्था उस स्थिति में होती है जब दी हुई लागत में उत्पादन अधिकतम किया जा सके। इसी प्रकार एक दिये हुए उत्पादन की लागत न्यूनतम हो जाये। एक उत्पादक की विवेकपूर्ण उत्पादन की अवस्था ही उत्पादक का सन्तुलन या उत्पादक का साम्य कहलाता है। उपर्युक्त चित्र के अनुसार द्वितीय अवस्था के **N** बिन्दु पर कुल उत्पादन वक्र के **E** बिन्दु पर एक विवेकशील उत्पादक अपने उत्पादन को अधिकतम करता है।

यदि उत्पादक द्वितीय अवस्था के N बिन्दु से कम मात्रा में श्रम की इकाइयों का उपयोग करते हुए उत्पादन करता है तो उत्पादन अधिकतम मात्रा में NE से कम होगा। इस प्रकार कुल उत्पादन अधिकतम नहीं होगा। इस प्रकार श्रम की ON मात्रा से अधिक इकाइयों का उपयोग करने पर उसकी सीमान्त उत्पादकता ऋणात्मक होने लगती है और कुल उत्पादन अधिकतम मात्रा NE से कम रहेगा। अतएव एक विवेकशील उत्पादक श्रम की ON मात्रा का उपयोग करते हुए उत्पादन की अधिकतम मात्रा NE पर अनुकूलतम उत्पादन करता है। उत्पादक की विवेकशील उत्पादन की अवस्था द्वितीय चरण मानी जाती है। प्रथम चरण में कुल भौतिक उत्पाद, औसत भौतिक उत्पाद और सीमान्त भौतिक उत्पाद तीनों में ही वृद्धि होती है। अतः उत्पादक और अधिक उत्पादन करने के लिए प्रेरित होता है और द्वितीय चरण में प्रवेश करता है। इसके विपरित तृतीय चरण में कुल भौतिक उत्पाद और औसत भौतिक उत्पाद घटता है और सीमान्त भौतिक उत्पाद ऋणात्मक हो जाता है। इस प्रकार उत्पादक तृतीय चरण में उत्पादन नहीं करेगा। वह श्रम की इकाइयां ON तक बढ़ाकर E बिन्दु पर अनुकुलतम अधिकतम उत्पादन बिन्दु प्राप्त करता है।

महत्व

उत्पादन फलन तथा उत्पादन की अवधारणाओं का एक उत्पादक, समाज व सरकारों के लिए अत्यधिक महत्व होता है। उत्पादक किसी वस्तु या सेवा के उत्पादन के निर्णय 'उत्पादन फलनों' की 'लागतों' की तुलना के आधार पर करते है। सामान्यतः एक उत्पादक उस 'उत्पादन फलन' की तकनीक का चुनाव करते हुए उत्पादन का निर्णय करता है जिस तकनीक से उत्पादन की लागत न्यूनतम, उत्पादन की मात्रा अधिकतम व उत्पादन की गुणवत्ता श्रेष्ठतम प्राप्त हो। सरकारें व समाज उत्पादन की लागत घटाने के लिए नवीन शोधकार्यो को बढ़ाने के लिए भारी मात्रा में धन खर्च करती है व शोध एवं विकास (Research and Development) से सम्बंधित संस्थानों की स्थापना करती है।

इस प्रकार उत्पादन के विभिन्न साधनों (Inputs) का एक अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान होता है। उत्पादन–प्रक्रिया के लिए सभी उत्पादन के साधनों का मिलकर सहयोग आवश्यक होता है। उत्पादन के साधनों की मात्रा व गुणवत्ता पर ही आर्थिक सम्वृद्धि व विकास निर्भर करता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- 'उत्पादन', किसी वस्तु की उपयोगिता का सृजन, उपयोगिता में वृद्धि या उपयोगिता का निर्माण करना की क्रिया को कहा जाता है।
- उत्पादन के साधन जैसे श्रम, पूँजीं, भूमि, प्रबन्धन व तकनीक तथा साहस या उद्यमशीलता की सहायता से उत्पादन किया जाता है। उत्पादन के साधनों को आदा या पड़तें (Inputs) कहते हैं।
- श्रम का अधिक उपयोग करने पर श्रम प्रधान (श्रम–गहन) तथा पूँजी का श्रम की तुलना में अधिक उपयोग करने पर पूँजी प्रधान तकनीक कहलाती है।
- उत्पादन के साधनों (आगतों/आदा) में परिवर्तन (कमी या वृद्धि) के आधार पर उत्पादन के परिवर्तन (कमी या वृद्धि) से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाएँ होती हैं जैसे :– कुल उत्पादन = $(TPP_1 + TPP_2 + TPP_3 + ... + TPP_n)$, औसत उत्पादन $AP_n = TPP_n / L_n$ एवं $MP = TPP_n - TPP_{n-1} = TPP / L$ ।
- उत्पादन के साधनों के अनुपात में परिवर्तन के कारण उत्पादन में परिवर्तन को परिवर्तन परिवर्तनशील अनुपातों का नियम कहा जाता है।
- परिवर्तनशील अनुपातों के नियम के अनुसार एक साधन को स्थिर रख कर व दूसरे साधन को परिवर्तित करने पर कुल, औसत व सीमान्त उत्पादन में अलग–अलग तरह से परिवर्तन होता है।
- प्रारम्भ में उत्पादन के साधनों के अनुपातों की अनुकूलता के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कारण साधनों के मध्य अच्छा तालमेल होने के कारण उत्पादन बढ़ती दर से बढ़ता है किन्तु बाद में साधनों की यह अनुकूलता समाप्त हो जाती है। एक सीमा के बाद यही तालमेल का अभाव घटती दर से उत्पादन में वृद्धि के लिए जिम्मेदार होता है।

एक विवेकशील उत्पादक उत्पादन की द्वितीय अवस्था में ही सन्तुलन प्राप्त करता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. एक विवेकशील उत्पादक अपने उत्पादन के लिए कौनसी अवस्था का चयन करता है –
   (अ) प्रथम (ब) द्वितीय
   (स) तृतीय (द) चतुर्थ
2. श्रम उत्पादन का ......साधन है
   (अ) सक्रिय
   (ब) निष्क्रिय
   (स) तटस्थ
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. उत्पादन के साधन हैं ?
   (अ) श्रम व भूमि (ब) पूँजी व तकनीक
   (स) साहस (द) उपर्युक्त सभी
4. अल्पकाल में उत्पादन का परिवर्तशील साधन है ?
   (अ) श्रम (ब) साहस
   (स) पूँजी व तकनीक (द) भूमि
5. जिस बिन्दु पर कुल उत्पाद अधिकतम होता है, सीमान्त उत्पाद होगा –
   (अ) शून्य (ब) एक
   (स) अनन्त (द) दो

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. उत्पादन किसे कहते हैं ?
2. उत्पादन के साधन कौन–कौन से हैं ?
3. कुल–उत्पादन किसे कहते हैं ?
4. औसत–उत्पादन किसे कहते हैं ?
5. सीमान्त–उत्पादन किसे कहते हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. उत्पादन के साधनों में संगठन का महत्व लिखिए।
2. उत्पादन के साधन– 'भूमि' और श्रम पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए।
3. औसत उत्पाद और सीमान्त उत्पाद के मध्य सम्बन्ध समझाइये।
4. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम को परिभाषित कीजिए।
5. उत्पादन की विवेकपूर्ण अवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. उत्पादन के विभिन्न साधनों को विस्तार से समझाइये।
2. कुल–उत्पादन, औसत–उत्पादन व सीमान्त–उत्पादन की विभिन्न स्थितियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
3. परिवर्तनशील अनुपातों के नियम की विस्तार ये वर्णन कीजिए।
4. विवेकशील उत्पादक द्वारा उत्पादन की द्वितीय अवस्था का चयन क्यों किया जाता है? स्पष्ट कीजिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	द	द	अ	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 8

लागत की अवधारणा
(Concept of cost)

एक फर्म को उत्पादन करने के लिए अनेक उत्पादक साधनों का प्रयोग आगतों (Inputs) के रूप में करना पड़ता है। जैसे – भूमि, पूँजी, श्रम, प्रबंध, वेतन, कच्चा माल इत्यादि। कोई भी विवेकशील उत्पादक वस्तु का उत्पादन तब तक बढ़ाना चाहता है जब तक कि उस वस्तु की सीमान्त लागत (Marginal cost) उस वस्तु की कीमत के बराबर नहीं हो जाती। प्रत्येक फर्म अपने लाभों को अधिकतम एवं लागतों को न्यूनतम रखने का प्रयास करती है। इन सब बातों को समझने के लिए हमें लागत की अवधारणा को विस्तृत रूप से समझना होगा।

लागत का अर्थ (Meaning of Cost) :-

कोई भी फर्म अपने उत्पाद या निर्गत (Output) को तैयार करने में प्रयुक्त आगतों (Inputs) पर जो कुछ भी व्यय करती है, उसे ही अर्थशास्त्र में लागतें कहा जाता है। लागत का वर्गीकृत निम्न प्रकार से किया जा सकता हैं :–

(1) सामाजिक लागतें (Social cost)

(2) मौद्रिक लागतें (Monetary cost)

(3) अवसर लागतें (Opportunity cost)

इसी प्रकार लेखे के आधार पर लागतों को मुख्यतः दो स्वरूप में बाँटा जा सकता है :–

(1) व्यक्त लागतें (Explict cost)

(2) अव्यक्त लागतें (Implict cost)

सामाजिक लागतें (Social cost) :–

इसमें वे सभी त्याग व कष्ट शामिल किये जाते हैं जिन्हें समाज उत्पादन के दौरान परोक्ष रूप से वहन करता है जैसे :– प्रदूषण, धूल–धुँए, तथा शोर–गुल से स्वास्थ्य हानि। इसी प्रकार उद्यम अथवा विकास परियोजनाओं के कारण जो असुविधा आम जनता को वहन करनी पड़ती हैं वे भी इसमें शामिल होती हैं। इस प्रकार से ये सभी सामाजिक लागतों का रूप होते हैं। इनका ठीक–ठीक अनुमान लगाना कठिन होता है।

अवसर लागत (Opportunity cost) :-

इसे वैकल्पिक आय भी कहा जाता हैं। यह प्रायः दुर्लभ संसाधनों पर अधिक लागू होती है। हम जानते हैं कि उत्पादन का एक साधन एक से अधिक वैकल्पिक उपयोगों में लाया जा सकता हैं। किसी भी साधन को उसके वर्तमान उपयोगों में लगाये रखने के लिये उतनी न्यूनतम राशि प्रतिफल के रूप में अवश्य चुकानी होगी, जितनी वह अन्य सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग से अर्जित कर सकता है। यही उसकी अवसर लागत कहलाएगी।

उदाहरण के लिये एक मजदूर को 400 रु. प्रतिदिन मजदूरी के रूप में भुगतान किया जा रहा है यदि उसे अन्यत्र उसी कार्य के लिये 500 रु. प्रतिदिन मजदूरी मिल सकती है तो उसे उसी कार्य में बनाये रखने के लिये 100 रु. का अतिरिक्त भुगतान करना होगा। इस प्रकार उसकी अवसर लागत 100रु हुई।

अवसर लागत = वर्तमान आय – वैकल्पिक आय

मौद्रिक लागत (Monetary Cost) :-

अपने उत्पाद या निर्गत को तैयार करने में जो कुछ भी नकद रूप में व्यय करता है। इसमें सभी प्रकार के प्रतिफलों का नकद भुगतान शामिल किया जाता है। जैसे :–

भूमि	———	लगान (किराया)
पूंजी	———	ब्याज
श्रम	———	मजदूरी
प्रबन्ध	———	वेतन
उद्यमी	———	लाभ

इसी प्रकार लेखे के आधार पर लागतों को मुख्यतः दो स्वरूप में बाँटा जा सकता हैं :–

व्यक्त व अव्यक्त लागतें (Explicit & Implicit) :-

व्यक्त व स्पष्ट लागतें – वे लागतें होती है जो एक फर्म के लेखे या हिसाब किताब में शामिल की जाती है जैसे कच्चे माल पर व्यय, ब्याज की अदायगी, मजदूरी का भुगतान इत्यादि। इन्हें स्पष्ट लागतें भी कहते हैं।

जबकि अव्यक्त या अस्पष्ट लागतें वे लागतें होती है जो लेखे या हिसाब किताब में शामिल नहीं की जाती है। जैसे उद्यमी के स्वयं के श्रम का मूल्य, स्वयं की पूंजी, फर्नीचर, गाड़ी इत्यादि का मूल्य। इन्हें अस्पष्ट लागतें भी कहते हैं।

अल्पकालीन लागतें

हम पढ़ चुके हैं कि उत्पादन फलन पर समय तत्व का बड़ा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

प्रभाव पड़ता है, इसलिये अल्पकालीन व दीर्घ कालीन उत्पादन फलन का अलग अलग अध्ययन किया जाता है। इसी प्रकार लागतें भी समय तत्व से प्रभावित होती है। कुछ संसाधनों की अल्प काल में पूर्ति स्थिर रहने से अल्प काल में फर्मों को स्थिर लागतें वहन करनी पड़ती है तथा कुछ परिवर्तनशील संसाधनों पर परिवर्तनशील लागतें। आइये इनको विस्तार से समझने का प्रयास करते हैं।

1. कुल स्थिर लागतें (TFC) –

अल्प काल में कुछ उत्पति साधनों की पूर्ति स्थिर रहने से उन पर किया जाने वाला कुल व्यय ही कुल स्थिर लागतें कहलाती है। अर्थात् उत्पति के प्रत्येक स्तर पर ये लागतें स्थिर रहती है। जैसे– भवन किराया, सड़क संयंत्र, प्रबन्धक व स्थायी कर्मचारियों का वेतन, बीमा आदि।

2. कुल परिवर्ती लागतें (TVC) –

अल्प काल में कुछ उत्पति साधनों की पूर्ति परिवर्तनशील होती है, इन पर किये जाने वाले कुल व्यय को ही कुल परिवर्ती लागतें कहा जाता है। ये लागतें उत्पति बढ़ाने के साथ साथ बढ़ती जाती है। जैसे– कच्चा माल, बिजली पानी आदि पर किया गया व्यय।

3. कुल लागतें (TC) –

अल्प काल में फर्म द्वारा वहन की जाने वाली कुल स्थिर लागतों और कुल परिवर्ती लागतों का योग ही कुल लागतें कहलाता है।

सूत्र : $TC = TFC + TVC$

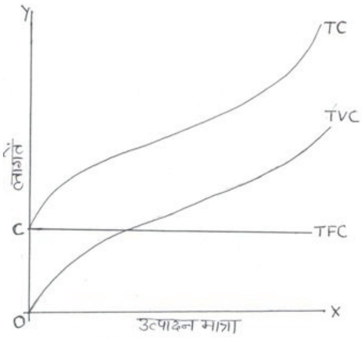

रेखाचित्र 8.1

4. औसत स्थिर लागतें –

अल्प कालीन कुल स्थिर लागतों में कुल उत्पति मात्रा का भाग लगाने से औसत स्थिर लागतें प्राप्त होती है। ये लागतें उत्पति मात्रा बढ़ने के साथ–साथ लगाातार घटती जाती है इसलिये इसके वक्र का आकार अति परवलयकार या आयताकार हाइपरबोला होता है।

सूत्र : $AFC = \frac{TFC}{Q}$

5. औसत परिवर्ती लागतें –

अल्प कालीन कुल परिवर्ती लागतों में कुल उत्पति मात्रा का भाग लगाने से औसत परिवर्ती लागतें प्राप्त होती है।

सूत्र : $AVC = \frac{TVC}{Q}$

6. औसत लागत –

अल्प कालीन कुल लागत में कुल उत्पत्ति मात्रा का भाग लगाया जाये तो हमें औसत लागत प्राप्त होगी। इसी प्रकार औसत स्थिर लागतों और औसत परिवर्ती लागतों का योग कर भी औसत लागत अल्प काल में ज्ञात की जा सकती है।

सूत्र : $AC = \frac{TC}{Q}$

या $AC = AFC + AVC$

7. सीमान्त लागत –

अल्प काल में जब फर्म द्वारा माल की एक इकाई अधिक उत्पन्न करने से कुल लागत में जो वृद्धिहोती है उसे सीमान्त लागत कहते है।

सूत्र : $MC = \frac{\Delta TC}{\Delta Q}$

यहाँ TC = कुल लागत में परिवर्तन

Q = उत्पति मात्रा में परिवर्तन

उपरोक्त लागत अवधारणाओं को निम्नलिखित तालिका के माध्यम से सरलता से समझा व ज्ञात किया जा समता हैं –

तालिका : 8.1

उत्पत्ति मात्रा (Q)	कुल स्थिर लागत TFC	कुल परिवर्ती लागत TVC	कुल लागत TC	औसत स्थिर लागत AFC	औसत परिवर्ती लागत AVC	औसत लागत SAC	सीमान्त लागत SMC
0	10	0	10	-	-	-	-
1	10	8	18	10	8	18	8
2	10	14	24	5	7	12	6
3	10	18	28	3.33	6	9.33	4
4	10	24	34	2.5	6	8.5	6
5	10	34	44	2	6.8	8.8	10
6	10	50	60	1.67	8.33	10	16

उपर्युक्त तालिका में सभी मान विभिन्न लागतों के ऊपर दियें गये सूत्रों का उपयोग करते हुए ज्ञात किये जा सकते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

रेखाचित्र में निरूपण :–

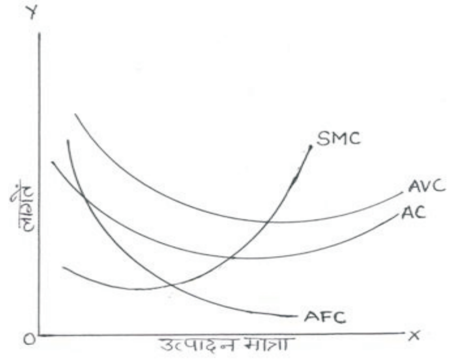

रेखाचित्र 8.2

उपरोक्त रेखाचित्र में स्पष्ट हैं कि सभी लागत वक्रों की आकृति अंग्रेजी के U अक्षर के समान होती है। उत्पादन का पैमाना बढ़ने के साथ–साथ औसत स्थिर लगातार घटती जाती है इसीलिए इसकी आकृति अतिपरवलयकार होती है। इसी प्रकार औसत परिवर्तनशील लागत प्रारम्भ में उत्पादन बढ़ने के साथ घटती हैं

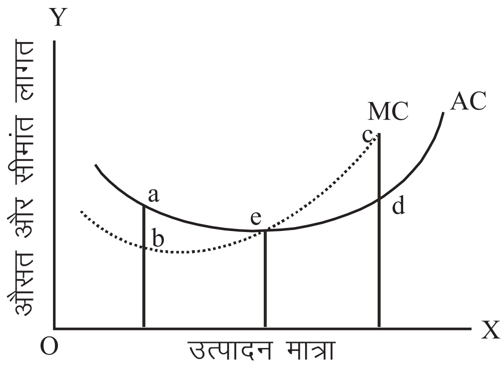

रेखाचित्र 8.3

किन्तु फिर एक न्यूनतम बिन्दु के बाद बढ़ने लगती है। औसत लागत, औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग होती है।चित्र 8.2 से स्पष्ट है कि C बिन्दू तक AC व MC वक्र घटते है किन्तु MC वक्र AC वक्र से अधिक गति से गिरता है जबकि C बिन्दू के बाद MC व AC वक्र दोनों बढ़ते है पर AC की तुलना में MC वक्र अधिक तेजी से बढ़ता है। C बिन्दू पर AC वक्र न्यूनतम है यहां AC=MC

औसत लागत व सीमान्त लागत में सम्बन्ध :–

औसत लागत और सीमान्त लागत के सम्बन्ध को हम इस प्रकार समझ सकते हैं

1. जब औसत लागत घटती है तो सीमान्त लागत उससे कम होती है।

   MC<AC

2. जब औसत लागत न्यूनतम होती है तो सीमान्त उसे काटते हुए ऊपर निकल जाती है।

   MC=AC

3. जब औसत लागत बढ़ती हैं तो सीमान्त लागत उससे तेजी से बढ़ती हैं अधिक होती हैं।

   MC>AC

दीर्घकालीन लागतें:–

दीर्घकाल में उत्पादन के सभी संसाधनों या आगतों में परिवर्तन संभव हो सकता हैं । अतः यहाँ कोई स्थिर लागतें नहीं पाई जाती है। हम केवल दीर्घकालीन औसत लागत और दीर्घकालीन सीमांत लागत का ही अध्ययन करते हैं।

दीर्घकालीन औसत लागत :–

कुल उत्पत्ति मात्रा में से एक इकाई उत्पादन की औसत लागत ज्ञात करनें के लिए कुल लागत में कुल उत्पादन मात्रा का भाग दिया जाता हैं।

$$\text{दीर्घकालीन औसत लागत} = \frac{\text{कुल लागत}}{\text{कुल उत्पादन}}$$

सूत्र :– LAC = TC / Q

दीर्घकालीन सीमान्त लागत :–

दीर्घकालीन सीमान्त लागत प्रति इकाई निर्गत में परिवर्तन का कुल आगत में परिवर्तन में भाग देकर प्राप्त किया जाता हैं। LMC = Δ TC / Δ Q

दीर्घकालीन लागत वक्रों की आकृति :–

दीर्घकालीन औसत लागत (LAC) अनेक छोटे – छोटे अल्पकालीन औसत वक्रों (SAC) से बना एक U आकृति का वक्र भी होता है। जिसे लिफाफा वक्र भी कहते हैं। यह अनेक फर्मों के अल्पकालीन औसत वक्रों को स्पर्श करते हुए होता है। रेखाचित्र के अनुसार SAC_1, SAC_2, SAC_3, SAC_4, o SAC_5 का स्पर्श करता हुआ LAC वक्र दिखाया गया है। (रेखाचित्र 8.4)

रेखाचित्र 8.5 में इसी प्रकार दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LMC) को भी दर्शाया गया हैं जो LAC वक्र को उसके न्यूनतम बिन्दु से काटता हुआ ऊपर की ओर निकल जाता है।

जैसे–जैसे फर्म दीर्घकाल में नये संयंत्र स्थापित करती है तो एक सीमा तक पैमाने की किफायतों के कारण औसत उत्पादन लागत में कमी होती जायेगी तथा OQ उत्पादन मात्रा पर औसत उत्पादन लागत न्यूनतम होगी। तत्पश्चात पैमााने की गैर किफायतों के कारण उत्पादन बढ़ने लगता है।

दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र (LMC) - दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र दीर्घकाल में सभी आगतों में परिवर्तन के फलस्वरूप प्रति इकाई उत्पादन मात्रा की लागत के रूप में व्यक्त

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

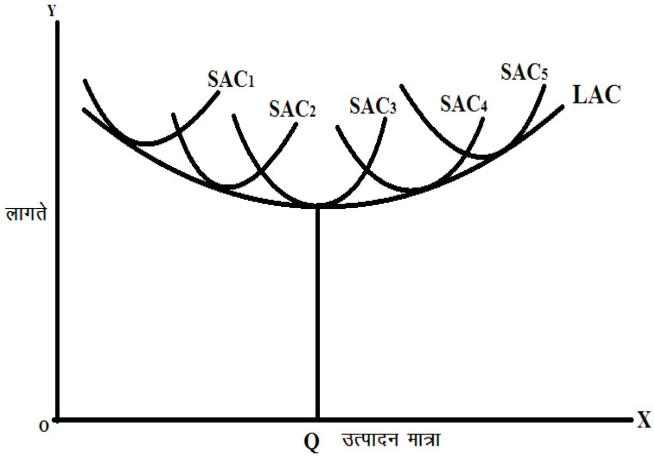

रेखाचित्र 8.4

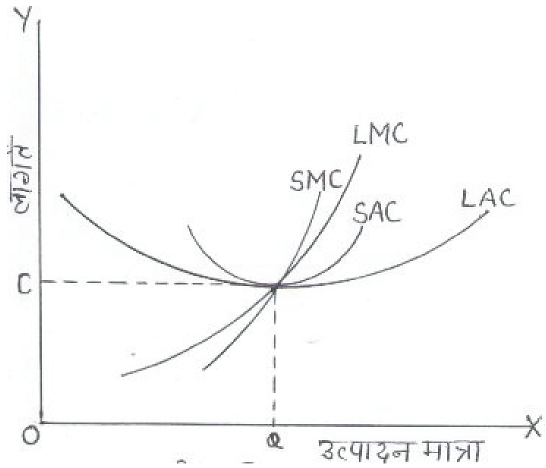

रेखाचित्र 8.5

किया जाता हैं। दीर्घकालीन सीमान्त लागत वक्र भी अल्पकालीन सीमान्त लागत वक्र की आकृति के समान ही होता हैं।

रेखाचित्र 8.5 में LMC वक्र LAC वक्र को न्यूनतम बिन्दु से काटता हुआ ऊपर की ओर निकलता हैं। इस बिंदु पर ही SMC वक्र SAC वक्र को काटता हुआ दिखाया गया है। इस प्रकार संयंत्र का इष्टतम आकार वहाँ होता हैं जहाँ SAC व LAC के न्यूनतम बिंदुओ से LMC व SMC वक्र काटते हुए होते हैं अर्थात चारों बराबर होते हैं।

LMC = LAC = SMC = SAC (इष्टतम संयत्र संयोग)

महत्वपूर्ण बिन्दु

कोई भी फर्म अपने उत्पाद या निर्गत (Output) को तैयार करने में प्रयुक्त आगतों (Inputs) पर जो कुछ भी व्यय करती हैं, उसे ही अर्थशास्त्र में लागतें कहा जाता हैं।

सामाजिक लागतों में वे सभी त्याग व कष्ट शामिल किये जाते हैं जिन्हें समाज उत्पादन के दौरान परोक्ष रूप से वहन करता हैं जैसे :– प्रदूषण, धूल–धुएँ, तथा शोर–गुल से स्वास्थ्य हानि।

किसी भी साधन को उसके वर्तमान उपयोगों में लगाये रखने के लिये उतनी न्यूनतम राशि प्रतिफल के रूप में अवश्य चुकानी होगी, जितनी वह अन्य सर्वश्रेष्ठ वैकल्पिक उपयोग से अर्जित कर सकता है। यही उसकी अवसर लागत कहलाती है।

अपने उत्पाद या निर्गत को तैयार करने में जो कुछ भी नकद रूप में व्यय करता है उसे ही अर्थशास्त्र में मौद्रिक लागत कहा जाता है।

व्यक्त वे लागतें होती है जो एक फर्म के लेखे या हिसाब किताब में शामिल की जाती है जैसे कच्चे माल पर व्यय, ब्याज की अदायगी, मजदूरी का भुगतान इत्यादि। इन्हें स्पष्ट लागतें भी कहते हैं।

अव्यक्त या अस्पष्ट लागतें वे लागतें होती हैं जो लेखे या हिसाब किताब में शामिल नहीं की जाती हैं। जैसे उद्यमी के स्वयं के श्रम का मूल्य, स्वयं की पूंजी, फर्नीचर, गाड़ी इत्यादि का मूल्य।

कुछ संसाधनों की अल्प काल में पूर्ति स्थिर रहने से अल्प काल में फर्मों को स्थिर लागतें वहन करनी पड़ती है तथा कुछ परिवर्तन शील संसाधनों पर परिवर्तनशील लागतें।

उत्पादन का पैमाना बढ़ने के साथ–साथ औसत स्थिर लागत घटती जाती हैं इसीलिए इसकी आकृति अतिपरवलयकार होती हैं।

औसत लागत औसत स्थिर लागत एवं औसत परिवर्तनशील लागत का योग होती हैं।

दीर्घकाल में उत्पादन के सभी संसाधनों या आगतों में परिवर्तन संभव हो सकता है। अतः यहाँ कोई स्थिर लागतें नहीं पाई जाती हैं।

दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) अनेक छोटे – छोटे अल्पकालीन औसत वक्रो (SAC) से बना एक U आकृति का वक्र भी होता हैं। जिसे लिफाफा वक्र भी कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. कौन सी लागतें समाज को उत्पादन के दौरान परोक्ष रूप से वहन करनी पडती है –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) मौद्रिक लागतें (ब) औसत लागतें
(स) परिवर्तनशील लागतें (द) वास्तविक लागतें

2. 'कौन सा वक्र U आकृति का नहीं होता है –
(अ) AC (ब) AFC
(स) MC (द) AVC

3. वे लागतें जो लेखे या हिसाब किताब में शामिल नहीं की जाती हैं–
(अ) मौद्रिक लागतें (ब) वास्तविक लागतें
(स) स्पष्ट लागतें (द) अस्पष्ट लागतें

4. 'कौन सा वक्र लिफाफा वक्र भी कहलाता है–
(अ) SMC (ब) LAC
(स) SAC (द) LMC

5. यदि कुल लागत 200 रु. है और वस्तु की उत्पादन मात्रा 20 इकाई है तो औसत लागत होगी–
(अ) 10 (ब) 20
(स) 30 (द) 40

उत्तरमाला

1	2	3	4	5
द	ब	द	ब	अ

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. परिवर्तनशील लागत क्या है ?
2. स्पष्ट लागत क्या है ?
3. लागत किसे कहते है ?
4. सीमांत लागत का सूत्र लिखिए।
5. 'कौन से वक्र की आकृति अतिपरवलयकार होती है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. परिवर्तनशील लागत और स्थिर लागत के कोई दो–दो उदाहरण दीजिए।
2. स्पष्ट और अस्पष्ट लागतों मे भेद कीजिए।
3. औसत लागत और सीमांत लागत में संबध स्पष्ट कीजिए।
4. अवसर–लागत किसे कहते हैं ?
5. दीर्घकालीन औसत लागत वक्र (LAC) को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. लागत की अवधारणाओं को विस्तारपूर्वक समझाइये।
2. निम्न तालिका से लागत की अवधारणाओं को सूत्र की सहायता से ज्ञात कीजिए।

Q	TFC	TVC	TC	AFC	AVC	SAC	SMC
0	20		20				
1	20		30				
2	20		38				
3	20		44				
4	20		49				
5	20		53				
6	20		59				

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 9

आगम की अवधारणा
(Concept of Revenue)

पिछले अध्याय में हमने लागत की अवधारणाओं का विस्तार से अध्ययन किया। अब हम उत्पादक को अपने उत्पाद के विक्रय से होने वाली आय (आगम) का अध्ययन करेंगे। प्रतियोगिता के आधार पर अर्थव्यवस्था में बाजार को प्रमुख रूप से तीन भागों मे बाँटा गया हैं। पूर्ण प्रतियोगिता, एकाधिकार तथा एकाधिकारात्मक बाजार। उक्त तीनों प्रकार के बाजारों में वस्तु की बिक्री तथा उससे मिलने वाली कीमत के अनुरूप आगमों में भिन्नता पाई जाती हैं।

आगम का अर्थ (Meaning of Revenue) :-

यहाँ आगम से तात्पर्य उत्पादक को होने वाली उस आय अथवा मूल्य प्राप्ति से है जो उसे अपने तैयार माल बेचने से प्राप्त होता है।

इस प्रकार किसी उत्पादक को प्राप्त होने वाले कुल आगम में उसकी लागत के अतिरिक्त उसके लाभ भी समाहित होते हैं।

(i) कुल आगम **(Total Revenue) :-** फर्म का कुल आगम फर्म द्वारा बिक्री की मात्रा (Q) को उसकी वसूली गई कीमत (P) से गुणा करके प्राप्त किया जाता है।

कुल आगम = बिक्री की मात्रा कीमत

$$TR = Q \quad P$$

उदाहरण :– यदि किसी फर्म द्वारा 10 रुपये की दर से कुल 100 इकाई माल की बिक्री की गई तो उसका कुल आगम (10 x 100) = 1000 रुपये होगा।

(ii) औसत आगम **(Average Revenue) :-** किसी फर्म का औसत आगम फर्म द्वारा प्राप्त किये गए कुल आगम में कुल बिक्री मात्रा का भाग देने से प्राप्त किया जाता हैं।

$$\text{औसत आगम} = \frac{\text{कुल आगम}}{\text{कुल बिक्री मात्रा}}$$

$$AR = \frac{TR}{Q}$$

उदाहरण :– यदि किसी फर्म का एक माह में कुल आगम 20000रु. है और कुल बिक्री की मात्रा 100 इकाई है तो औसत आगम (20000 ÷ 100) = 200रु. होगा।

नोट :– औसत आगम वक्र ही किसी फर्म का मांग वक्र होता हैं। मांग कीमत पर निर्भर करती है।

(3) सीमान्त आगम **(Marginal Revenue) :-** वस्तु की अतिरिक्त इकाई के विक्रय करने से जो अतिरिक्त आगम प्राप्त होता है, उसे सीमान्त आगम कहते हैं अर्थात विक्रय में वृद्धि के परिणामस्वरूप जो आय में वृद्धि होती है।

$$\text{सीमान्त आगम} = \frac{\text{कुल आगम में परिवर्तन}}{\text{बिक्री मात्रा में परिवर्तन}}$$

$$MR = \frac{\Delta TR}{\Delta Q} \text{ (यहाँ } \Delta \text{ परिवर्तन का द्योतक है)}$$

उदाहरण :– यदि फर्म की कुल बिक्री इकाई 10 से बढाकर 11 होने पर यदि कुल आगम 100 से 105 हो जाता है तो यहाँ

TR = 105 - 100 = 5

Q = 11 - 10 = 1

MR = 5/1 = 5 रु.

अर्थात उक्त उदाहरण में सीमान्त आगम 5 रुपये है।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि औसत आगम एवं सीमान्त आगम की गणना कुल आगम पर आधारित होती है। अतः तीनो में घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है। विभिन्न प्रकार के बाजारों में इनका विश्लेषण निम्न प्रकार से किया गया है:–

विभिन्न बाजारों में आगम वक्र के स्वरूप :

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार :– पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में अनेक क्रेता एवं विक्रेता होते हैं। फर्मों द्वारा बाजार में मांग– पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमतों का अनुसरण किया जाता है। अतः इस बाजार में कुल आगम, सीमान्त आगम व औसत आगम का स्वरूप इस प्रकार होता है।

तालिका 9.1

पूर्ण प्रतियोगिता में सीमान्त और औसत आगम			
बिक्री मात्रा Q	औसत आगम AR	कुल आगम TR	सीमान्त आगम MR
1	5	5	5
2	5	10	5
3	5	15	5
4	5	20	5
5	5	25	5

चूँकि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्में उद्योग द्वारा निर्धारित कीमतों का अनुसरण करती हैं –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अतः कुल आगम (TR) वक्र एक सीधी पड़ी हुई रेखा के रूप में होता है जो कि बिक्री की मात्रा और कीमत के गुणनफल में कुल आय को व्यक्त करता है। जैसे–जैसे विक्रय इकाइयाँ बढ़ती है वैसे–वैसे कुल आगम भी बढ़ती जाती है।

इसी प्रकार सीमान्त आगम (MR) व औसत आगम (AR) बराबर होते हैं और इनका वक्र भी X-अक्ष के समानान्तर एक पूर्णतया लोचदार रेखा के रूप में होता है जो कीमत स्तर को भी व्यक्त करता है। अतः AR=MR=P

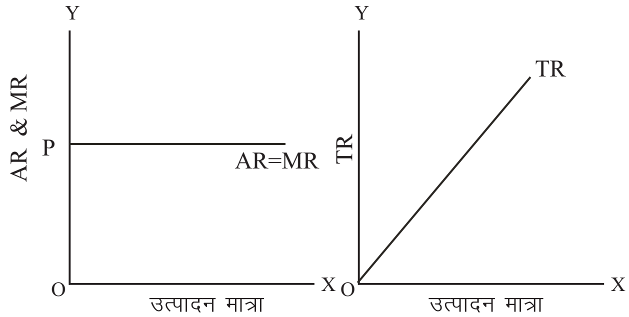

रेखाचित्र 9.1

एकाधिकार बाजार में आगम वक्र :–

एक ऐसा बाजार जिसमें वस्तु का अकेला उत्पादक या विक्रेता होता है एकाधिकार बाजार कहलाता है यह बाजार की एक विशिष्ट प्राक्कल्पना है जिसमें उत्पादक स्वयं अपने उत्पाद की कीमत एवं मात्रा निर्धारित करता है। इस बाजार में आगम अवधारणा को हम एक तालिका से समझ सकते हैं –

तालिका 9.2

बिक्री मात्रा (इकाई) Q	कुल आगम (TR)	सीमान्त आगम (MR)	औसत आगम (AR)
1	10	10	10
2	16	6	8
3	18	2	6
4	18	0	4.5
5	16	2	3.25

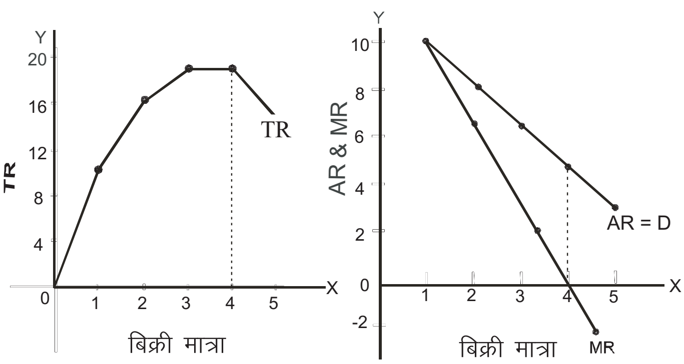

रेखाचित्र 9.2

उपर्युक्त रेखाचित्रों के अनुरूप एकाधिकार बाजार में कुल आगम (TR) पहले बढ़ती दर से बढ़ता है, फिर अधिकतम बिन्दु पर पहुँचने के बाद घटने लगता है।

इसी प्रकार सीमान्त (MR) और औसत आगम (AR) दोनों घटते हुए होते है MR वक्र AR वक्र की अपेक्षा अधिक तेज गति से घटता है। दोनों के वक्र कम लोचदार एवं गिरते हुए होते है। AR वक्र MR वक्र से ऊपर होता है। यहाँ औसत आगम वक्र (AR) ही फर्म का माँग वक्र होता है।

अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार :–

इस बाजार में कुछ फर्में परस्पर अपनी बिक्री को अधिकतम करने के लिए प्रतियोगिता करती हैं। एकाधिकारात्मक बाजार एक व्यावहारिक एवं वास्तविक अवधारणा है जो प्रत्येक अर्थव्यवस्था में पाई जाती है। इसमें आगम की अवधारणा को इस तालिका से समझा जा सकता है–

तालिका 9.3

बिक्री मात्रा Q	कुल आगम TR	सीमान्त आगम MR	औसत आगम AR
1	10	10	10
2	18	8	9
3	24	6	8
4	28	4	7
5	30	2	6
6	30	0	5
7	28	-2	4

इस बाजार में पूर्ण प्रतियोगिता एवं एकाधिकार प्रतियोगिता की विशेषताओं का मिश्रण होता है। यह व्यावहारिक एवं वास्तविक स्थिति के निकट होता है। इसके अन्तर्गत एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता, अल्पाधिकार एवं द्वयाधिकार बाजार सम्मिलित होते हैं।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता :–

इस बाजार में फर्मों की संख्या अधिक होती है। इसकी प्रमुख विशेषता वस्तु विभेद होती है अर्थात रंग, पैकिंग, ब्राण्ड,

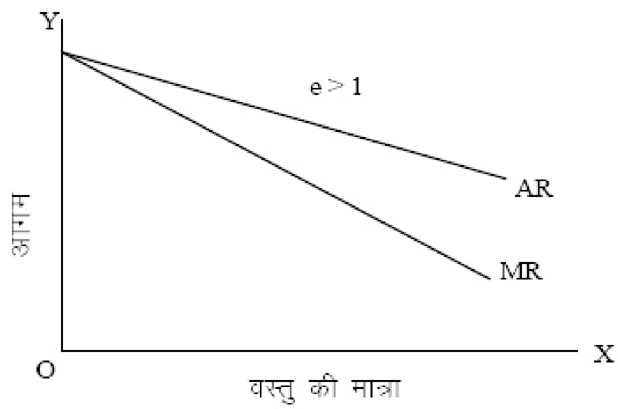

रेखाचित्र 9.3

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

गुणवत्ता, विक्रयशैली इत्यादि मे विभिन्नता के आधार पर गैर कीमत प्रतियोगिता भी पाई जाती है। इसके अन्तर्गत औसत आगम (AR) वक्र सापेक्षतः अधिक लोचदार ($e > 1$) होता है जो कि यह दर्शाता है कि मांग कीमत के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। इस प्रकार माँग वक्र का ढाल चपटा होता है।

एकाधिकारात्मक बाजार में TR वक्र सर्वप्रथम बढ़ती दर से बढ़ता हैं, तत्पश्चात अधिकतम स्तर पर पहुँचकर घटने लगता है। इस बाजार में AR व MR वक्र दोनों ही गिरते हुए होते है। AR वक्र MR वक्र से ऊपर होता है। इस बाजार में औसत आगम व सीमान्त आगम का ढाल अधिक लोचदार होता है। इस बाजार में भी औसत आगम (AR) वक्र ही फर्म का माँग वक्र होता है। जहाँ TR अधिकतम होता है MR शून्य होता है।

अल्पाधिकार :–

यह बाजार की एक ऐसी अवस्था है जिसमें विभेदीकृत वस्तुएँ बेचने वाली बहुत कम फर्म होती हैं। इस बाजार में विक्रेताओं की संख्या कम होती है अतः प्रत्येक विक्रेता समस्त उद्योग के कुल उत्पादन के एक बड़े भाग को उत्पादित कर सकता है। कीमत स्तर प्रतिद्वन्दी फर्मों की कीमतों के आधार पर घटता बढ़ता रहता है। कीमतों में इसी अनिश्चितता के कारण विक्रेता का मांग वक्र अनिश्चित होता है। इस बाजार में मांग वक्र विंकुचित होता है, जो कि बाजार में कीमत दृढ़ता (Price Rigitity) को दर्शाता है।

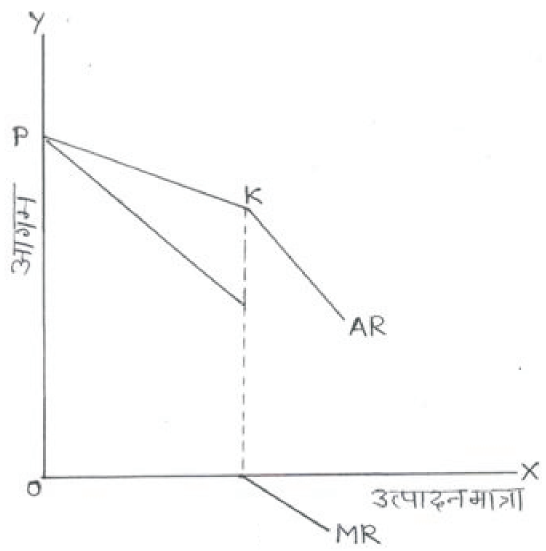

रेखाचित्र 9.4

आगम वक्रों का महत्व :–

औसत आगम एवं सीमान्त आगम का कीमत विश्लेषण में अत्यधिक महत्व है। सभी बाजारों में औसत आगम उत्पादक का मांग वक्र होता है। किसी भी फर्म अथवा उद्योग की वित्तीय स्थिति का आंकलन औसत आगम एवं औसत लागत के आधार पर किया जाता है, अर्थात् यदि AR = AC है तो इसका अभिप्राय है कि फर्म को सामान्य लाभ प्राप्त हो रहे हैं। इसी प्रकार फर्म की सन्तुलन अवस्था ज्ञात करने के लिए सीमान्त आगम की अवधारणा महत्वपूर्ण होती है। किसी भी फर्म की सन्तुलन अवस्था अर्थात् अनुकूलतम उत्पादन मात्रा का निर्धारण होता है जहाँ सीमान्त आगम, सीमान्त लागत के बराबर होती है। इस प्रकार आर्थिक विश्लेषण में औसत एवं सीमान्त आगम वक्र उपयोगी उपकरण सिद्ध होते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

फर्म का कुल आगम फर्म द्वारा बिक्री मात्रा (Q) को उसकी वसूली गई कीमत (P) से गुणा करके प्राप्त किया जाता है।

किसी फर्म का औसत आगम फर्म द्वारा प्राप्त किये गए कुल आगम में कुल बिक्री मात्रा का भाग देने से प्राप्त किया जाता है।

वस्तु की अतिरिक्त इकाई के विक्रय करने से जो अतिरिक्त आगम प्राप्त होता हैं उसे सीमान्त आगम कहते हैं।

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में अनेक क्रेता एवं अनेक विक्रेता होते हैं। फर्मों द्वारा बाजार में मांग– पूर्ति द्वारा निर्धारित कीमतों का अनुसरण किया जाता हैं।

एक ऐसा बाजार जिसमें वस्तु का अकेला उत्पादक या विक्रेता होता है, एकाधिकार बाजार कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

(1) वस्तु की कीमत को बेची गई मात्रा से गुणा करने पर प्राप्त होता है –

(अ) औसत आगम (ब) कुल आगम
(स) सीमान्त आगम (द) औसत निर्गत

(2) यदि किसी माह में 10 रु. दर से कुल 200 इकाई मात्रा की बिक्री की गई तो औसत आगम होगी–

(अ) 50 (ब) 20
(स) 25 (द) 10

(3) कौनसे बाजार में AR=MR बराबर होती है–

(अ) पूर्ण प्रतियोगिता बाजार
(ब) अपूर्ण प्रतियोगिता बाजार
(स) एकाधिकार बाजार
(द) सभी में

(4) पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कौनसा वक्र कीमत रेखा को व्यक्त करता है–

(अ) AR=MR (ब) MR
(स) TR (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(5) एकाधिकार बाजार AR और MR वक्र में सम्बन्ध होता है–

(अ) AR=MR (ब) AR>MR

(स) AR<MR (द) AR×MR

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

1– औसत आगम का सूत्र लिखिए।

2– सीमान्त आगम को परिभाषित कीजिए।

3– आगम को समझाइये।

4– पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में AR और MR वक्र का स्वरूप कैसा होता है ?

5– पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में कीमत को प्रदर्शित करने वाला वक्र कौन सा होता है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न :

1– औसत आगम व सीमान्त आगम को एक काल्पनिक तालिका से समझाइये।

2– निम्न तालिका को पूरा कीजिए–

उत्पादन इकाई में	1	2	3	4	5
औसत आगम रु	6	–	4	–	–
सीमान्त आगम रु	–	4	–	0	–
कुल आगम रु	6	–	–	–	10

उत्तर : MR=6,4,2,0,-2 AR=6,5,4,3,2 TR=6,10,12,12,10

3– निम्नलिखित आंकड़ों से औसत आगम व सीमान्त आगम का आकलन कीजिए।

उत्पादन इकाई में	0	1	2	3	4	5	6
कुल आगम रु. में	0	10	25	51	60	60	42

उत्तर : MR=10,15,26,9,0,-18 AR=10,12.5,17,15,12,7

4– निम्नलिखित आंकड़ों से कुल आगम व सीमान्त आगम का आकलन कीजिए।

उत्पादन इकाई में	6	7	8	9	10
औसत आगम रु. में	5	8	15	12	8

उत्तर : TR=30,56,120,108,80 MR=26,64,-12,-28

निबन्धात्मक प्रश्न :–

1– पूर्ण प्रतियोगिता बाजार के अंतर्गत कुल आगम, औसत आगम व सीमान्त आगम के पास्परिक सम्बन्ध को एक काल्पनिक तालिका और रेखाचित्र की सहायता से समझाइये।

2– पूर्ण प्रतियोगिता बाजार किसे कहते हैं? पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार क्यों होता है? समझाइये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	ब	अ	अ	ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 10

फर्म का संतुलन
(Equilibrium Of A Firm)

फर्म अर्थव्यवस्था में उपलब्ध संसाधनों का उपयोग उत्पादन प्रक्रिया में करती है। वह घरेलू और व्यवसाय क्षेत्रों के लिए उपभोग और मध्यवर्ती वस्तुओं का उत्पादन करती है। सभी फर्मों का उद्देश्य लाभ को अधिकतम करना होता है। फर्में उत्पादन की ऐसी मात्रा निर्धारित करती है जिस पर उसके लाभ अधिकतम होते हैं। इसी उद्देश्य से वह उत्पादन की मात्रा को कभी बढ़ाता है तो कभी घटाता है, जिससे उस साम्यावस्था को प्राप्त कर सके जिस पर अधिकतम लाभ प्राप्त होते हैं। इस प्रकार एक फर्म संतुलन में होती है, जब वह वस्तु की उत्पादन मात्रा को न तो बढ़ाती और न ही घटाती है। यदि किसी फर्म को भविष्य में और अधिक लाभ के अवसर दिखते हैं तो वह अवश्य उत्पादन की मात्रा को घटा और बढ़ा सकती है।

फर्म के लाभ को ज्ञात करने के लिए उसके आगम और लागत की जानकारी होना आवश्यक है। पिछले अध्याय में हमने विस्तार से आगम और लागत का अध्ययन किया था, उन्हीं का उपयोग करते हुए इस अध्याय में हम फर्म के सन्तुलन को समझाएंगे।

आगम का तात्पर्य है एक फर्म द्वारा बेची गई वस्तु की मात्रा को उसकी कीमत से गुणा करने पर प्राप्त राशि, जबकि लागत उन सभी व्ययों को सम्मिलित करती है जो एक फर्म किसी वस्तु के उत्पादन करने में करती है। यही आगम और लागत का अन्तर लाभ अथवा हानि को बताता है। यदि किसी फर्म का आगम उसकी लागत से अधिक होता है तो फर्म को लाभ प्राप्त होता है इसके विपरीत यदि आगम लागत से कम होता है, तो हानि होती है। अर्थशास्त्र में फर्म के संतुलन की व्याख्या करने की दो प्रचलित विधियाँ हैं। 1. कुल आगम कुल लागत विधि। 2. सीमान्त आगम और सीमान्त लागत विधि। साम्य कीमत और उत्पादन का अर्थ उस मात्रा से होता है जिस पर फर्म अधिकतम लाभ अर्जित करती है। सभी बाजार जिसका अध्ययन हम आगे के अध्यायों में करेंगे, इन्हीं दो विधियों का उपयोग कर फर्म के संतुलन की व्याख्या की जा सकती है।

फर्म का संतुलन–कुल आगम और कुल लागत विधि

इस विधि के अनुसार फर्म का संतुलन उस स्थिति में होगा जहां कुल आगम और कुल लागत में अंतर सर्वाधिक होता है अर्थात् TR और TC वक्रों में अन्तर अधिकतम होता है। फर्म उस उत्पादन मात्रा पर साम्यावस्था में होगी जब उसे प्राप्त होने वाला लाभ अधिकतम होता है। इसे निम्न चित्र की सहायता से स्पष्ट किया जा सकता है (रेखाचित्र 10.1)।

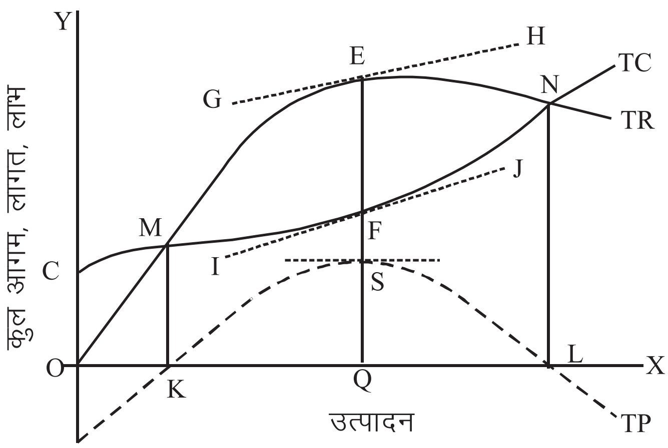

रेखाचित्र 10.1

1. इस चित्र में x अक्ष पर उत्पादन मात्रा और y अक्ष पर कुल आगम, कुल लागत और लाभ की मात्रा दर्शायी गयी है।

2. कुल आगम (TR) वक्र शून्य से प्रारम्भ होता है, इससे यह बात स्पष्ट होती है कि अगर उत्पादन की मात्रा शून्य होती है तो कुल आगम भी शून्य होता है और जैसे जैसे उत्पादन बढ़ता है तो कुल आगम बढ़ने पर आगम वक्र दायें ऊपर की ओर उठता है।

3. कुल लागत वक्र (TC) C बिन्दू से प्रारम्भ होता है एवं OC स्थिर लागत होती है। उत्पादन शून्य होने पर भी फर्म को OC के बराबर लागत वहन करनी पड़ती है।

4. कुल आगम और लागत के अन्तर से कुल लाभ अर्जित होता है। कुल लाभ वक्र (TP) को TR और TC वक्र के अन्तर से व्युत्पन्न किया है।

5. प्रारम्भ में K उत्पादन के स्तर से पूर्व तक चूंकि TC > TR होता है अर्थात कुल लागत, कुल आगम से अधिक होन पर फर्म को हानि होती है। व्युत्पन्न लाभ वक्र (TP) ऋणात्मक क्षेत्र में स्थित है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. M बिन्दु पर जब कुल आगम (TR), कुल लागत (TC) के बराबर होता है तो फर्म को न लाभ होता है न ही हानि। अतः इस अवस्था को समस्थिति बिन्दु (Break even Point) कहते हैं। कुल लाभ वक्र (TP) X- अक्ष पर स्पर्श करता है अर्थात फर्म को K उत्पादन स्तर पर लाभ शून्य प्राप्त है।

7. उत्पादन K व L बिन्दुओं के मध्य होता है, तो कुल आगम कुल लागत से अधिक होती है। TR वक्र इस क्षेत्र में TC वक्र से ऊपर है अथवा TR>TC। इसी प्रकार कुल लाभ भी धनात्मक है।

8. TR और TC वक्र के अधिकतम अन्तर को जानने के लिए स्पर्श रेखाएँ (Tangents) (GH व IJ) खींचनी पड़ती है। कुल आगम और कुल लागत वक्रों पर ये स्पर्श रेखाएँ जहां स्पर्श करती हैं (E और F बिन्दु पर) उन पर TR और TC वक्र के मध्य दूरी अधिकतम होती है, इसलिए लाभ भी अधिकतम होते हैं। साम्य उत्पादन मात्रा OQ निर्धारित होती है। इस उत्पादन स्तर पर कुल लाभ वक्र का उच्चतम बिन्दु S होता है। अधिकतम लाभ की मात्रा SQ होती है।

9. KQ के मध्य उत्पादन पर TR और TC के मध्य अन्तर बढ़ता हुआ होता है अर्थात कुल लाभ बढ़ती दर से प्राप्त होते हैं S बिन्दु पर अधिकतम होते हैं। QL उत्पादन पर भी लाभ प्राप्त होते हैं किन्तु TR और TC का अन्तर कम होता जाता है तो लाभ भी घटने लगते हैं। TP वक्र नीचे की ओर गिरता है।

10. N बिन्दु पर पुनः कुल आगम और कुल लागत बराबर होते हैं। यह समस्थिति (Break even Point) बिन्दु कहलाता है इस पर न लाभ और न हानि की स्थिति होती है। TP वक्र x अक्ष को स्पर्श करता है।

11. OL उत्पादन मात्रा के बाद यदि फर्म और अधिक उत्पादन करती है तो कुल लागत बढ़ती जाती है और कुल आगम घटता है (TC>TR)। फर्म को हानि होती है। कुल लाभ (TP) वक्र x अक्ष के नीचे होता है। लाभ ऋणात्मक अथवा फर्म की प्राप्त हानि को दर्शाते हैं।

उपरोक्त विवरण एवं चित्र के आधार पर फर्म का संतुलन OQ उत्पादन मात्रा पर होता है, क्योंकि इस उत्पादन मात्रा पर कुल आगम (TR) और कुल लागत (TC) का अन्तर अधिकतम होता है। वक्रों के रुप में इस बिन्दु पर TR और TC वक्रों की दूरी अधिकतम होती है। इसी कारण से व्युत्पन्न लाभवक्र अपने शीर्ष बिन्दु पर होता है अर्थात लाभ मात्रा SQ अधिकतम होती है।

आलोचना :

यह विधि सरल और तर्कसंगत है। अधिकांश फर्में इसका उपयोग करती हैं, किन्तु इसमें निम्न त्रुटियाँ पाई जाती हैं :

1. कुल आगम और कुल लागत के मध्य अधिकतम दूरी ज्ञात करना कठिन होता है। कई स्पर्श रेखाएं खींचने पर वास्तविक बिन्दु प्राप्त होता है।

2. चित्र के आधार पर प्रति इकाई कीमत को ज्ञात करना सम्भव नहीं होता क्योंकि कीमत को प्रत्यक्षतः नहीं दिखाया जाता है।

II सीमान्त आगम और सीमान्त लागत विधि

फर्म के सन्तुलन की व्याख्या की दूसरी विधि सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) विधि होती है। सीमान्त आगम का अर्थ है एक फर्म को एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय करने पर जो अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। इसी प्रकार सीमान्त लागत से तात्पर्य होता है कि फर्म को एक अतिरिक्त इकाई के उत्पादन पर जो अतिरिक्त व्यय करना पड़ता है।

जब अतिरिक्त इकाई उत्पादन और विक्रय से प्राप्त अतिरिक्त आगम अतिरिक्त लागत से अधिक होता है तो फर्म को लाभ होता है। जब सीमान्त आगम (MR) के बराबर सीमान्त लागत (MC) हो तो वह फर्म की आदर्श उत्पादन मात्रा होती है, अर्थात जब MC=MR होगा तब फर्म का लाभ अधिकतम होगा।

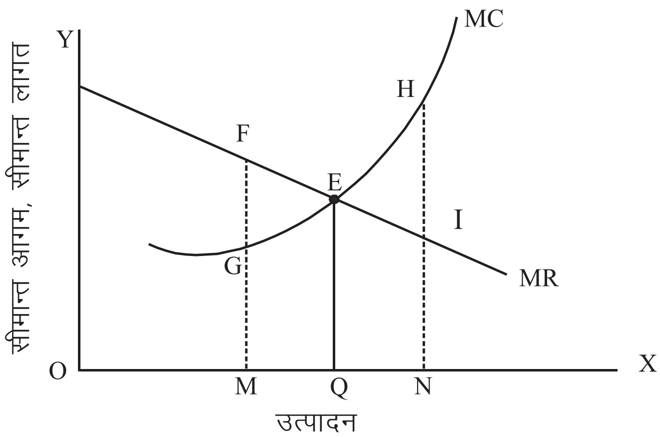

रेखाचित्र 10.2

चित्र की व्याख्या

1. x अक्ष पर उत्पादन मात्रा और y अक्ष पर सीमान्त आगम (MR) और सीमान्त लागत (MC) दर्शायी गई है।
2. सीमान्त आगम वक्र (MR) और सीमान्त लागत वक्र (MC) है। अपूर्ण प्रतियोगिता अथवा एकाधिकार बाजार में सीमान्त आगम वक्र नीचे गिरता हुआ होता है। सीमान्त लागत प्रारम्भ में गिरती है और जैसे जैसे उत्पादत की इकाईयाँ बढ़ती हैं तो सीमान्त लागत भी बढ़ती है।
3. फर्म के सन्तुलन की प्रथम शर्त होती है कि सीमान्त आगम (MR),सीमान्त लागत (MC) के बराबर होता है। यह साम्य बिन्दु E द्वारा दर्शाया गया है। उत्पादन मात्रा OQ पर लाभ अधिकतम होंगे।
4. यदि उत्पादन मात्रा OM होती है तब सीमान्त आगम (FM) सीमान्त लागत (GM) की तुलना में अधिक होता है इसलिए उत्पादक और अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित होता है। इस प्रकार फर्म और अधिक लाभ प्राप्त करने के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लिए उत्पादन में वृद्धि करती है। यह वृद्धि OQ उत्पादन स्तर तक होगी। लाभ क्षेत्र EFG होता है।

5. यदि उत्पादन का स्तर ON होता है, तब सीमान्त लागत (HN) सीमान्त लागत (IN) से अधिक होती है। इस स्थिति में फर्म को उत्पादन करने की हानि होती है (EHI)।

इस प्रकार फर्म का संतुलन E बिन्दु पर होता है जहां MC = MR होता है, OQ उत्पादन मात्रा निर्धारित होती है जिस पर लाभ अधिकतम होते हैं।

फर्म के संतुलन की दूसरी शर्त यह होती है कि MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटना चाहिए (पूर्ण प्रतियोगिता में आवश्यक)

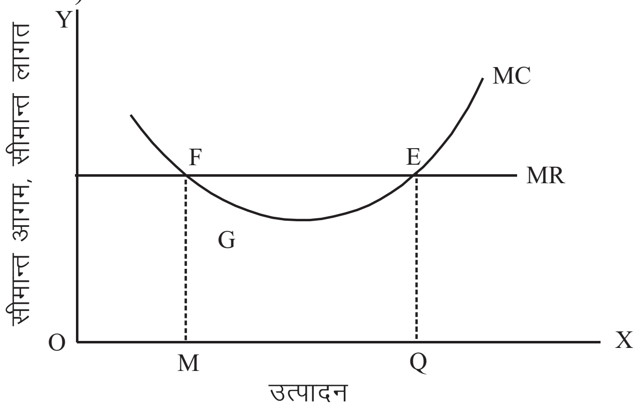

रेखाचित्र 10.3

चित्र की व्याख्या :

1. E बिन्दु पर सीमान्त आगम (MR) सीमान्त लागत (MC) के बराबर है। अर्थात MC = MR। पहली साम्य शर्त यहाँ पूरी होती है। दूसरी शर्त MC, MR वक्र को नीचे से काटना चाहिए भी पूरी होती है। इस तरह OQ उत्पादन मात्रा पर फर्म को अधिकतम लाभ अर्जित होते हैं। यह फर्म का संतुलन कहलाता है।
2. यदि फर्म उत्पादन मात्रा OM निर्धारित करती है तो प्रथम शर्त (MC = MR) F बिन्दु पर पूर्ण होती है। किन्तु दूसरी शर्त के अभाव में फर्म अधिकतम लाभ अर्जित नहीं कर सकती। क्योंकि F बिन्दु के बाद सीमान्त आगम (MC<MR) उत्पादन विस्तार से फर्म लाभ अर्जित करती है। F बिन्दु से पूर्व MC>MR अर्थात फर्म को हानि होगी।
3. इसी प्रकार E बिन्दु के बाद MC>MR हानि को दर्शाता है।

अतः फर्म का संतुलन OQ उत्पादन स्तर पर होता है जहाँ दोनों शर्तें पूर्ण होती हैं (i) MC = MR (ii) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है।

इस प्रकार दोनों विधियाँ फर्म का सन्तुलन करने में उपयोग की जाती हैं।

सीमान्त आगम सीमान्त लागत विधि श्रेष्ठ है क्योंकि सरलता से अधिकतम लाभ और उत्पादन मात्रा ज्ञात की जा सकती है। फर्म के औसत आगम और औसत लागत वक्रों का उपयोग करने पर प्रति इकाई कीमत भी ज्ञात की जा सकती है।

फर्म के संतुलन में ये विधियाँ सभी प्रकार के बाजारों में उपयोग में लाई जा सकती हैं। इनका विश्लेषण उत्पादक और उत्पादन दोनों ही दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1. फर्म संतुलन की स्थिति में तब होती है जब उत्पादक उत्पादन को बढ़ाने और घटाने की चेष्टा नहीं करता।
2. फर्म के संतुलन पर उत्पादक को अधिकतम लाभ अर्जित होते हैं।
3. फर्म के संतुलन की दो विधियां हैं : (i) TR और TC (ii) MR और MC
4. TR/TC विधि के अनुसार फर्म का संतुलन उस बिन्दु पर होता है जहां पर TR और TC में अधिकतम अन्तर (दूरी) होती है।
5. MR/MC विधि के अनुसार फर्म सन्तुलन की दो शर्तें होती हैं – (i) MR=MC (ii) MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटना चाहिए।
6. इन दोनों विधियों का उपयोग सभी प्रकार के बाजारों में फर्म/उद्योग के संतुलन की व्याख्या में किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. जब फर्म का कुल आगम (TR) कुल लागत (TC) से अधिक होता है, तो फर्म को प्राप्त होता है–
   (अ) असामान्य लाभ
   (ब) हानि
   (स) न लाभ न हानि
   (द) उपरोक्त में से कोई भी नहीं
2. समस्थिति बिन्दु होता है जहां :–
   (अ) MR=MC (ब)TR=TC
   (स) MR>MC (द) MR<MC
3. फर्म को हानि होती है जब :–
   (अ) MR=MC (ब) TR>TC
   (स) TR<TC (द) TR=TC
4. फर्म के संतुलन की प्रथम शर्त के अनुसार :–
   (अ) MR=MC (ब) MR>MC
   (स) MR<MC (द) MR#MC
5. फर्म उत्पादन मात्रा निर्धारित करती है जहां :–
   (अ) MR=MC और MC वक्र MR वक्र को नीचे से काटता है :–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ब) MR#MC
(स) MR>MC
(द) MR<MC

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. फर्म संतुलन से क्या तात्पर्य है ?
2. जिस बिन्दु पर TR=TC उसे क्या कहते है?
3. सीमान्त आगम का क्या अर्थ है?
4. कुल आगम कैसे ज्ञात होता है?
5. जब MR=MC होता है तो फर्म की कौनसी अवस्था होती है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. फर्म संतुलन की दोनों विधियों (TR/TR और MR/MC) में से कौनसी विधि श्रेष्ठ है और क्यों?
2. समस्थिति बिन्दु से आप क्या समझते हैं?
3. सीमान्त आय और सीमान्त लागत विधि में फर्म के सन्तुलन के लिए दो आवश्यक शर्तें कौन सी होती हैं?
4. कुल आगम और कुल लागत का क्या अर्थ है?
5. एक फर्म अधिकतम लाभ कैसे अर्जित करती है?

निबंधात्मक प्रश्न

1. फर्म के संतुलन से क्या तात्पर्य है? सीमान्त आगम व सीमान्त लागत विधि से चित्रों के द्वारा फर्म के संतुलन की व्याख्या कीजिए।
2. कुल आगम कुल लागत विधि का उपयोग करते हुए फर्म के संतुलन का चित्र की सहायता से समझाइए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	ब	स	अ	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 11

पूर्ण प्रतियोगी बाजार
(Perfect Competition Market)

सामान्यतः बाजार का आशय उस स्थान विशेष के लिये होता है, जहाँ क्रेता व विक्रेता एकत्र होकर वस्तुओं का परस्पर लेन–देन करते हैं किन्तु अर्थशास्त्र में बाजार का तात्पर्य अत्यन्त व्यापक है। बाजार का तात्पर्य उस सम्पूर्ण क्षेत्र से है जहाँ पर क्रेताओं व विक्रताओं में स्वतंत्र प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्बन्ध होते हैं। इस कारण वर्तमान युग में बाजार किसी क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित न होकर विस्तृत स्वरूप में परिलक्षित होता है। वस्तु या सेवा के क्रेता व विक्रेता विश्व के किसी भी क्षेत्र में निवास करते हों किन्तु फोन, मोबाईल, इन्टरनेट आदि माध्यमों द्वारा सम्पर्क में रहते हैं। उनका प्रत्यक्ष व्यक्तिगत सम्पर्क होना आवश्यक नहीं है।

क्रूनो – "बाजार शब्द का आशय किसी स्थान विशेष से नहीं लेते जहाँ वस्तुयें खरीदी व बेची जाती हैं बल्कि बाजार शब्द से उस समस्त क्षेत्र का बोध होता है जिसमें क्रेताओं व विक्रेताओं में वस्तु के मूल्य उस क्षेत्र में सुगमता एवं शीघ्रता से एक होने की प्रवृति रखते हैं।" स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र में बाजार शब्द का प्रयोग बहुत ही व्यापक अर्थ में किया जाता है।

बाजार के प्रकार –

वास्तविक जगत में हमें बाजार के अनेक स्वरूप दिखाई देते हैं जिसे अर्थशास्त्रियों ने निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है।

(1) क्षेत्र के अनुसार वर्गीकरण –

क्षेत्र के आधार पर बाजार को चार भागों में बाँटा जा सकता है–

(i) स्थानीय बाजार – किसी एक वस्तु के क्रेताओं व विक्रेताओं का विस्तार या फैलाव एक गाँव, शहर, उपनगर या बस्ती तक सीमित होता है। ऐसे बाजार को स्थानीय बाजार कहा जाता है। शीघ्रनाशी वस्तुओं का बाजार इस श्रेणी में आता है। जैसे फल, सब्जी, मांस, मछली, आदि का बाजार।

(ii) प्रादेशिक/क्षेत्रीय बाजार – जब किसी वस्तु का बाजार किसी क्षेत्र या अंचल विशेष तक सीमित रहता है तो उसे क्षेत्रीय बाजार कहा जाता है। जैसे मारवाड़ की पगड़ी, राजस्थान की चुनरी, लहँगा, जूतियाँ इत्यादि।

(iii) राष्ट्रीय बाजार – किसी वस्तु विशेष के क्रेताओं व विक्रेताओं का फैलाव सम्पूर्ण देश में होता है तो उस वस्तु का बाजार इस श्रेणी में आता है जैसे विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ, कपड़ा, आभूषण इत्यादि।

(iv) अन्तर्राष्ट्रीय बाजार – जब किसी वस्तु के क्रेताओं –विक्रेताओं का फैलाव केवल देश में ही नहीं बल्कि विश्व के विभिन्न देशों में भी होता है तो वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार कहलाता है जैसे जेम्स और ज्वेलरी, कच्चा तेल, इंजिनियरिंग मशीनें, एवं बहुराष्ट्रीय निगम द्वारा उत्पादित वस्तुऐं एवं सेवाएँ (फिलिप्स टोयटा, मारुति) इत्यादि का बाजार।

शॉपिंग मॉल –

आधुनिक समय में खुदरा एवं थोक बाजार के मध्य कीमतों के बड़े अन्तर का लाभ उठाते हुए कुछ देशी व विदेशी कम्पनियाँ एक ही छत के नीचे बड़ी मात्रा में विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का क्रय–विक्रय करती है जिन्हें हम 'शॉपिंग मॉल्स" (Shopping malls) के नाम से जानते हैं। जैसे बिग बाजार, रिलायन्स मार्ट, पतंजलि स्टोर आदि।

(2) वस्तुओं के आधार पर :–

बाजार का वर्गीकरण विक्रेताओं व क्रेताओं के कार्य की प्रकृति के आधार पर हो तो वह इस श्रेणी में आते हैं–

(i) सामान्य बाजार – जब एक ही बाजार में अनेक प्रकार की वस्तुओं का क्रय–विक्रय किया जाता है तो वह सामान्य बाजार कहलाता है। शहरों व गाँवों में विभिन्न वस्तुऐं सरलता से उपलब्ध हो जाती है। जैसे– खाद्यान्न, आभूषण, कपड़ा, पुस्तकें, सब्जियाँ, मशीनरी इत्यादि तथा बहुराशि निगमों जैसे फिलिप्स, टोयटो, मारुति द्वारा उत्पादित वस्तुएँ एवं सेवाऐं।

(ii) विशिष्ट बाजार – जब किसी बाजार में केवल विशिष्ट वस्तु का ही क्रय–विक्रय किया जाता है। तो वह विशिष्ट बाजार कहलाता है जैसे– सब्जी मण्डी, फल बाजार, आभूषण बाजार, किराना बाजार, लोहा मण्डी, कपड़ा बाजार, अनाजमण्डी इत्यादि।

(i) नमूने द्वारा बिक्री – जब वस्तुओं का क्रय–विक्रय प्रतिनिधि द्वारा नमूनों के माध्यम से किया जाता है तो उसे नमूनों द्वारा बिक्री कहा जाता है। आजकल कई कम्पनियों द्वारा इस प्रकार से विक्रय करने की पद्धति प्रचलित है। जैसे पुस्तक बाजार, धुलाई, सोडा, साबुन, इत्यादि की बिक्री संवर्धन हेतु सैम्पल ग्राहकों को निशुल्क उपलब्ध करवाये जाते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

ऑनलाइन मार्केट – वर्तमान समय में छोटे कस्बो से लेकर महानगरों तक लोग अपनी आम जरूरत की वस्तुओं को ऑनलाइन मार्केट के माध्यम से घर बैठे क्रय –विक्रय करते हैं। जैसे भारत में अमेजन, फिलप कार्ट, होम शॉप 18 आदि।

(iv) श्रेणी द्वारा बिक्री – खाद्यान्न, फलों व सब्जियों, वस्तुओं के श्रेणीकरण एवं प्रमापीकरण द्वारा वस्तुओं की क्वालिटी के निर्धारण होने से उसके आधार पर क्रय–विक्रय किया जाता है। जैसे इलैक्ट्रॉनिक्स उत्पादों के प्रमाणीकरण के लिए ISI, खाद्य पदार्थों के लिए FSSAI, कीमती धातुओं पर 'हॉलमार्क' द्वारा वर्गीकृत किया जाता है।

(3) बिक्री के आधार पर –

(i) खुदरा बाजार – इस बाजार में रोजमर्रा की सामान्य वस्तुओं का सीमित अथवा छोटी मात्रा में क्रय–विक्रय होता है अतः इस बाजार में बाजार भाव थोक बाजार की कीमतों से सामान्य रूप से अधिक होते हैं। उदाहरणार्थ जैसे मोहल्लों में स्थित किराने की दुकानें आदि।

(ii) थोक बाजार – खुदरा बाजार के विपरीत थोक बाजार में वस्तुओं की मात्रा थोक में खरीदी व बेची जाती है। इस कारण बाजार की सामान्य कीमतें न्यून होती हैं। प्रत्येक थोक बाजार में एक विशिष्ट उत्पाद का क्रय–विक्रय होता है जैसे सब्जी मण्डी, फल मण्डी, लोहा, सीमेंट, हार्ड वेयर इत्यादि।

(4) समयानुसार वर्गीकरण –

किसी वस्तु की पूर्ति के समय के आधार पर बाजार को चार वर्गो में विभाजित किया जाता है।–

(i) अति अल्पकालीन बाजार – वह बाजार जिसमें समयावधि अत्यन्त कम होने के कारण वस्तु की पूर्ति में कमी और वृद्धि नहीं हो सकती अर्थात पूर्ति पूर्णतया स्थिर रहती है। केवल वस्तु की माँग में परिवर्तन हो सकता है। ऐसे बाजार को अति अल्पकालीन कहा जाता है। शीघनाशक वस्तुओं का बाजार इसी श्रेणी में आता है। जैसे– दूध, फल, सब्जी, अण्डे आदि।

रेखाचित्र -A
अतिअल्पकालीन बाजार

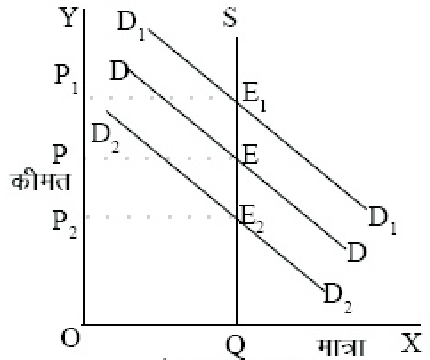

रेखाचित्र 11.1

उक्त रेखा चित्र 11.1 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। वस्तु की पूर्ति पूर्णतया स्थिर होने से पूर्तिवक्र SQ एक खड़ी रेखा के रूप में व्यक्त किया गया है। मांग वक्र DD तथा पूर्ति वक्र SQ दोनों E बिन्दु पर एक दूसरे के बराबर हैं अतः वस्तु की कीमत OP निर्धारित होती है। वस्तु की माँग बढने पर मांग वक्र उपर खिसक कर $D_1 D_1$ हो जाता है। जिससे मांग व पूर्ति का नया साम्य E_1 बिन्दु पर होने से वस्तु की कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है। इसके विपरीत वस्तु की मांग कम होने पर मांग वक्र नीचे खिसककर $D_2 D_2$ हो जाता है। मांग व पूर्ति का नया साम्य E_2 बिन्दु पर निर्धारित होंने से वस्तु की कीमत घटकर OP_2 रह जाती है। अतः अतिअल्पकालीन बाजार में वस्तु की पूर्ति स्थिर होने के कारण वस्तु की मांग ही कीमत को प्रभावित करती है।

(ii) अल्पकालीन बाजार – वह बाजार जिसमें समयावधि इतनी कम होती है कि वस्तु की पूर्ति में परिवर्तनशील साधनों की मात्रा में परिवर्तन करके कमी, वृद्धि की जा सकती है। इस बाजार में समय अवधि इतनी होती है कि उत्पादक विद्यमान क्षमता का पूर्ण उपयोग करके पूर्ति में परिवर्तन कर सकता है।

रेखाचित्र -B
अल्पकालीन बाजार

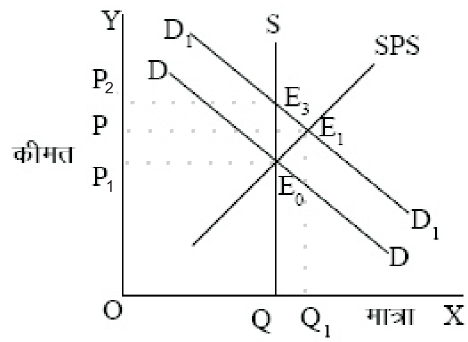

रेखाचित्र 11.2

रेखा चित्र 11.2 से स्पष्ट है कि प्रारम्भिक मांग वक्र DD तथा प्रारम्भिक पूर्ति वक्र SQ के साम्य बिन्दु पर कीमत OP का निर्धारण होता है। अल्पकाल में उत्पादक परिवर्तनशील साधनों में परिवर्तन करके पूर्ति में थोड़ी वृद्धि कर सकता है जिससे पूर्ति वक्र SPS हो जाता है अतः वस्तु की मांग बढ़ने पर मांग वक्र $D_1 D_1$ एवं पूर्ति वक्र SPS का साम्य E_1 बिन्दु पर हो जाता है जिससे वस्तु की कीमत बढ़कर OP_1 हो जाती है तथा वस्तु की पूर्ति भी OQ से बढ़कर OQ_1 हो जाती है। रेखाचित्र में SPS अति अल्पकालीन पूर्ति को दर्शाता है।

(iii) दीर्घ कालीन बाजार – जब समयावधि इतनी अधिक हो कि उत्पादक के लिए वस्तु की पूर्ति में मांग के अनुरूप परिर्वतन

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करना सम्भव हो तो वह बाजार दीर्घकालीन बाजार होता है। बाजार समयावधि पर्याप्त होने से उत्पादन के सभी साधनों में परिवर्तन सम्भव होता है जिससे मांग के अनुरूप पूर्ति को घटाया बढ़ाया जा सकता है। दीर्घकाल में समयावधि इतनी अधिक होती है कि उत्पादक स्थिर व परिवर्तनशील साधनों में वृद्धि करके वस्तु की पूर्ति को मांग के अनुरूप परिवर्तित कर सकता है।

रेखाचित्र -C दीर्घकालीन बाजार

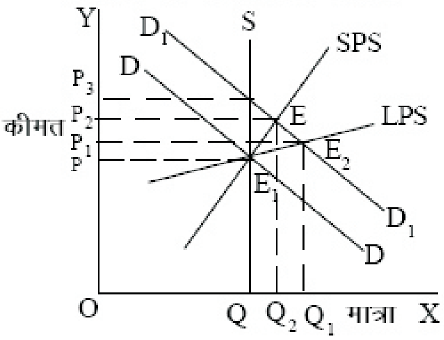

रेखाचित्र 11.3

रेखाचित्र 11.3 में वस्तु की प्रारम्भिक मांग D D वक्र द्वारा दर्शायी गयी है जबकि SPS अति अल्पकालीन पूर्ति, SPS को तथा LPS दीर्घकालीन पूर्ति को व्यक्त करता है। मांग व पूर्ति का प्रारम्भिक साम्य E बिन्दु पर निर्धारित होता है। जिससे प्रारम्भिक कीमत OP तथा वस्तु की मात्रा OQ निर्धारित होती है। दीर्घकाल में पूर्ति वक्र LPS तथा मांग वक्र $D_1 D_1$ के बीच साम्य E_2 बिन्दु पर निर्धारित होने के कारण वस्तु की कीमत बढ़कर OP_1 तथा साम्य मात्रा OQ_2 निर्धारित हो जाती है।

(iv) **अति दीर्घकालीन बाजार** – जब समयावधि इतनी अधिक हो कि पूर्ति एवं मांग दोनो पक्षों में दीर्घकालीन परिवर्तन हो जाते हैं। इसे दीर्घकालीन बाजार कहते हैं। नये उत्पाद, नयी प्रविधियाँ एवं नये आविष्कारों से पूर्ति पक्ष पूर्णतया परिवर्तित हो जाता है। उपभोक्ताओं के स्वभाव, रुचि, फैशन, जनसंख्या के आकार एवं संरचना में परिवर्तन हो जाने से मांग में भी परिवर्तन हो जाता है।

(4) प्रतियोगिता के आधार पर वर्गीकरण –

प्रतियोगिता के आधार पर बाजारों का वर्गीकरण निम्न तालिका द्वारा प्रस्तुत है–

(i) **पूर्ण प्रतियोगिता बाजार** – बाजार की वह अवस्था जहाँ वस्तु विशेष के क्रेता व विक्रेताओं की संख्या अत्यधिक होती है। इस बाजार में दोनों पक्षों को पूर्ण जानकारी होती है, जिससे बाजार में स्वतंत्र एवं पूर्ण प्रतिस्पर्द्धा विद्यमान रहती है। समस्त बाजार में वस्तु विशेष की एक ही कीमत प्रचलित होती है। यह एक काल्पनिक अवधारणा है।

(अ) पूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ –

बाजार का वह स्वरूप जिसमें क्रेताओं व विक्रेताओं की

तालिका 11.1

बाजार का रूप	फर्मो की संख्या	वस्तु का स्वभाव	व्यक्तिगत फर्म के लिये मांग की कीमत लोच
पूर्ण प्रतियोगिता	अत्यधिक	समरुप	अनन्त लोच e =
एकाधिकार	एक	कोई निकट की प्रतिस्थापन वस्तु नहीं	बहुत कम e < 1
एकाधिकारात्मक	अधिक	विभेदीकृत	अधिक e > 1
अल्पाधिकार	कुछ	समरूप अथपा विभेदकृत तालिका : 11.1	विकुचित स्वरुप में e > 1 e < 1

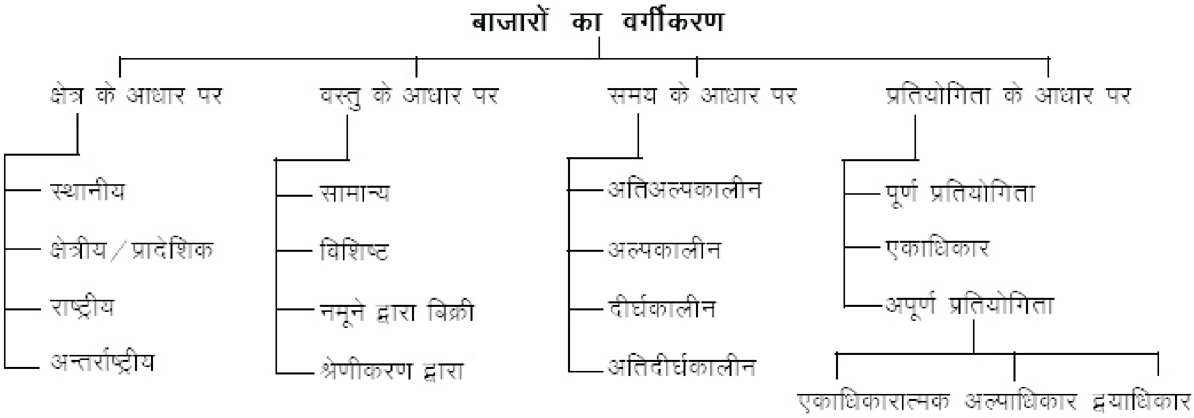

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अत्यधिक संख्या होने के कारण वस्तु विशेष की कीमत को कोई भी फर्म प्रभावित नहीं कर सकती है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में वस्तु की कीमत का निर्धारण उद्योग द्वारा की गई पूर्ति तथा मांग के साम्य द्वारा होता है। एक फर्म वस्तु की कीमत को प्रभावित नहीं कर सकती क्योंकि उसका कुल उत्पादन में योगदान अत्यन्त सूक्ष्म या नगण्य होता है।

श्रीमती जॉन रोबिन्सन के अनुसार – 'पूर्ण प्रतियोगिता तब प्रचलित होती है जबकि प्रत्येक उत्पादक के उत्पादन के लिये मांग पूर्णतया लोचदार होती है। इसका अर्थ है प्रथम, विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है जिससे किसी एक विक्रेता का उत्पादन वस्तु के कुल उत्पादन का बहुत थोड़ा अंश होता है तथा द्वितीय, सभी क्रेता प्रतिद्वन्दी विक्रेताओं के बीच चुनाव करने की दृष्टि से समान होते है, जिससे बाजार पूर्ण हो जाता है।'

उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत पर ही फर्म अपनी वस्तु बेच सकती है वह कीमत निर्धारित नहीं कर सकती। अर्थात एक फर्म का मांग वक्र पूर्णतया लोचदार या क्षैतिज होता है। स्पष्ट है कि पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की वह स्थिति कहलाती है जिसमें एक वस्तु विशेष के अनेक क्रेता–विक्रेता होने से उनमें इतनी गलाकाट प्रतियोगिता होती है कि सम्पूर्ण बाजार में वस्तु की एक ही कीमत प्रचलित होती है।

तालिका 11.2

माँग एवं पूर्ति की अनुसूची		
x वस्तु की कीमत (रुपये में)	x वस्तु की माँग (इकाईयां)	x वस्तु की पूर्ति (इकाईयां)
10	100	20
20	80	40
30	60	60
40	40	80
50	20	100

प्रतियोगिता बाजार में कई फर्में मिलकर उद्योग कहलाती है। एक उद्योग द्वारा निर्धारित कीमत को सभी फर्मों द्वारा स्वीकार करना पड़ता है इसीलिये फर्म को कीमत स्वीकार कर्ता (Price taker) तथा मात्रा समायोजक कहा जाता है।

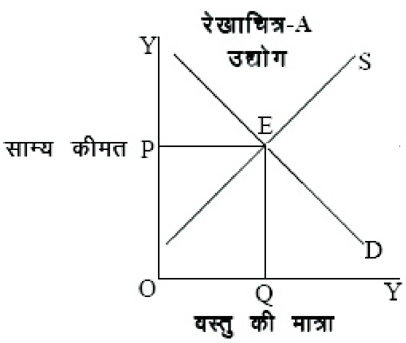

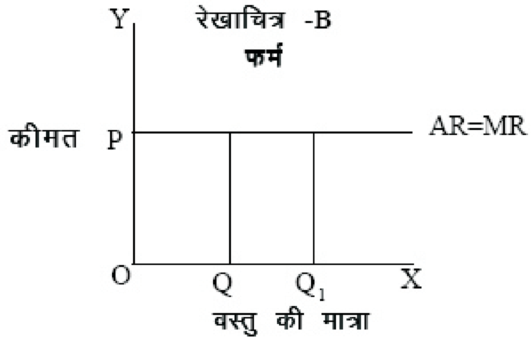

रेखाचित्र 11.4

उपरोक्त रेखाचित्र A से स्पष्ट है कि उद्योग में वस्तु की कुल मांग व कुल पूर्ति द्वारा साम्य कीमतों का निर्धारण होता है। निर्धारण कीमत को सभी फर्मो को स्वीकार करना पड़ता है। और इसी कीमत पर फर्म वस्तु की जितनी मात्रा चाहे बेच सकती है। रेखा चित्र B से स्पष्ट है कि फर्म OQ मात्रा OP कीमत पर बेचती है यही फर्म की औसत आगम (AR) है अतिरिक्त मात्रा OQ_1 भी OP कीमत पर ही बेची जाती है अतः फर्म की सीमान्त आगम MR तथा औसत आगम AR दोनों बराबर होती है।

तालिका 11.3

पूर्ण प्रतियोगिता में एक फर्म की औसत व सीमान्त आय

उत्पादन की इकाई	औसत आय या कीमत AR / P	कुल आगम TR	सीमान्त आगम MR
1	5	5	5
2	5	10	5
3	5	15	5
4	5	20	5
5	5	25	5

(अ) पूर्ण प्रतियोगिता की विशेषतायें: –

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की प्रमुख विशेषतायें निम्न हैं–

(i) क्रेताओं व विक्रेताओं की अत्यधिक संख्या – पूर्ण प्रतियोगी बाजार में क्रेताओं और विक्रेताओं की संख्या अत्यधिक होती है इसलिये कोई भी अकेला क्रेता या विक्रेता वस्तु की माँग या पूर्ति को प्रभावित नहीं कर सकता। सम्पूर्ण बाजार में एक क्रेता या विक्रेता का योगदान नगण्य होने से उसके व्यक्तिगत निर्णय से बाजार अप्रभावित रहता है।

(ii) समरूप **(Homogenous)** वस्तु का उत्पादन – पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में सभी फर्मों द्वारा उत्पादित वस्तुएँ समरूप होती है। उसमें रंग, रूप, आकार–प्रकार, डिजाईन, गुणवता, पैकिंग, ट्रेडमार्क आदि में समानता से किसी क्रेता का वस्तु विशेष के लिये कोई अधिमान नहीं होता। एक वस्तु को पूर्ण रूप से दूसरी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वस्तु के लिये प्रतिस्थापित किया जा सकता है अर्थात माँग की तिरछी लोच शून्य होती है।

(iii) प्रवेश व बहिर्गमन की स्वतंत्रता – पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत दीर्घकाल में उद्योग में नई फर्मों को उद्योग से आगमन और बहिर्गमन करने की स्वतन्त्रता होती है। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में दीर्घकाल में फर्मों को केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है। अल्पकाल में फर्मों को असामान्य लाभ प्राप्त होने से नयी फर्मों का आकर्षित होकर उद्योग में प्रवेश करेगी जबकि अल्पकाल में फर्मों को हानि होने पर ऐसी फर्म उद्योग से बहिर्गमन करेगी। स्पष्ट है कि फर्मों के प्रवेश व बहिर्गमन की स्वतन्त्रता होने से प्रत्येक फर्म को दीर्घकाल में केवल सामान्य लाभ ही प्राप्त होता है।

(iv) साधनों की पूर्ण गतिशीलता –पूर्ण प्रतियोगी बाजार में उत्पादन के साधनों में पूर्ण गतिशीलता होती है अर्थात साधन एक उद्योग से दूसरे उद्योग में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान में पूर्ण गतिशील होते हैं। अतः उत्पत्ति का प्रत्येक साधन अपने सर्वोतम प्रयोग में रहकर अधिकतम पारिश्रमिक प्राप्त करता है।

(v) क्रेता और विक्रेता को बाजार की पूर्ण जानकारी **(Perfect knowledge of buyers and Sellers)** – पूर्ण प्रतियोगिता के अन्तर्गत क्रेताओं व विक्रेताओं को बाजार की स्थिति का पूर्ण ज्ञान होता है। क्रेताओं व विक्रेताओं में निकट सम्पर्क होने से प्रचलित मूल्य की जानकारी होती है, इसीलिये कोई भी विक्रेता अधिक मूल्य नहीं ले सकता यदि विक्रेता ऐसा करे तो या तो क्रेता उसे छोड़कर अन्य विक्रेताओं के पास चले जायेंगे यही कारण है कि वस्तु का एक ही मूल्य सम्पूर्ण बाजार में प्रचलित होता है।

(vi) परिवहन लागतों की अनुपस्थिति **(Transport cost is ignored)** – पूर्ण प्रतियोगिता बाजार में क्रेता व विक्रेता इतने समीप होते हैं कि वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाने या ले जाने की कोई लागत नहीं होती है अर्थात परिवहन लागत शून्य होती है। अतः वस्तु की कीमत समान रहने की प्रवृति होती है। परिवहन लागतों की अनुपस्थिति के कारण ही पूर्ण प्रतियोगिता की कल्पना की जा सकती है यदि बाजार में परिवहन लागते विद्यमान है तो वस्तु की कीमत समरूप नहीं रह पायेगी।

(vii) फर्म **(Price Taker and Quantity Adjuster)** – कीमत ग्राही एवं मात्रा समायोजक होती है। फर्में उद्योग द्वारा निर्धारित कीमतों को स्वीकार कर चाहे जितनी मात्रा में विक्रय कर सकती है।

(viii) गला काट प्रतियोगिता **(Cut throat competition)** – इस बाजार के विक्रेताओं में प्रतिर्स्पद्धा पाई जाती है जिससे अर्थशास्त्र में ''गला काट प्रतियोगिता'' अवधारणा के नाम से जाना जाता है।

पूर्ण प्रतियोगिता एक काल्पनिक अवधारणा है

पूर्ण प्रतियोगिता बाजार की उपरोक्त विशेषताओं को जानने के बाद यह स्पष्ट है कि वास्तविक जीवन में उक्त दशायें दिखाई नहीं देती हैं उनमें कोई न कोई विचलन अवश्य होता है। ये दशायें आर्दशतम स्थिति को दर्शाती है जो वास्तविक व व्यावहारिक जगत में दिखाई नहीं देती है। यही कारण है कि उक्त दशाओं की वास्तविक अनुपस्थिति होने से बाजार में क्रेताओं/विक्रेताओं में प्रतियोगिता पूर्ण नहीं होती है। इसिलिये पूर्ण प्रतियोगिता बाजार एक काल्पनिक अवधारणा है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

अर्थशास्त्र में बाजार का आशय क्षेत्र विशेष से न होकर क्रेताओं व विक्रेताओं के प्रतिस्पर्द्धात्मक सम्बन्ध से होता है।

अति अल्पकालीन बाजार में वस्तु की पूर्ति पूर्णतया स्थिर होने से माँग से ही कीमत प्रभावित होती है। अतिदीर्घकालीन बाजार में माँग व पूर्ति की कल्पना वर्तमान में नहीं की जा सकती।

पूर्ण प्रतियोगी बाजार में फर्म कीमत ग्राही और मात्रा समायोजक होती है।

एक प्रतियोगी फर्म का माँग वक्र एक पूर्णतया लोचदार या क्षैतिज रेखा के रूप में होता है।

प्रतियोगी बाजार में क्रेता या विक्रेता का वस्तु के क्रय विक्रेय में बहुत सूक्ष्म या नगण्य योगदान होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. शीघ्रनाशी वस्तुओं का बाजार होता है:–
   (अ) राष्ट्रीय (ब) अन्तर्राष्ट्रीय
   (स) स्थानीय (द) प्रादेशिक
2. प्रतियोगी बाजार में वस्तु की कीमत का निर्धारण कैसे होता है :–
   (अ) विक्रेता द्वारा
   (ब) माँग व पूर्ति के साम्य द्वारा
   (स) सरकार द्वारा
   (द) वित्तमंत्री द्वारा
3. प्रतियोगी बाजार में दीर्घकाल में फर्मों को प्राप्त होता है:–
   (अ) असामान्य लाभ (ब) हानि
   (स) सामान्य लाभ (द) शून्य लाभ
4. क्रेताओं व विक्रेताओं की संख्या किस बाजार में अत्यधिक (असंख्य) होती है:–
   (अ) अल्पाधिकार
   (ब) पूर्ण प्रतियोगी बाजार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(स) एकाधिकारात्मक प्रतियोगी बाजार
(द) द्वयाधिकर

5. 'राजस्थानी चुनरी' का बाजार कहलाएगा:–
(अ) अन्तर्राष्ट्रीय (ब) राष्ट्रीय
(स) प्रादेशिक (द) स्थानीय

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. 'बाजार' शब्द को परिभाषित कीजिये।
2. 'विशिष्ट बाजार' के कोई दो उदाहरण दीजिये।
3. ऑनलाइन बाजार से आप क्या समझते है?
4. पूर्ण प्रतियोगी बाजार की कोई दो विशेषतायें लिखिये।

लघूत्तरात्मक प्रश्नः–

1. खुदरा बाजार एवं थोक बाजार में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
2. अति अल्पकालीन बाजार से आप क्या समझते है?रेखाचित्र द्वारा स्पष्ट करो।
3. समय के आधार पर बाजार को वर्गीकृत कीजिये।
4. पूर्ण प्रतियोगी बाजार से आप क्या समझते है?स्पष्ट कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. पूर्ण प्रतियोगी बाजार की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
2. प्रतियोगी बाजार में उद्योग का कीमत निर्धारण एक उपयुक्त रेखचित्र की सहायता से स्पष्ट कीजिये।
3. निम्न तालिका में कुल आगम और सीमान्त आगम ज्ञात कीजिये–

वस्तु की इकाई	औसत आगम AR	कुल आगम TR	सीमान्त आगम MR
1	8	–	–
2	8	–	–
3	8	–	–
4	8	–	–
5	8	–	–
6	8	–	–

4. "पूर्ण प्रतियोगिता एक काल्पनिक अवधारणा है।" व्याख्या कीजिये।?

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
स	ब	स	ब	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 12

बाजार के अन्य स्वरुप
(Other Forms of Markets)

पिछले अध्याय में हमने बाजार के विभिन्न स्वरूपों के बारे में जानकारी प्राप्त की। पूर्ण प्रतियोगिता बाजार का अर्थ और उसकी प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम एकाधिकारी बाजार के साथ एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अल्पाधिकारी बाजार का अध्ययन करेंगे। एकाधिकारी बाजार पूर्ण प्रतियोगिता के विपरीत होता है। इसका अध्ययन अपूर्ण बाजार (एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता अथवा अल्पाधिकार) की कार्य प्रणाली के समझने में सहयोगी होता है। इस अध्याय में एकाधिकार एवं अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ एवं विशेषता का वर्णन किया गया है।

एकाधिकार (Monopoly)

एकाधिकार बाजार की वह स्थिति है जब उत्पादक ऐसी वस्तु का उत्पादन करता है जिसकी कोई निकटतम प्रतिस्थापक वस्तु उपलब्ध नहीं होती है। केवल एक विक्रेता अथवा उत्पादक होता है।

अर्थशास्त्रियों ने एकाधिकार को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है।

स्टोनियर एवं हेग के अनुसार "एकाधिकार वह उत्पादक होता है जो कि किसी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण अधिकार रखता है तथा उस वस्तु की कोई निकटतम स्थानापन वस्तु नहीं होती।"

प्रो लर्नर के अनुसार "एकाधिकार उस विक्रेता को कहते हैं जिसकी वस्तु की मांग का वक्र गिरता हुआ होता है अर्थात् उसकी पूर्ति का विक्रय वक्र लोचहीन होता है।"

प्रो चैम्बरलिन के अनुसार "एकाधिकारी वह होता है जो सामान्यतः किसी वस्तु की पूर्ति पर पूर्ण नियंत्रण रखता है और वह अधिकांश मामलों में पूर्ति का संचालन न कर मूल्य का संचालन करता है।

एकाधिकार की विशेषताएँ

1. एकाधिकार बाजार में केवल एक विक्रेता, एक उत्पादक अथवा एक पूर्तिकर्त्ता होता है।
2. ऐसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है, जिसकी कोई निकट स्थानापन्न वस्तु नहीं होती है।
3. मांग की प्रतिलोच (cross elasticity of demand) बहुत कम होती है।
4. एकाधिकार फर्म स्वयं उद्योग होती है, अर्थात् उद्योग और फर्म में कोई अन्तर नहीं होता है।
5. वस्तु का मांग वक्र नीचे दाएँ झुकाव वाला होता है, यह इस तथ्य को इंगित करता है कि एकाधिकारी वस्तु की अधिक मात्रा कम कीमत पर ही बेच सकता है। इस प्रकार एकाधिकारी का MR **वक्र** AR(D) वक्र के नीचे स्थित होता है।
6. एकाधिकारी कीमत और पूर्ति मात्रा दोनों में से कोई एक को निर्धारित कर सकता है। एक समय में कीमत और उत्पादन दोनों पर नियंत्रण करना संभव नहीं होता। एकाधिकारी अगर वस्तु की कीमत निर्धारित कर देता है तो उसके उत्पादन का स्तर उपभोक्ताओं की मांग द्वारा निर्धारित होता है।
7. एकाधिकारी का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है।
8. उद्योग में प्रवेश के लिए बड़ी रूकावटें अथवा अवरोध होते हैं।

ये अवरोध कृत्रिम, संस्थागत, आर्थिक अथवा वित्तीय हो सकते हैं। इनको हम सरल उदाहरण द्वारा समझ सकते हैं।

कभी–कभी उत्पाद विभेदीकरण इतना प्रभावशाली होता है कि उपभोक्ता वस्तु की उसके ब्रान्ड से पहचान करता है। वित्तीय अवरोध जैसे फर्म की वित्त प्रबन्ध करने में असमर्थता, क्योंकि उद्योग में अत्यधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। संस्थागत प्रतिबन्ध में जैसे सरकार कई फर्मों को पैटेन्ट (लाइसेंस) का निर्गमन करती है, जो लम्बे समय के लिए होता है, फर्म उस अवधि में उत्पादन कर सकती है। सरकार द्वारा डिग्री अथवा लाइसेंस प्रदान किया जाता है जैसे एक अध्यापक बिना मैडिकल डिग्री के चिकित्सक का कार्य नहीं कर सकता। आर्थिक कारण भी उद्योग में प्रवेश के लिए बड़ी रुकावटें बनते है, जैसे बढ़ते पैमाने के प्रतिफल प्राप्त होने पर एक फर्म की औसत लागत घटती जाती है, इसी कारण कई सार्वजनिक उपयोगिता वाली वस्तुएँ जैसे बिजली, पानी, टेलिफोन आदि में एकाधिकार देखने को मिलता है।

एकाधिकार के स्रोत

बाजार में एकाधिकारी स्थिति उत्पन्न होने के कई कारण हो सकते है। इसका प्रमुख कारण है कि नई फर्मों के प्रवेश पर विकट रुकावटें होती हैं। इन रुकावटों के लिए तीन महत्वपूर्ण कारक उत्तरदायी होते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- महत्वपूर्ण कच्चा माल, जो कि उत्पादन प्रक्रिया के लिए आवश्यक है, पर उत्पादक का पूर्ण नियंत्रण होता है।
- सरकार द्वारा एक फर्म को अपनी वस्तु बनाने और विक्रय करने का पेटेंट अधिकार देना।
- एक फर्म पैमाने की बढ़ती मितव्ययिताओं के कारण समस्त उत्पादन दूसरी फर्मों की तुलना में कम लागत पर करती है।

उपरोक्त वर्णन अपूर्ण एकाधिकार अथवा साधारण एकाधिकार को बताता है। विशुद्ध (pure) एकाधिकार बाजार में फर्म ऐसी वस्तु का उत्पादन करती है जिसकी कोई स्थानापन्न वस्तु नहीं होती और दूसरी वस्तुओं के साथ स्थानापन्न मांग की प्रतिलोच शून्य होती है। इसके अतिरिक्त फर्म इतनी शक्तिशाली होती है कि उपभोक्ता अपनी सम्पूर्ण आय उसके द्वारा उत्पादित वस्तु पर खर्च करता है। परिणामस्वरूप औसत आगम वक्र (AR) आयाताकार अति परवलय (Rectangular hyperbola) होता है। व्यवहार में यह स्थिति सम्भव नहीं होती। अतः अपूर्ण एकाधिकार को ही अध्ययन में लिया जाता है।

भारत में एकाधिकार के कुछ उदाहरण है जैसे भारतीय रेलवे, राज्य विद्युत निगम, सरकार का नाभिकीय (Nuclear) उत्पादन पर अधिकार आदि।

एकाधिकार में औसत आगम, सीमांत आगम वक्र

एकाधिकारी ऐसी वस्तु का एकमात्र विक्रेता होता है। जिसकी कोई निकट प्रतिस्थापन वस्तु नहीं होती है। अतः मांग वक्र ऋणात्मक ढाल लिए होता है अर्थात् वस्तु की अधिक इकाई के विक्रय करने के लिए उसे वस्तु की कीमत को कम करना पड़ता है। परिणामस्वरूप सीमान्त आगम औसत आगम की अपेक्षा अक्ष दुगनी दर से नीचे X अक्ष पर गिरता हुआ होता है। दोनों वक्र लम्बवत अक्ष पर एक ही बिन्दु पर प्रारम्भ होते है। इसको एक सरल सारणी एवं चित्र द्वारा दर्शाया गया है।

तालिका 12.1

एकाधिकार बाजार में आगम वक्र

कीमत (1)	मात्रा (2)	कुल आगम (3)	सीमान्त आगम (4)
9	0	0	—
8	1	8	8
7	2	14	6
6	3	18	4
5	4	20	2
4	5	20	0
3	6	18	–2
2	7	14	–4
1	8	8	–6

तालिका 12.1 में कुल आगम (कालम 3) को प्राप्त करने के लिए कीमत और मात्रा (कालम 1 और कालम 2) को गुणा करके प्राप्त किया जाता है। (कालम 4) सीमान्त आगम में परिवर्तन कुल आगम को कुल मात्रा में परिवर्तन से भाग देने पर प्राप्त किया जाता $\left(\frac{\Delta TR}{\Delta Q}\right)$ है।

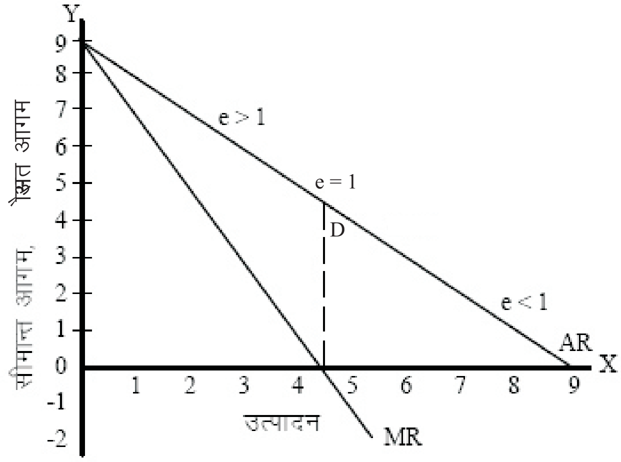

रेखाचित्र 12.1

चित्र 12.1 में MR और AR दोनों लम्बवत अक्ष के एक ही बिन्दु से प्रारम्भ होते हैं। MR वक्र, औसत आगम और लम्बवत अक्ष के मध्य में दोनों से समान दूरी बनाते हुए गुजरता है। सीमान्त आगम को उत्पादन के मध्य बिन्दुओं पर अंकित किया जाता है क्योंकि यह कुल आगम और मात्रा में परिवर्तन को बताता है। जब औसत आगम लोचदार होता है तो सीमान्त आगम धनात्मक होता है क्योंकि मात्रा में वृद्धि कुल आगम में वृद्धि करती है। औसत आगम (D) की मध्य बिन्दु पर मांग की लोच एक के बराबर होती है, तो सीमान्त आगम शून्य हो जाता है। क्योंकि उत्पादन की मात्रा में वृद्धि कुल आगम को प्रभावित नहीं करती है। जब औसत आगम बेलोच होता है तो सीमांत आगम ऋणात्मक हो जाता है क्योंकि उत्पादन मात्रा में वृद्धि कुल आगम में कमी लाती है। इसलिए उत्पादक इस स्थिति में उत्पादन नहीं करता है। वह कम उत्पादन और ऊँची कीमत पर विक्रय कर अपने कुल आगम को अधिकतम करने का प्रयास करता है। दूसरी तरफ कम उत्पादन पर लागत भी कम होती है। इस प्रकार वह अपने लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करता है।

एकाधिकार बाजार में कीमत और उत्पादन का निर्धारण कुल लागत एवं कुल आगम विधि और सीमान्त आगम एवं सीमान्त लागत विधि द्वारा किया जाता है। अल्पकाल में एकाधिकारी को सामान्य लाभ, अतिरिक्त लाभ अथवा हानि भी हो सकती है। लेकिन दीर्घकाल में एकाधिकारी केवल अतिरिक्त लाभ ही प्राप्त करता है। एकाधिकारी अपने लाभ में वृद्धि करने के लिए कीमत विभेद भी करते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कीमत विभेद –

प्रो. स्टिगलर के अनुसार 'कीमत विभेदीकरण का अर्थ है कि तकनीकी दृष्टि से समरुप पदार्थों को इतनी भिन्न–भिन्न कीमतों पर बेचना जो उनकी सीमान्त लागतों के अनुपात में कही अधिक है।'

अपूर्ण प्रतियोगिता –

श्रीमती जॉन रॉबिन्सन द्वारा लिखित पुस्तक 'अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थशास्त्र' और प्रो.ई.एच.चैम्बरलिन द्वारा लिखित पुस्तक 'एकाधिकारिक प्रतियोगिता का सिद्धान्त' बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें वास्तविक जगत के निकट पाई जाने वाली बाजार स्थितियों का वर्णन किया गया है। अपूर्ण प्रतियोगिता में पूर्ण प्रतियोगिता और एकाधिकार बाजार की विशेषताओं का आंशिक समावेश होता है। अपूर्ण प्रतियोगिता में एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता, अल्पाधिकार एवं द्वयाधिकार बाजारों की संरचना का अध्ययन किया जाता है।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता –

प्रो.चैम्बरलिन के अनुसार : "एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की धारणा अर्थशास्त्र की परम्परागत विचारधारा है और व्यक्तिगत कीमतों की या तो प्रतियोगिता के अन्तर्गत या एकाधिकार के अन्तर्गत व्याख्या की जाती है। परन्तु इसके विपरीत मेरे विचार में अधिकांश आर्थिक अवस्थाएँ प्रतियोगिता और एकाधिकार का मिश्रण होती है।"

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता दो चरम सीमा बाजारों की मध्यस्थ अवस्था है। यह वास्तविक जगत के अधिक निकट है। इसकी निम्नलिखित विशेषताओं के द्वारा बाजार संरचना को और गहनता से समझा जा सकता है।

विशेषताएँ–

1. फर्मों की संख्या अधिक– एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में फर्मों अथवा विक्रेताओं की संख्या अधिक होती है। किन्तु उनका आकार बहुत छोटा होता है इस कारण से कुल उत्पादन प्रभावित नहीं होता है। वे सभी स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं?विक्रय मात्रा और विक्रय नीति का एक दूसरे पर प्रभाव नहीं पड़ता। छोटे आकार के कारण इनकी पूंजी की आवश्यकता भी बहुत कम होती है। उत्पादन तकनीक सरल होती है। पैमाने की बचत सीमित होती है। अर्थशास्त्र में खुदरा बाजार (रिटेल) और सेवा क्षेत्र में यह बाजार संरचना अधिकाधिक देखने को मिलती है। राष्ट्रीय स्तर पर सूती वस्त्र उद्योग खाद्य प्रक्रिया, बिजली उपकरण आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। यह बाजार संरचना स्थानीय बाजारों में भी दृष्टिगोचर होती है जैसे फुटकर व्यापारी, पैट्रोल, स्टेशन, अखबार की दुकान, भोजनालय आदि।

2. विभेदीकृत वस्तुएँ –

पूर्ण प्रतियोगिता की भांति न तो ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जिनका पूर्ण स्थानापन्न हो सकता है, न ही एकाधिकार बाजार के भांति ऐसी वस्तुएं उत्पादित होती हैं जिनकी कोई स्थानापन्न वस्तुएँ नहीं हो।

एकाधिकारात्मक बाजार में ऐसी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जिनकी निकटतम स्थानापन्न वस्तुएं होती हैं। वस्तुएं समरूप होती हैं किन्तु बिल्कुल समान (identical) नहीं होती हैं।

i. वस्तु के रंग, आकार, गुणवत्ता, पैकिंग आदि तरीकों से वस्तु में विभिन्नता लाई जाती है।

ii. पेटेंट अधिकार एवं ट्रेड मार्क द्वारा भी वस्तु विभेद किया जाता है। भारत में कुछ मुख्य कम्पनी जिन्हें पेंटेट प्राप्त है जैसे डेल (Dell) उत्पादन, हिंदुस्तान यूनिलीवर लिमिटेड, रिलान्यस उद्योग लिमिटेड आदि। इसी प्रकार दन्त मंजन में विभिन्न ट्रेड मार्क जैसे पतंजलि, कोलगेट, पामोलिव और क्लोज़अप आदि के उत्पादकर्ता हैं।

iii. विज्ञापन एवं प्रचार के माध्यम से – आज का युग विज्ञापन का युग कहलाता है। वस्तु में भिन्नता प्रदान करने में विज्ञापन की बहुत अहम् भूमिका होती है। यह विक्रय बढ़ाने के लिए किया जाता है। विज्ञापन उपभोक्ता को सूचना प्रदान करने के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक रूप से भी प्रभावित करते हैं।

iv. कार्यकौशल और साख सुविधाओं के अन्तर के द्वारा भी वस्तुओं में विभेदीकरण किया जाता है।

इस प्रकार वस्तु विभेदीकरण एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की महत्वपूर्ण विशेषता है जो माँग को सापेक्षतया लोचदार बनाती है ($e>1$)। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उत्पादक को अपनी विशिष्ट वस्तु के उत्पादन पर एकाधिकार शक्ति प्राप्त होती है यद्यपि यह बहुत सीमित होती है।

3. फर्मों का प्रवेश एवं बहिर्गमन –

फर्मों का आकार छोटा होने के कारण उनको कम पूंजी सरल तकनीक की आवश्यकता होती है। इसके कारण समूह (Group) में प्रवेश सरलता से कर सकती है। हानि की स्थिति में समूह को छोड़ भी सकती है।

4. बाजार में कई फर्मों को समूह कहते हैं। उद्योग के स्थान पर समूह शब्द का प्रयोग किया जाता है। उद्योग में वस्तुओं का उत्पादन समरूप होता है। एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में उत्पादन यद्यपि समरूप होता है पर पूर्ण स्थानापन्न नहीं होता है। इसलिए 'समूह' शब्द का प्रयोग होता है।

5. विक्रय लागतों में भिन्नता पाई जाती है। यह भी बाजार संरचना की एक महत्वपूर्ण विशेषता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

6. गैर कीमत प्रतियोगिता भी एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की एक प्रमुख विशेषता है। वस्तुओं की कीमतें यथा स्थिर रहने पर उपहार योजना, निशुल्क मरम्मत सुविधा आदि विक्रय तकनीक का उपयोग किया जाता है।

औसत और सीमान्त आगम वक्र

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता में कीमत में कमी या वृद्धि मांग को अधिक प्रभावित करती है। निकट स्थानापन्न वस्तुओं के कारण वस्तु की कीमत में वृद्धि होने पर उपभोक्ता उसके स्थान कम कीमत वाली वस्तु क्रय करता है। अतः मांग सापेक्षतया लोचदार होती है (e>1)। किसी कीमत पर वस्तु की मांग कितनी होगी, वह स्थानापन्न वस्तुओं की कीमत, विज्ञापन, रुचि, फैशन, और, उपभोक्ता की आय द्वारा प्रभावित होती। वक्र का ढाल कम प्रपाती होता है। चित्र 12.2 AR और MR वक्र को दर्शाता है।

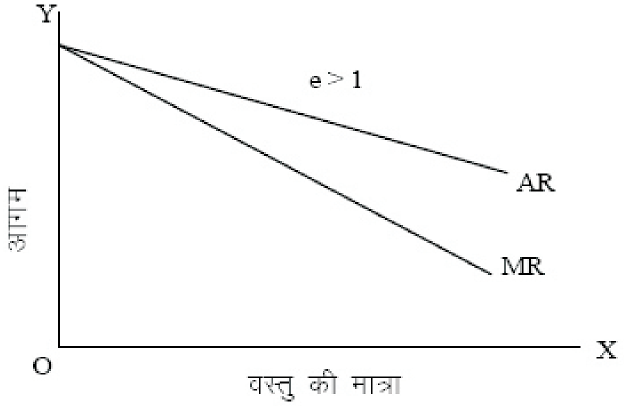

रेखाचित्र 12.2

इस प्रकार फर्म के औसत आगम वक्र की लोच निम्नलिखित घटकों पर निर्भर करती है:–

(अ) फर्मों के मध्य वस्तु विभेदीकरण अर्थात वस्तुओं में भिन्नता का अंश कितना है।

(ब) उपभोक्ता की वरीयताएँ,

(स) समूह में फर्मों की संख्या।

एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की अवधारणा का महत्व कम होता जा रहा है। इस बाजार संरचना में कौनसी फर्मों के उत्पाद को शामिल किया जाए, महत्वपूर्ण ब्रान्ड वाली फर्मे कुछ ही होती है जिन्हें अल्पाधिकार बाजार संरचना में रखना अधिक उपयुक्त होता है। वस्तुओं में कभी कभी बहुत ही कम विभेद पाया जाता है। किन्तु आलोचनाओं के बावजूद भी यह एक महत्वपूर्ण और वास्तविक बाजार संरचना है जो अल्पाधिकार बाजार के अध्ययन में बहुत सहायक होती है।

अल्पाधिकार –

अल्पाधिकार बाजार संरचना का वह रूप है जिसमें विक्रेताओं की संख्या थोड़ी होती है। वे समरूप एवं विभेदीकृत दोनों प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते है। यदि एक वस्तु के केवल दो ही विक्रेता होते हैं तो उसे द्वयाधिकार (Duopoly) कहा जाता है, यह अल्पाधिकार का सबसे सरल रूप होता है।

भारत में वाहन (automobile) सीमेन्ट, स्टील एवं एल्यूमीनियम (aluminium) आदि अल्पाधिकार बाजार संरचना के कुछ विशिष्ट उदाहरण हैं।

आधार	प्रकार	विशेषताएँ
वस्तु विभेद	पूर्ण अल्पाधिकार अपूर्ण अल्पाधिकार	फर्मे समरुप वस्तुओं का उत्पादन करती हैं। फर्मे विभेदीकरण वस्तु का उत्पादन करती हैं।
सहमति	कपटपूर्ण संधि गैर कपटपूर्ण संधि	फर्मे मिलकर कीमत एवं उत्पादन का निर्धारण करती है। फर्मों के मध्य किसी प्रकार का भी समझौता नहीं होता।
प्रवेश करने की स्वतंत्रता	खुला अल्पाधिकार बन्द अल्पाधिकार	बाजार की वह स्थिति जब फर्मे उद्योग में प्रवेश कर सकती है। जब उद्योग में फर्मों के प्रवेश करने की स्वतंत्रता नहीं होती।
समन्वय	व्यवसायी संघ अल्पाधिकार संगठित अल्पाधिकार	वस्तुओं का विक्रय केन्द्रीयकृत व्यवसायी संघ द्वारा होता है। जब फर्मे कीमतें, उत्पादन मात्रा को निर्धारित करने हेतु स्वयं को संगठित करती है।
कीमत नेतृत्व	आंशिक पूर्ण	अपूर्ण उद्योग में कीमत निर्धारण एक बड़ी फर्म द्वारा किया जाता है जिसे कीमत नेतृत्वकर्ता फर्म कहते हैं। सभी फर्मों में परस्पर निर्भरता रहती है। एक दूसरे की कीमत उत्पादन नीति से प्रभावित होती हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कई फर्में प्रतिस्पर्धा से मुक्त होने के कारण संगठित होना लाभप्रद समझती हैं और विलय होने पर अल्पाधिकार का रूप ले लेती है। बहुत अधिक निवेश के कारण भी कुछ बड़ी फर्में ही उत्पादन में क्रियाशील रहती हैं। बड़े पैमाने के प्रतिफल प्राप्त होने पर भी कुछ फर्मों का आकार बड़ा हो जाता है।

अल्पाधिकार की विशेषताएं

1. पारस्परिक निर्भरता (Interdependence) – विक्रेताओं की संख्या कम होने से परस्पर निर्भरता पाई जाती है। कुल उत्पादन में प्रत्येक फर्म का बड़ा हिस्सा होता है अतः वह बाजार में उत्पादन एवं कीमत को प्रभावित करने में सक्षम होती हैं। एक फर्म की कीमत नीति, विक्रय शैली, उत्पादन नीति, विज्ञापन, उत्पाद का प्रकार आदि उद्योग में अन्य सभी फर्मों को प्रभावित करती है। यदि कोई फर्म कीमत कम करके विक्रय मात्रा बढ़ाना चाहती है, तो इससे अन्य फर्मों पर कीमत कटौती की क्या प्रतिक्रिया होगी?क्या वह भी कीमत कम करेगी?क्या विज्ञापन व्यय अधिक करेगी?क्या वस्तु की गुणवत्ता में परिवर्तन करेगी?आदि जैसे प्रश्नों को सुनिश्चित करने के पश्चात् ही फर्म को कीमत नीति का निर्धारण करना पड़ता।

2. प्रतियोगिता – अल्पाधिकार में अल्प विक्रेता एक दूसरे से प्रभावित होते हैं। प्रत्येक फर्म प्रतिद्वंद्वी फर्म की चालों पर निगरानी रखती है और प्रतिवार हेतु तैयार रहती है। वास्तविक प्रतियोगिता इस बाजार संरचना में परिलक्षित होती है।

3. विज्ञापन – प्रो बामोल के अनुसार "अल्पाधिकार में विज्ञापन जीवन एवं मृत्यु का विषय बन सकता है।" फर्मों की परस्पर निर्भरता के कारण कुल उत्पादन में प्रत्येक फर्म अपना हिस्सा निरन्तर बनाये रखने के लिए, विक्रय प्रोत्साहन हेतु विज्ञापन के कारण भारी मात्रा में विक्रय लागते वहन करती हैं।

4. कीमत परिदृढता (Price Rigidity)

एक फर्म यदि विक्रयमात्रा में वृद्धि हेतु कीमत में कटौती करती है तो अन्य फर्म भी उसका अनुसरण करती है। फलस्वरूप कीमत युद्ध होता है। इससे किसी भी फर्म को लाभ नहीं होता है। इसके विपरीत यदि कोई फर्म लाभ कमाने के उद्देश्य से कीमत बढ़ाती है तो बिक्री घट जाती है। दोनों स्थितियों के परिणामस्वरूप कीमतें यथास्थिर बनी रहती हैं।

5. फर्मों के मध्य विरोधी प्रवृत्ति : फर्मों की लाभ कमाने की इच्छा और अपना प्रभुत्व बनाये रखने के उद्देश्य से अल्पाधिकार में फर्मों के मध्य होड़ निरन्तर बनी रहती है। फर्मों के मध्य संघर्ष और विरोध की मनोस्थिति रहती है।

अल्पाधिकार में मांग वक्र (औसत आगम)

फर्मों के मध्य अत्यधिक निर्भरता होने के कारण मांग वक्र अनिश्चित रहता है। पॉल एम. स्वीजी द्वारा विकुंचित मांग वक्र सर्वप्रथम उपयोग में लिया गया था।

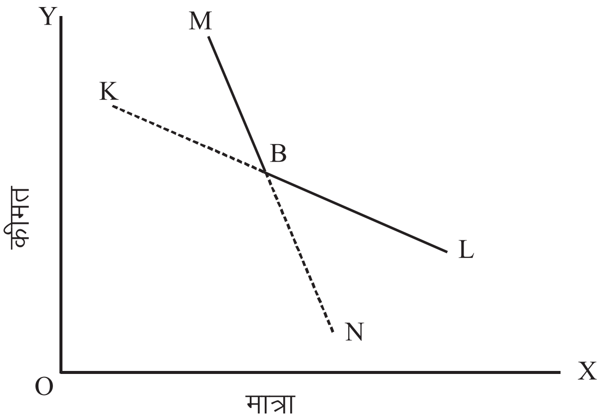

रेखाचित्र 12.3

रेखा 12.3 चित्र में दो मांग वक्र है KL जो अधिक लोचदार है, और MN जो कम लोचदार है, एक अल्पाधिकारी को कीमत वृद्धि में मांग वक्र (अधिक लोचदार) और कीमत में कमी पर मांग वक्र (कम लोचदार) का सामना करना पड़ता है। अल्पाधिकारी मांग वक्र KBN एक स्थापित कीमत पर विकुंचित होता है इस कारण से अल्पाधिकारी कीमतों को स्थिर रखते हैं, परिवर्तित लागत और मांग दशाओं में भी चित्र 12.3 में B विकुंचित बिन्दु है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- एकाधिकार का अर्थ है एक विक्रेता अथवा एक उत्पादक।
- एकाधिकार ऐसी वस्तु का उत्पादन करता है जिसकी कोई निकटतम स्थानापन्न वस्तु नहीं होती है।
- एकाधिकार बाजार में प्रवेश एवं निषेध पर बाहरी रुकावटें होती हैं।
- एकाधिकारात्मक बाजार में वस्तु विभेद एक प्रमुख विशेषता होती है।
- अल्पाधिकार में कुछ बड़ी फर्में होती हैं जो दोनों ही प्रकार की वस्तुएँ अर्थात समरूप एवं विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करती हैं।
- अल्पाधिकार में मांग वक्र विकुंचित होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1 एकाधिकार बाजार में –
(अ) अनेक विक्रेता होते हैं।
(ब) अल्प विक्रेता होते हैं।
(स) एक विक्रेता होता है।
(द) दो विक्रेता होते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की धारणा का प्रतिपादन किसने किया –
(अ) प्रो. ई. एफ. चैम्बरलिन
(अ) श्रीमती जॉन रॉबिन्सन
(स) एडविन कैनन
(द) एल्फ्रेड मार्शल

3. अल्पाधिकार फर्मों की कौनसी विशेषता नहीं है–
(अ) परस्पराधीनता
(ब) कीमत परिदृढ़ता
(स) अनिश्चित मांग वक्र
(द) एक ही विक्रेता

4 एकाधिकार बाजार में कौनसी वस्तुओं का उत्पादन होता है –
(अ) समरूप (ब) विभेदीकृत
(स) विजातीय (द) उपरोक्त सभी

5 एकाधिकार के मांग वक्र की लोच होती है
(अ) एक से कम (e<1)
(ब) एक से ज्यादा (e>1)
(स) एक के बराबर (e=1)
(द) शून्य

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1 एकाधिकार का अर्थ लिखिए।

2 एकाधिकारी का प्रमुख उद्देश्य क्या होता है?

3 वस्तु विभेद का क्या अर्थ है?

4 विभेदीकृत वस्तु का उत्पादन किस बाजार की प्रमुख विशेषता है?

5 अल्पाधिकार बाजार की एक प्रमुख विशेषता लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1 एकाधिकारात्मक बाजार को परिभाषित कीजिए।

2 "वास्तविक प्रतियोगिता अल्पाधिकार में होती है" इस कथन की व्याख्या कीजिये।

3 अल्पाधिकार बाजार की कोई दो प्रमुख विशेषताएँ बताइये।

4 एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता की कोई दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

5 अपूर्ण प्रतियोगिता का अर्थ लिखिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1 "एकाधिकारात्मक बाजार एक चरम सीमा स्थिति है" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

2 एकाधिकारात्मक बाजार की विशेषताएँ सविस्तार लिखिए।

3 अल्पाधिकार बाजार का अर्थ व विषेशताएँ लिखिए।

4 वस्तु विभेद क्या है?इसे किन किन तरीकों से किया जाता है?

5 एकाधिकार एवं एकाधिकारात्मक बाजारों की तुलना कीजिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
स	अ	द	स	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 13

बाजार सन्तुलन
(Market Equilibrium)

साम्य का आशय –

साम्य (Equilibrium) शब्द लेटिन के (aequilibrium) शब्द से लिया गया है जिसका अर्थ है 'समान तुलन

प्रो. स्टिगलर – "सन्तुलन वह स्थिति है जिसमें गति की शुद्ध प्रवृत्ति इस तथ्य पर बल देती हैं कि वह स्थिति आवश्यक रूप से आकस्मिक जड़ता की नहीं होती किन्तु इसके स्थान पर बलशाली शक्तियों को निष्प्रभाव करने की होती है।

प्रो. जे.के.मेहता के अनुसार – सन्तुलन का अर्थ है विश्राम की ऐसी स्थिति जिसकी विशेषता है परिवर्तन का अभाव।

प्रो. बोल्डिग ने स्थैतिक सन्तुलन को इस प्रकार व्यक्त किया है–"एक गेंद जो समान गति से लुढ़कती जा रही हो या इससे भी अच्छा उदाहरण एक वन का है जिसमें पेड़ उगते हैं, बढ़ते या नष्ट होते हैं परन्तु समूचे वन की संरचना में कोई परिवर्तन नहीं आता। यह सन्तुलन का यान्त्रिक उदाहरण है।"

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है, कि साम्य का तात्पर्य जड़ता नहीं बल्कि गति में अपरिवर्तनशीलता से है।

बाजार सन्तुलन :–

बाजार सन्तुलन का तात्पर्य बाजार की उस स्थिति से है जहाँ पर बाजार में वस्तु की बाजार माँग व बाजार पूर्ति बराबर होती है। स्पष्ट है कि जब किसी वस्तु की मांग व पूर्ति में समानता स्थापित हो जाती है अर्थात अधिमांग व अधिपूर्ति शून्य हो तो वह अवस्था बाजार सन्तुलन कहलाती है। इसे ही मूल्य निर्धारण का सामान्य सिद्वान्त या मूल्य निर्धारण का मांग व पूर्ति सिद्धान्त भी कहा जाता है।

मार्शल की मान्यता थी कि वस्तु का मूल्य न तो वस्तु की मांग (उपयोगिता) से निर्धारित होता है और न ही वस्तु की पूर्ति (उत्पादन लागत) से निर्धारित होता है बल्कि वह तो वस्तु की मांग व पूर्ति दोनों की शक्तियों के द्वारा निर्धारित होता है।

बाजार सन्तुलन की व्याख्या निम्न घटकों से समझी जा सकती है।

(अ) मांग पक्ष –

उपभोक्ता किसी वस्तु की मांग क्यों करता है? वह किसी वस्तु का मूल्य देने हेतु क्यों तत्पर होता है? और वस्तु का अधिकतम कितना मूल्य दे सकता है? इन प्रश्नों की विवेचना से स्पष्ट होता है कि किसी वस्तु की मांग उसकी उपयोगिता के कारण की जाती है अर्थात वस्तु में उपभोक्ताओं की आवश्यकता को सन्तुष्ट करने का गुण ही उसकी मांग का कारण है। उपभोक्ता अपनी आवश्यकता को सन्तुष्ट करने हेतु वस्तु को प्राप्त करना चाहता है जिसके बदले में वह मुद्रा के रूप में कुछ त्याग करना चाहता है यही वस्तु का मूल्य होता है। जिस वस्तु की उपयोगिता अधिक होती है उसके लिये उपभोक्ता अधिक मूल्य देने हेतु तत्पर रहता है और जिस वस्तु की उपयोगिता कम होती है उसके लिये वह कम मूल्य देना चाहता है। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से उसका मूल्य अधिक नहीं हो सकता। सीमान्त उपयोगिता ही मूल्य की अधिकतम सीमा होती है।

एक क्रेता जिस मूल्य पर वस्तु की एक निश्चित मात्रा क्रय करने हेतु तैयार हो उसे "मांग मूल्य" कहा जाता है। एक वस्तु के लिये अलग–अलग क्रेताओं की विभिन्न कीमतों पर मांग भी अलग–अलग होती है। प्रत्येक क्रेता की एक मांग अनुसूची होती है, बाजार के सभी क्रेताओं की मांग अनुसूचियों का योग करने पर बाजार मांग अनुसूची प्राप्त हो जाती है, जिससे यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि विभिन्न मूल्यों पर बाजार में वस्तु की कितनी–कितनी मात्रा मांगी जाती है।

तालिका 13.1 बाजार मांग अनुसूची

वस्तु की कीमत रू.	विभिन्न उपभोक्ताओं की योग मांग (इकाइयों में)			बाजार माँग
	A	B	C	
5	6	8	11	25
10	5	7	10	22
15	4	6	8	18
20	3	5	7	15
25	2	3	4	9
30	1	2	3	6

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्याख्या :—

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत में वृद्विहोने पर विभिन्न उपभोक्ताओं द्वारा मांगी गयी मात्रा कम होती जाती है माना कि बाजार में तीन उपभोक्ता हैं, जिनकी मांग विभिन्न कीमतों पर दर्शायी गयी है तालिका का विश्लेषण करने पर यह कहा जा सकता है कि वस्तु की कीमत बढ़ने पर बाजार मांग घट जाती है।

मांग वक्र

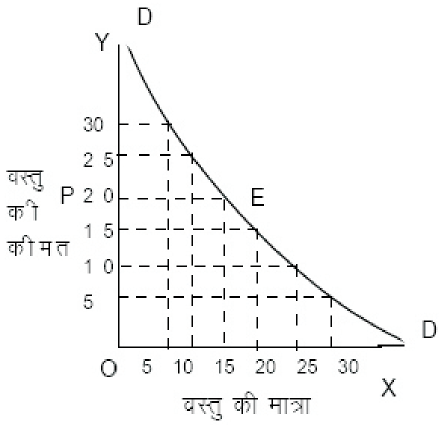

रेखाचित्र 13.1

रेखाचित्र की व्याख्या :—

रेखाचित्र में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। अलग—अलग उपभोक्ताओं की मांग क्रमशः A, B, C रेखाचित्रों द्वारा दर्शाई गई हैं प्रत्येक उपभोक्ता के लिए मांग वक्र का ढाल ऋणात्मक होता हैं सभी उपभोक्ताओं की मांग का योग बाजार मांग वक्र द्वारा व्यक्त किया गया है जिसमें OP कीमत पर वस्तु की OQ मात्रा बाजार मांग को व्यक्त करती है। वस्तु की कीमत के बढ़ने पर वस्तु की मांग कम हो जाती है विभिन्न कीमत स्तरों पर वस्तु की मांग को दर्शाने वाला DD माँग वक्र बाजार मांग को व्यक्त करता है। मांग वक्र का ऋणात्मक ढ़ाल बाजार में मांग की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

(ब) पूर्ति पक्ष :—

किसी वस्तु का मूल्य कितना होगा? किसी वस्तु की पूर्ति क्यों की जाती है? वस्तु की पूर्ति के लिये कितना मूल्य लिया जाता है? इत्यादि प्रश्नों की विवेचना करने से स्पष्ट होता है कि उत्पादक को उत्पादन करने में लागत वहन करनी पड़ती है जिसे प्राप्त करने हेतु उत्पादक वस्तु की पूर्ति के लिये मूल्य प्राप्त करना चाहता है। उत्पादक अपनी वस्तु का मूल्य अल्पकाल में सीमान्त लागत से कम नहीं कर सकता जबकि दीर्घकाल में मूल्य औसत परिवर्तनशील के बराबर होना चाहिये अन्यथा उत्पादक उत्पादन बन्द कर देगा। स्पष्ट है कि वस्तु की सीमान्त लागत उसके मूल्य की निम्नतम सीमा को व्यक्त करती है।

एक उत्पादक निश्चत समय पर विभिन्न कीमतों पर वस्तु की अलग—अलग मात्रायें बेचने को तत्पर होता है जो उसकी पूर्ति अनुसूची कहलाती है। बाजार के समस्त व्यक्तिगत उत्पादकों की पूर्ति अनुसूचियों का योग करने पर बाजार की पूर्ति अनुसूची (तालिका) प्राप्त हो जाती है।

तालिका 13.2 बाजार पूर्ति अनुसूची

वस्तु की कीमत रू.	विभिन्न उत्पादकों द्वारा योग पूर्ति (इकाइयों में)			बाजार पूर्ति
	A	**B**	**C**	
05	0	1	1	2
10	0	2	3	5
15	1	3	5	9
20	3	5	7	15
25	5	8	10	23
30	8	10	13	31

तालिका की व्याख्या :—

बाजार में तीन उत्पादकों की मान्यता ली गई है। इस मान्यता पर आधारित बाजार बताई गई पूर्ति अनुसूची द्वारा यह स्पष्ट है कि वस्तु की कीमत बढ़ने पर विभिन्न उत्पादकों द्वारा वस्तु की पूर्ति बढ़ायी जाती है जिनका योग करने से 2 बाजार पूर्ति प्राप्त होता है। अर्थात कीमतें बढ़ने पर पूर्ति भी बढ़ जाती है। वस्तु की कीमत एवं बाजार पूर्ति में सीधा एवं प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

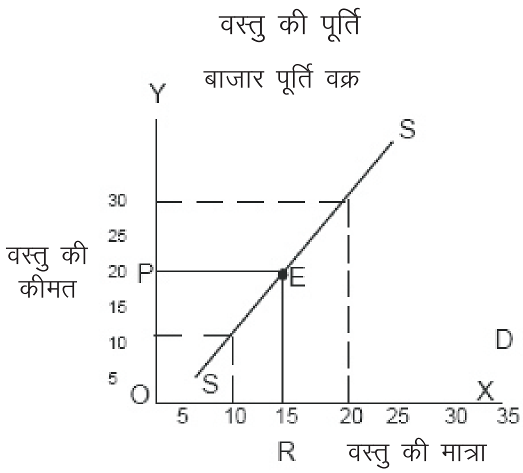

रेखाचित्र 13.2

रेखाचित्र :– विक्रेताओं द्वारा वस्तु की पूर्ति को रेखाचित्र 13.2 द्वारा दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि प्रत्येक उत्पादक के पूर्ति वक्र का ढाल धनात्मक है।

रेखाचित्र 13.2 की व्याख्या :–

रेखाचित्र 13.2 में OX अक्ष पर वस्तु की मात्रा तथा OY अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। रेखाचित्र से स्पष्ट हैं कि OP कीमत पर बाजार में OQ वस्तु की पूर्ति की जाती है जिसे बाजार पूर्ति कहा जाता है। कीमत के बढ़ने पर उत्पादक वस्तु की पूर्ति में भी वृद्विकरते है अर्थात जैसे–जैसे कीमत बढ़ती है तो पूर्ति भी बढ़ने लगती है कीमत एवं वस्तु की पूर्ति में सीधा सम्बन्ध होता है अतः पूर्ति वक्र का ढाल धनात्मक होता है।

मांग व पूर्ति का सन्तुलन :–

मांग पक्ष के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वस्तु की सीमान्त उपयोगिता उसके मूल्य की उच्चतम सीमा होती है जबकि पूर्ति पक्ष के विश्लेषण से स्पष्ट है कि वस्तु की सीमान्त लागत उसके मूल्य की निम्नतम सीमा होती है वस्तु का वास्तविक मूल्य इन्ही दो सीमाओं के बीच उस बिन्दु पर निर्धारित होता है जहॉं पर उस वस्तु की मांग व पूर्ति बराबर हो जाये। क्रेता यह चाहता है कि वह कम से कम मूल्य चुकाये जबकि विक्रेता अधिक से अधिक मूल्य प्राप्त करना चाहता है अतः मांग व पूर्ति के साम्य बिन्दु पर वास्तविक कीमत निर्धारित होती है जहॉं पर क्रेता व विक्रेता दोनो सन्तुष्ट होते हैं। उस साम्य बिन्दु पर निर्धारित कीमत को ही ''साम्य कीमत'' या सन्तुलन मूल्य कहा जाता है और इस कीमत पर निर्धारित वस्तु की मात्रा को ''साम्य मात्रा'' या सन्तुलन मात्रा कहा जाता है।

तालिका 13.3 साम्य कीमत का निर्धारण

X वस्तु की कीमत	X वस्तु की मॉंग	X वस्तु की पूर्ति
5	25	2
10	22	5
15	18	9
20	15	15
25	9	23
30	6	31

तालिका की व्याख्या :–

तालिका 13.3 से स्पष्ट है कि X वस्तु की कीमत बढ़ने पर उसकी मॉंग कम हो जाती है जबकि वस्तु की पूर्ति में वृद्वि हो जाती है। तालिका में साम्य कीमत 20 रू. पर वस्तु की मांग व पूर्ति दोनो बराबर 15–15 इकाइयॉं है। अतः 20 रू. साम्य कीमत कहलायेगी।

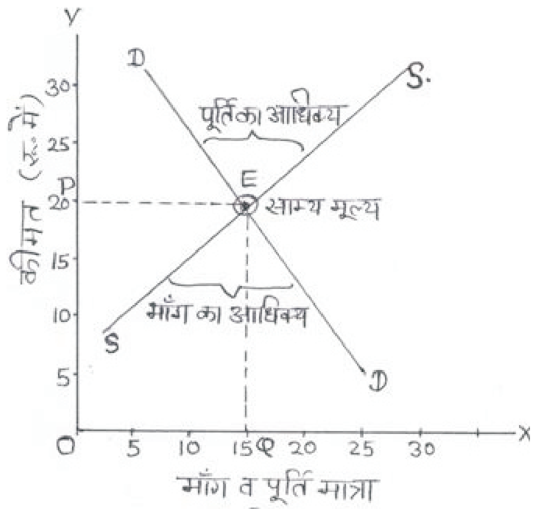

रेखाचित्र 13.3

रेखाचित्र की व्याख्या :–

उपरोक्त रेखाचित्र में OX अक्ष पर वस्तु की मांग व पूर्ति दर्शायी गयी है जबकि OY अक्ष पर वस्तु की कीमत को दर्शाया गया है। DD वक्र मांग को व्यक्त करता है जबकि वक्र वस्तु की पूर्ति का वक्र है। मांग व पूर्ति वक्र दोनों एक दूसरे को E बिन्दु पर काटते हैं अतः वस्तु की कीमत OP निर्धारित हो जाती है वस्तु की निर्धारित OQ मात्रा साम्य मात्रा कहलाती है। E बिन्दु पर निर्धारित कीमत ही साम्य कीमत है। जब वस्तु की कीमत 20 रू. है तो इस कीमत पर मांग व पूर्ति दोनों बराबर–बराबर 15 इकाइयॉं है। अतः E साम्य बिन्दु है जिस पर मांग पर पूर्ति बराबर हो जाती है।

पूर्ति का आधिक्य –

रेखाचित्र से स्पष्ट हैं कि वस्तु की मांग की तुलना में उसकी पूर्ति अधिक है तो उसे पूर्ति का आधिक्य माना जाता है अर्थात वस्तु की पूर्ति उसकी मांग की अपेक्षा अधिक है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मांग का का आधिक्य –

रेखाचित्र से स्पष्ट हैं कि वस्तु की पूर्ति की अपेक्षा उसकी मांग अधिक है तो उसे मांग का आधिक्य माना जाता है ।

(ब) मांग व पूर्ति में परिवर्तन का सन्तुलन पर प्रभावः–

मांग व पूर्ति की दशाओं में परिवर्तन होने पर सन्तुलन पर क्या प्रभाव होगा, यह निम्नानुसार समझा जा सकता है–

(1) मांग में परिवर्तन का सन्तुलन पर प्रभाव :–

किसी वस्तु की मांग उपभोक्ताओं की आय, रुचि, स्वभाव, फैशन, अधिमान, समय का प्रभाव इत्यादि कारणों से परिवर्तित हो सकती है। जब किसी वस्तु की पूर्ति व अन्य परिस्थितियाँ स्थिर रहे किन्तु वस्तु की माँग में किसी कारण से वृद्धि हो जाये तो सन्तुलन भी प्रभावित होगा और साम्य कीमत बढ़ जाती है जबकि इसके विपरीत किसी भी कारण से वस्तु की मांग में कमी होने पर साम्य कीमत भी घट जाती है। स्पष्ट है कि पूर्ति के अपरिवर्तित रहने पर मांग में वृद्वि होने पर वस्तु का मूल्य तथा विक्रय मात्रा दोनों में वृद्विहोती है जबकि इसके विपरीत माँग में कमी होने पर वस्तु के मूल्य तथा विक्रय मात्रा दोनों में कमी हो जाती है।

(a) मांग में वृद्वि का प्रभाव–

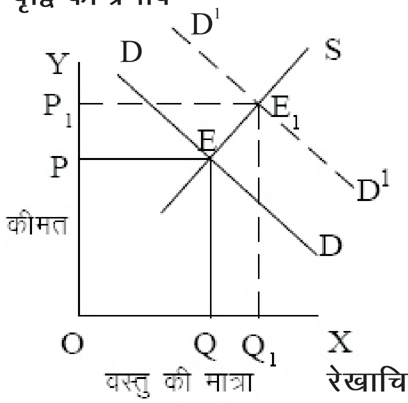

रेखाचित्र 13.4

उक्त रेखाचित्र से स्पष्ट है कि माँग व पूर्ति के साम्य से निर्धारित कीमत OP है वस्तु की माँग बढने पर माँग वक्र के खिसकने से नया माँग वक्र D^1D^1 प्राप्त होता है जिससे नया साम्य E_1 बिन्दु पर निर्धारित हो जाता है अतः वस्तु की कीमत भी बढ़कर OP_1 हो जाती है।

(b) मांग में कमी का प्रभाव–

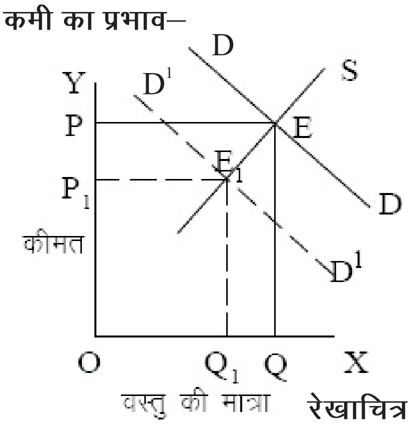

रेखाचित्र 13.5

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि एक बार साम्य स्थापित होने के बाद यदि वस्तु की माँग में किसी भी कारण से कमी हो जाये तो माँग वक्र नीचे खिसक जाता है जिसके कारण नया साम्य E_1 बिन्दु पर निर्धारित होता है अतः वस्तु की कीमत भी घटकर Op_1 रह जाती है।

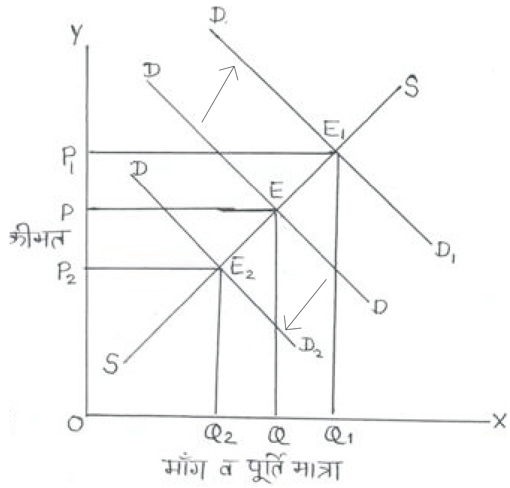

रेखाचित्र 13.6

रेखाचित्र की व्याख्या :– रेखाचित्र में OX अक्ष पर वस्तु की माँग व पूर्ति तथा OY अक्ष पर कीमत को दर्शाया गया है। माँग व पूर्ति का प्रारम्भिक साम्य E बिन्दु पर स्थापित हो जाता है अतः OP कीमत तथा OQ साम्य मात्रा है। अन्य बातों के समान रहने पर वस्तु की माँग बढ़ने पर साम्य कीमत बढ़ जाती है तथा माँग घटने पर साम्य कीमत भी कम हो जाती है।

(2) पूर्ति में परिवर्तन का सन्तुलन पर प्रभाव :–

किसी वस्तु की पूर्ति में अनेक कारणों से परिवर्तन हो सकते हैं जैसे–

(अ) उत्पादन की लागतों में परिवर्तन होने पर पूर्ति भी परिवर्तित हो जाती है। लागत बढ़ने पर पूर्ति कम तथा लागत घटने पर पूर्ति अधिक हो जाती है।

(ब) नये–नये अविष्कार होने से वस्तु की पूर्ति प्रभावित होती है नई प्रतिस्थापन वस्तु का प्रयोग बढ़ने से पुरानी वस्तु की पूर्ति में कमी आ जाती है।

(स) तकनीकी बदलाव वस्तु के उत्पादन स्तर में परिवर्तन के द्वारा पूर्ति को प्रभावित करता है।

(द) कच्चे माल के नवीन स्त्रोतो की खोज, वस्तु की पूर्ति को बढ़ा देती है।

(ड) उत्पादक के दृष्टिकोण में परिवर्तन होने से पूर्ति पक्ष प्रभावित होता है।

(ण) सरकारी नीतियों में परिवर्तन वस्तु की पूर्ति को प्रभावित करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

यदि वस्तु की मांग व अन्य तत्व स्थिर रहे किन्तु वस्तु की पूर्ति में वृद्धि हो जाये तो वस्तु का मूल्य घट जाता है एवं वस्तु की विक्रय मात्रा बढ़ जाती है जबकि इसके विपरीत यदि वस्तु की पूर्ति कम हो जाये तो उस वस्तु का मूल्य बढ़ जाता है तथा विक्रय की मात्रा कम हो जाती है।

(a) पूर्ति में वृद्धि का प्रभाव–

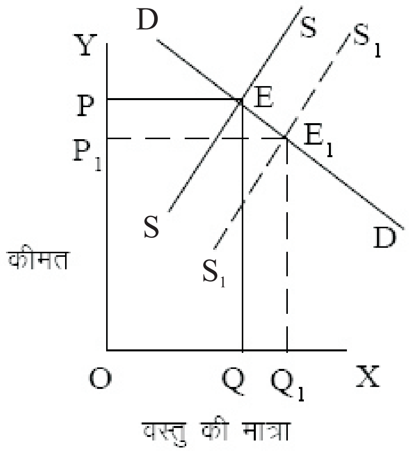

रेखाचित्र 13.7

रेखाचित्र से स्पष्ट है कि वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन होने से संतुलन प्रभावित होता है। वस्तु की पूर्ति बढ़ने पर पूर्ति वक्र खिसककर S_1S_1 हो जाता है जिससे नया साम्य E_1 बिन्दु पर प्राप्त होता है अतः वस्तु की कीमत घटकर OP_1 रह जाती है।

(a) पूर्ति में कमी का प्रभाव–

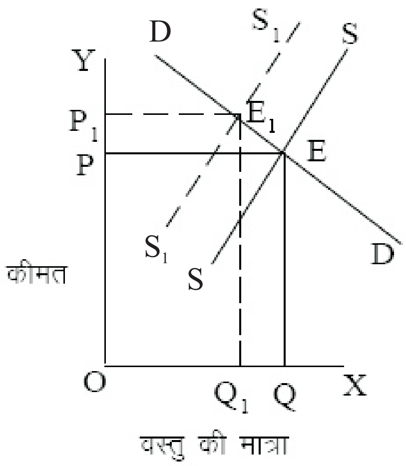

रेखाचित्र 13.8

उपरोक्त रेखाचित्र से यह प्रदर्शित होता है कि वस्तु की पूर्ति घट जाने पर पूर्तिवक्र विवर्तित होकर S_1S_1 हो जाता है जिससे साम्य बिन्दु E खिसककर E_1 पर प्राप्त होता है।अतः वस्तु की कीमत भी बढ़कर Op_1 हो जाती है।

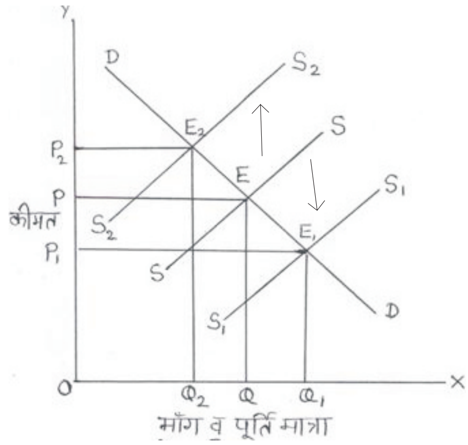

रेखाचित्र 13.9

उपरोक्त रेखाचित्र में मांग व पूर्ति का प्रारम्भिक साम्य E बिन्दु पर है जहाँ पर माँग वक्र व पूर्ति वक्र एक दूसरे को काटते है। OP साम्य कीमत एवं OQ साम्य मात्रा को दर्शाता है। वस्तु की पूर्ति बढ़ने पर पूर्ति वक्र दाहिनी और खिसक कर S_1S_1 हो जाता है जिससे नया साम्य E_1 बिन्दु पर स्थापित हो जाता है और कीमत घटकर OP_1 तथा पूर्ति मात्रा बढ़कर OQ_1 हो जाती है। जबकि वस्तु की पूर्ति कम होने पर पूर्ति वक्र बॉयी और खिसक कर S_2S_2 हो जाता है और नया साम्य E_2 बिन्दु पर स्थापित हो जाता है और कीमत बढ़कर OP_1 तथा पूर्ति मात्रा घटकर OP_2 रह जाती है।

स्पष्ट है कि वस्तु की पूर्ति में परिवर्तन से उसके साम्य मूल्य में विपरीत दिशा में परिवर्तन होता है, पूर्ति बढ़ने पर साम्य कीमत घटती है जबकि पूर्ति घटने पर साम्य कीमत बढ़ती है।

(3) मांग व पूर्ति दोनों में एक साथ परिवर्तन होने पर साम्य कीमत पर प्रभाव :–

जब किसी वस्तु की मांग व पूर्ति दोनों में एक साथ परिवर्तन हो तो साम्य कीमत भी प्रभावित होगी। माँग व पूर्ति दोनों शक्तियो में परिवर्तन का साम्य कीमत पर संयुक्त प्रभाव पड़ता है। यदि माँग में परिवर्तन पूर्ति के परिवर्तन की अपेक्षा अधिक है तो साम्य कीमत पर माँग पक्ष का प्रभाव अधिक होगा। जबकि इसके विपरीत पूर्ति में परिवर्तन माँग के परिवर्तन की अपेक्षा अधिक हो तो साम्य कीमत पर पूर्ति पक्ष का प्रभाव अधिक होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

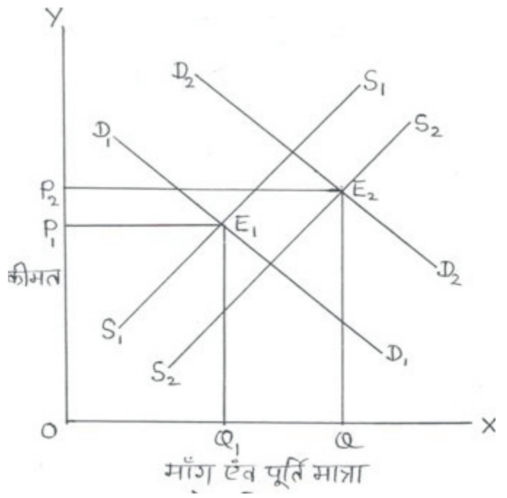

रेखाचित्र 13.10

रेखाचित्र की व्याख्या :–

वस्तु की प्रारम्भिक माँग $D_1 D_1$ तथा प्रारम्भिक पूर्ति $S_1 S_1$ है। साम्य बिन्दु E_1 है जिससे वस्तु की साम्य कीमत OP_1 तथा साम्य मात्रा OQ_1 निर्धारित हो जाती है। वस्तु की माँग में वृद्विहोने के कारण मांग वक्र ऊपर खिसककर D_2D_2 हो जाता है तथा पूर्ति में वृद्विहोने के पश्चात् पूर्ति वक्र S_2S_2 हो जाता है। जिससे मांग व पूर्ति का नया साम्य बिन्दु E_2 पर प्राप्त होता है। अतः मांग व पूर्ति में परिवर्तन के पश्चात् वस्तु की कीमत बढ़कर OP_2 निर्धारित हो जाती है और वस्तु की मात्रा OX_2 निर्धारित होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि यदि वस्तु की मांग व पूर्ति दोनो बढ़ते हैं तो साम्य कीमत पर प्रभाव उनके संयुक्त प्रभाव पर निर्भर होगा। वस्तु की मांग एवं पूर्ति में कमी या वृद्वि हो सकती है। दोनो पक्षों में से एक पक्ष में भी परिवर्तन हो जाने पर नया साम्य स्थापित हो जाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

जिस बिन्दु पर वस्तु की मांग व पूर्ति एक दूसरे के बराबर हो जाती है, उसे साम्य बिन्दु कहा जाता है।

एक वस्तु का मूल्य निर्धारण उसकी मांग व पूर्ति के साम्य द्वारा ही होता है।

एक वस्तु की बाजार मांग वक्र का ढ़ाल सामान्यतया ऋणात्मक होता है।

एक वस्तु की बाजार पूर्ति वक्र का ढाल धनात्मक होता है।

किसी एक वस्तु की कीमत बढ़ने पर उस वस्तु की मांग कम हो जाती है।

किसी वस्तु की कीमत घटने पर उस वस्तु की मांग बढ़ जाती है।

एक वस्तु की पूर्ति बढ़ने पर सामान्यतया उस वस्तु की कीमत कम हो जाती है।

एक वस्तु की पूर्ति घटने पर सामान्यतया उस वस्तु की कीमत बढ़ जाती है।

विभिन्न व्यक्तिगत मांग का योग बाजार मांग कहलाता है।

सभी व्यक्तिगत पूर्ति अनुसूचियो के योग को बाजार पूर्ति अनुसूची कहते है।

एक वस्तु की कीमत एवं उसकी मांग के बीच ऋणात्मक सम्बन्ध होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) वस्तु की कीमत व बाजार मांग के बीच सम्बन्ध होता है–
(अ) धनात्मक
(ब) ऋणात्मक
(स) शून्य
(द) कोई सम्बन्ध नहीं ( )

(2) साम्य कीमत पर सन्तुष्ट होते हैं –
(अ) क्रेता व विक्रेता दोनों
(ब) केवल क्रेता
(स) केवल विक्रेता
(द) क्रेता व विक्रेता दोनों में से कोई नहीं ( )

(3) किसी वस्तु की मांग का मुख्य कारण है –
(अ) मुद्रा की पूर्ति
(ब) वस्तु की पूर्ति
(स) आवश्यकता सन्तुष्ट करने का गुण
(द) वस्तु की उपलब्धता ( )

(4) एक उत्पादक वस्तु का उत्पादन किस उद्देश्य से करता है–
(अ) सामाजिक सेवा हेतु
(ब) आत्म सन्तुष्टि हेतु
(स) लाभ कमाने हेतु
(द) प्रतिष्ठा प्राप्त करने हेतु ( )

(5) किसी वस्तु की पूर्ति बढ़ने पर पूर्ति वक्र –
(अ) दाँयी तरफ खिसकता है।
(स) बाँयी तरफ खिसकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(स) स्थिर रहता है।

(द) कहीं भी खिसक सकता है। ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न—

(1) प्रो. जे.के. मेहता द्वारा दी गई 'साम्य' की परिभाषा दीजिये।

(2) किसी वस्तु का मूल्य किन दो घटकों द्वारा निर्धारित होता है?

(3) बाजार सन्तुलन से आपका क्या आशय है? स्पष्ट कीजिए।

(4) 'बाजार मांग' से क्या अभिप्राय है? समझाइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न—

(1) वस्तु की पूर्ति परिवर्तन के लिये तीन कारक लिखो।

(2) पूर्ति वक्र को रेखाचित्र द्वारा दर्शाइये।

(3) पूर्ति अनुसूची किसे कहते हैं।

निबन्धात्मक प्रश्न—

(1) एक काल्पनिक बाजार मांग तालिका का निर्माण कीजिये, एवं इसे रेखाचित्र द्वारा समझाइये।

(2) 'मांग में परिवर्तन से साम्य कीमत प्रभावित होती है' इस कथन को रेखाचित्र द्वारा समझाइये।

(3) मांग व पूर्ति के सन्तुलन को रेखाचित्र व अनुसूची द्वारा समझाओ।

(4) बाजार सन्तुलन की व्याख्या कीजिये। पूर्ति में परिवर्तन का इस साम्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? स्पष्ट कीजिये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	अ	स	स	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय –14

राष्ट्रीय आय की मूल अवधारणाएँ
(Basic Concepts of National Income)

आज सभी देशों में पशुपालन, कृषि, उद्योग, व्यापार एवं अन्य वाणिज्यिक क्रियाएँ जैसे परिवहन, संचार, बैंकिंग (अधिकोषण), भण्डारण इत्यादि की जाती है। उपर्युक्त कई प्रकार की आर्थिक–क्रियाओं के द्वारा लोग अपनी आजीविका कमाते हैं। कुछ लोग शारीरिक श्रम द्वारा आय अर्जित करते हैं और कुछ लोग मानसिक श्रम द्वारा भी आय का अर्जन करते हैं। आय विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त होती है। जिन देशों के अधिकांश लोगो को कई स्रोतों से आय प्राप्त होती हैं उनकी आय उन देशों के लोगो से अधिक होती है जिनके पास आय के कम स्रोत होते है। कम आय वाले देश निर्धन तथा अधिक आय वाले देश धनी कहलाते हैं। आज प्रत्येक देश धनी बनना चाहता है। बोलचाल की भाषा में एक देश की आय को राष्ट्रीय आय कहते हैं।

राष्ट्रीय आय की सहायता से एक देश की आर्थिक उपलब्धियों की जानकारी मिलती है। उस देश की सरकार की नीतियों एवम् कार्यक्रमों के प्रभावशाली होने की स्थिति का पता चलता है। राष्ट्रीय आय एक देश की अर्थव्यवस्था के मौद्रिक प्रवाह (Flow) दर्शाता है।

स्टॉक एवं प्रवाह (Stock and Flow) :–

आर्थिक चरों के अध्ययन में समय तत्व के आधार पर उन्हें स्टॉक और प्रवाह के वर्ग में रखा जाता है। जब किसी भी आर्थिक चर का अध्ययन एक निश्चित समय बिन्दु पर किया जाता है तो उसे स्टॉक कहा जाता है। इसके विपरित जब किसी चर का एक समयावधि में अध्ययन किया जाता है तो उसे प्रवाह कहा जाता है।

शेपीरो के अनुसार – "एक स्टॉक समय के एक निर्दिष्ट बिन्दु में माप मात्रा है और प्रवाह वह मात्रा है जो कि केवल समय के एक निर्दिष्ट काल में मापी जा सकती है"

इस अवधारणा को निम्नलिखित उदाहरण द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

माना किसी वर्ष की 1 जुलाई को एक बांध में 20 फिट पानी का स्तर है, बरसात के कारण तीन महीनों में यह बढ़ कर 40 फिट हो जाता है। पूरे वर्ष भर में पीने, खेती व उद्योग–धंधों में पानी की खपत होने के कारण अगले वर्ष के 30 जून को पानी का स्तर 25 फिट रह जाता है। इस उदाहरण की तीन बातें महत्वपूर्ण हैं। 1. एक जुलाई को शुरूआत में पानी का स्तर 20 फिट है। 2. वर्ष में (3 माह में) पानी की आवक 20 फिट हुई व वर्ष में जावक 15 फिट हुई। 3. वर्ष के आखिरी दिन 30 जून को पानी का स्तर 25 फिट रह जाता है।

ऊपर बताई गई तीन बातों में–एक जुलाई व 30 जून को पानी का स्तर (भण्डार अर्थात स्टॉक) (Stock) क्रमशः 20 फिट व 25 फिट होता है। एक जुलाई व 30 जून समय के बिन्दु (Point of Time) हैं। इसी तरह एक जुलाई व 30 जून के दो समय के बिन्दुओं के बीच की समय की अवधि (Period Between Two Point of Time) में पानी की आवक (अन्दर की ओर प्रवाह) 20 फिट हुई व जावक (बाहर की ओर प्रवाह) 15 फिट हुई। इस प्रकार पानी की शुद्ध आवक (Net In-Flow) 5 फिट (20-15=5) हुई।

राष्ट्रीय आय भी इसी तरह एक प्रकार का प्रवाह (Flow) होता है। यह प्रवाह (Flow) एक वर्ष की अवधि (भारत में किसी वर्ष के एक अप्रेल से अगले वर्ष के 31 मार्च के दो समय बिन्दुओं के बीच की अवधि) से सम्बन्ध रखता है। इसी तरह समय के एक निर्दिष्ट बिन्दु पर सम्पत्तियों का स्तर स्टॉक (भण्डार या स्कन्ध) कहा जाता है। राष्ट्रीय आय का इस प्रकार का प्रवाह **(Flow)** उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं से उत्पन्न होता है। एक देश के लोग राष्ट्रीय आय का प्रवाह उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं से वहाँ के समस्त संसाधनों के उपयोग द्वारा अर्जित करते हैं। राष्ट्रीय आय का प्रवाह उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं से देश के लोगों के बीच में चक्राकार रूप में उसी तरह घूमता रहता है जैसे शरीर में रक्त का संचार होता है।

आय का चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) :–

आय के चक्राकार प्रवाह से आशय है कि देश का उत्पादन, आय और व्यय के रूप में एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में एक चक्र की भांति घूमते है क्योंकि एक क्षेत्र का व्यय दूसरे क्षेत्र की आय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

होती है।

आय के चक्राकार प्रवाह के विचारों का पहली बार फ्रांस के प्रकृतिवादी–कृषि अर्थशास्त्री फ्रेंकायज क्वीजने (Francois Quesney) ने सन् 1758 के द्वारा किया गया। कार्ल मार्क्स (Karl Marx) ने फ्रेंकायज क्वीजने की आर्थिक– तालिका को दुबारा प्रकाशित किया।

एक देश की अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्र होते हैं जैसे परिवार (उपभोक्ता), व्यवसाय (उत्पादक) व सरकारें इत्यादि। सभी क्षेत्र एक दूसरे पर निर्भर होते हैं। विभिन्न घटकों जैसे परिवार (उपभोक्ता) व व्यवसाय (उत्पादक) इत्यादि की एक दूसरे पर निर्भरता को आय के चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) की सहायता से समझ सकते हैं। उत्पादन के साधनों की उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं के द्वारा वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन होता है। 'आयलर प्रमेय' (Euler's Theorem) के अनुसार समस्त उत्पादन का पूरा–पूरा बंटवारा उत्पादन के साधनों को हो जाता है। इस प्रकार साधनों को उत्पादन का वितरण होने पर उन्हें साधन–आय प्राप्त होती हैं। देश के लोगों द्वारा साधन–आय को व्यय करके वस्तुओं व सेवाओं को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार एक देश के परिवारों व व्यावसायिक–फर्मों के मध्य उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं के द्वारा कमाई गई आमदनी घूमती रहती जिसे ही आय का चक्राकार प्रवाह कहते हैं। आय के चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) को दो क्षेत्रों के मॉडल की सहायता से निम्नानुसार समझ सकते हैं।

मॉडल–

एक 'मॉडल' जटिल वास्तविकता का सरल रूप होता है। जैसे मानव शरीर व उसकी कार्य प्रणाली को मिट्टी या प्लास्टिक के मॉडल द्वारा आसानी से समझ सकते हैं। इसी तरह एक देश की अर्थव्यवस्था के परिवारों व व्यावसायिक–फर्मों के मध्य आमदनी के चक्राकार प्रवाह को भी एक 'मॉडल' की सहायता से समझ सकते हैं। आय का चक्राकार प्रवाह का मॉडल निम्न बातों को आवश्यक मानता है:–

1. एक देश में सम्पूर्ण उत्पादन केवल व्यावसायिक–फर्में ही करती है।
2. व्यावसायिक–फर्में अपना सम्पूर्ण उत्पादन बेच देती है, बिना बेचा उत्पादन, कच्चा माल शेष नहीं बचता है।
3. एक देश में सरकार तो होती है किन्तु वह कर इत्यादि नहीं लेती तथा लोगों को सहायता, अनुदान नहीं देती है।
4. एक देश की अर्थव्यवस्था बन्द है अर्थात विदेशों से आयात व निर्यात नहीं होता है।

यद्यपि जब एक देश की अर्थव्यवस्था खुली होती है तब आय के चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) के क्षेत्रों की संख्या पाँच– (परिवार, व्यावसायिक–फर्में, पूँजी–बाजार, सरकार व शेष–विश्व) होती हैं। एक सरल आय के चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) के मॉडल में निम्न दो क्षेत्र होते हैं– 1. प्रथम क्षेत्र–परिवार क्षेत्र (Household Sector)

2. द्वितीय क्षेत्र–व्यावसाय क्षेत्र (Business Sector)

1. परिवार क्षेत्र :– परिवार क्षेत्र से आशय वह क्षेत्र जो उत्पादन के साधनों (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) का स्वामी हैं। परिवार में केवल व्यावसायिक–फर्मों के द्वारा किये गये उत्पादन का उपभोग होता है।

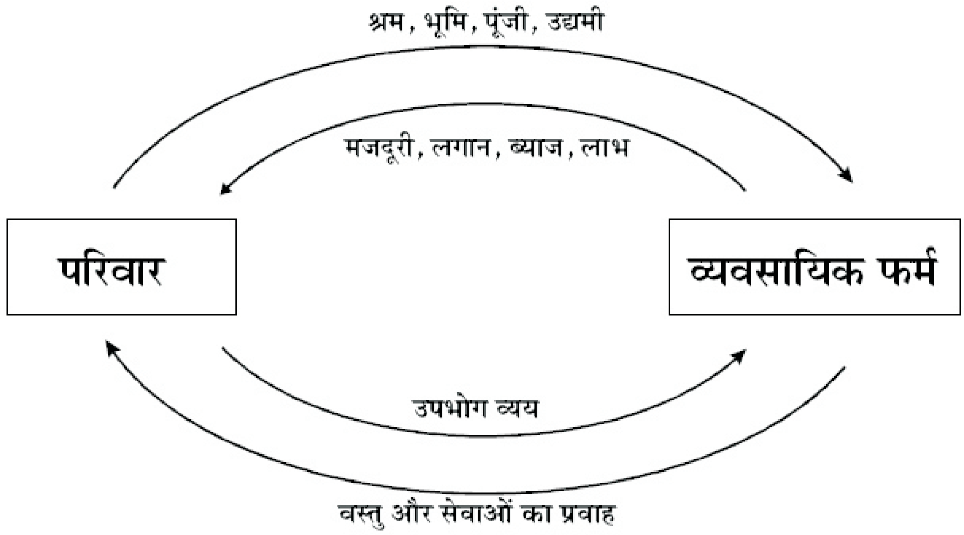

रेखाचित्र 14.1 : आय का चक्राकार प्रवाह

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2. व्यावसायिक क्षेत्रः– व्यावसायिक क्षेत्र का अर्थ वह क्षेत्र जो परिवार से उत्पादन के साधनों (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) की सहायता से उत्पादन करता है। उपभोग हेतु उत्पादन को परिवार को बेच देता है। इस स्थिति को रेखाचित्र 14.1 की सहायता से समझ सकते हैं।

इस प्रकार एक देश में उत्पादन के साधन परिवार से व्यावसायिक–फर्मों की ओर/तरफ जाते हैं। व्यावसायिक–फर्मों के द्वारा साधनों के बदले में मुद्रा का भुगतान प्रतिफलों के रुप में किया जाता है। परिवार व्यावसायिक–फर्मों से जो मुद्रा का भुगतान आय के रुप में किया जाता है उसे दुबारा व्यावसायिक–फर्मों को भुगतान वस्तु और सेवाओं के लिए कर देते हैं। परिवार मुद्रा देकर बदले में व्यावसायिक–फर्मों से उपभोग हेतु वस्तुओं व सेवाओं को प्राप्त कर उनका उपभोग करता है। इस प्रकार परिवार का व्यय व्यावसायिक–फर्मों की आय व व्यावसायिक–फर्मों का व्यय परिवार की आय का निर्माण करते हैं। यह प्रवाह दो प्रकार का होता है– 1. वास्तविक प्रवाह– उत्पादन के साधनों का परिवार से व्यावसायिक–फर्मों की ओर तथा व्यावसायिक–फर्मों से उपभोग हेतु वस्तुओं व सेवाओं का परिवार की ओर प्रवाह। 2. मौद्रिक प्रवाह– व्यावसायिक–फर्मों से साधन–भुगतान का परिवार की ओर तथा परिवार से उपभोग–व्यय के रूप में व्यावसायिक–फर्मों की ओर प्रवाह। एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को लेनदेन के प्रवाह का यह क्रम एक देश की अर्थव्यवस्था में लगातार चलता रहता है। उपर्युक्त का निष्कर्ष निम्न हैः–

1. वस्तुओं व सेवाओं के लेनदेन (क्रय–विक्रय) की राशियाँ बराबर होती है। अर्थात् एक देश के समस्त उत्पादकों को मिलने वाली राशि उतनी ही होती है जितनी देश के समस्त उपभोक्ताओं द्वारा खर्च की जाती है।

2. आय के चक्राकार प्रवाह के चित्र को देखने से यह स्पष्ट होता है कि एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र को (प्रवाह) विपरीत दिशा में होता है। वस्तुओं व सेवाओं का बहाव (प्रवाह) जिस दिशा में होता है उसकी विपरीत दिशा में मुद्रा का बहाव (प्रवाह) होता है।

3. उत्पादन के साधनों का बहाव (प्रवाह) जिस दिशा में होता है उसकी विपरीत दिशा में उत्पादन के साधनों के प्रतिफल के लिए प्राप्त मुद्रा का बहाव (प्रवाह) होता है।

आय के चक्राकार प्रवाह में वस्तुएँ/सेवाएँ उनके प्रयोग की अवधि के आधार पर वर्गीकृत की जाती हैं जो निम्न हैः–

1. उपभोग एवं पूँजीगत वस्तुएँ

उपभोग वस्तुएँ :– वे सभी वस्तुएँ जिनका पूरा का पूरा उपभोग उनको खरीदने के बाद ही हो जाता है। उपभोग वस्तुओं के उपभोग द्वारा समाज में लोग अपनी आवश्यकताएँ संतुष्ट करते हैं। उपभोग–वस्तुएँ अन्य वस्तुओं के उत्पादन में काम में नहीं ली जाती है। सामान्यतः व्यावसायिक फर्में सुपुर्दगी के लिए तैयार वस्तुओं व सेवाओं का भण्डारण करके रखते हैं। उपभोग–वस्तुएँ ही अन्तिम–वस्तुएँ होने के कारण राष्ट्रीय आय की गणना के लिए इनके मूल्यों का समावेश किया जाता है। उपभोग वस्तुओं व सेवाओं के उदाहरण निम्न हैं– जैसे खाने–पीने की चीजें, कपड़े, वाहन, रेड़ियो, टेलिविजन व आपकी कक्षा की पुस्तकें इत्यादि। उपभोग वस्तुओं में सेवाएँ, गैर–टिकाउ व टिकाउ वस्तुएँ सम्मिलित होती हैं। कई बार टिकाउ उपभोग–वस्तुएँ व्यावसायिक उपयोग में लेने की स्थिति में पूँजीगत वस्तुएँ कहलाती हैं।

पूँजीगत वस्तुएँ :– उत्पादन में सहायता करने वाले वे साधन (वस्तुएँ) जो टिकाउ होते हैं, पूँजीगत वस्तुएँ कहलाती हैं। पूँजीगत वस्तुओं द्वारा कई वर्ष तक उत्पादन किया जा सकता हैं। मशीन, औजार, उपकरण, भवन, बाँध, नहर, बिजली बनाने के संयन्त्र व बिजली की लाइनें इत्यादि पूँजीगत वस्तुओं पर एक देश का विकास निर्भर करता है।

2. अन्तिम एवं मध्यवर्ती वस्तुएँ

अन्तिम वस्तुएँ :– वे सभी वस्तुएँ/सेवाएँ जिनका उपभोग या उत्पादन में उपयोग किया जा सकता है। जैसे तैयार भोजन का एक उपभोक्ता उपभोग करता है। इसी प्रकार एक उत्पादक द्वारा एक पम्पसेट या ट्रेक्टर का केवल उपयोग ही किया जाता है। अर्थात कच्चे माल या मध्यवर्ती वस्तुओं के रूप में प्रयोग नहीं किया जाता है। इस प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं को अन्तिम वस्तुएँ कहते हैं।

मध्यवर्ती वस्तुएँ :– मध्यवर्ती वस्तुएँ सामान्यतः अर्द्ध–निर्मित वस्तुएँ अथवा कच्चे माल के रूप में होती हैं। इनमें सभी प्रकार की अर्द्ध–निर्मित वस्तुएँ सम्मिलित की जा सकती है। मध्यवर्ती वस्तुओं को उत्पादन–प्रक्रिया के एक या अधिक चरणों/सोपानों से होकर निकलने के बाद अन्तिम वस्तु में बदला जाता है। पहनने हेतु तैयार कपड़ों के लिए रूई, घागा इत्यादि मध्यवर्ती वस्तुएँ या अर्द्ध–निर्मित वस्तुएँ होती हैं।

3. सकल निवेश एवं शुद्ध निवेश :–

इसी प्रकार आय के चक्राकार प्रवाह व राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित कतिपय महत्वपूर्ण अवधारणाएँ निम्न हैं:– निवेश उत्पादन के लिए किया जाने वाला व्यय होता है। जब एक उत्पादक नकद धन व्यय करता है तब वह मौद्रिक निवेश कहलाता है। मौद्रिक निवेश द्वारा नयी मशीन, नया भवन, नया बाँध, नयी नहर इत्यादि बनाने पर वह वास्तविक निवेश में बदल जाता है। वास्तविक निवेश से ही उत्पादन व उत्पादन–क्षमता में सुधार होता है। निवेश दो प्रकार का होता है जैसे:– सकल निवेश व शुद्ध

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निवेश।

एक निश्चित अवधि (सामान्यतः एक वर्ष) में उत्पादक–पूँजीगत वस्तुओं पर जो व्यय करता है उसे सकल निवेश कहते हैं। सकल निवेश के उदाहरण हैं– नयी मशीन, नया भवन, नया बाँध, नयी नहर, नया बिजली बनाने का संयन्त्र व बिजली की लाइनें इत्यादि की कुल मात्रा में होने वाली वृद्धि। पहले से काम में ली जा रही पुरानी मशीन, पुराना भवन, पुराना बाँध, पुरानी नहर पर मरम्मत व्यय इत्यादि भी सकल निवेश में सम्मिलित होते हैं।

सकल निवेश = शुद्ध निवेश + मूल्यह्रास

शुद्ध निवेश :– एक निश्चित अवधि (सामान्यतः एक वर्ष) में होने वाले सकल निवेश में से भौतिक पूँजीगत वस्तुओं की घिसावट की राशि को घटाया जाता है। भौतिक पूँजीगत वस्तुओं की घिसावट अर्थात् मूल्यह्रास को घटाकर शेष बचा हुआ निवेश ही शुद्ध निवेश कहलाता हैं। शुद्ध निवेश में जब वृद्धि होती है तब वास्तविक रूप में उत्पादन व उत्पादन–क्षमता में सुधार होता है।

शुद्ध निवेश = सकल निवेश – मूल्यह्रास

मूल्यह्रास :– पूँजीगत वस्तुओं में घिसावट व टूट–फूट को मूल्यह्रास कहा जाता है। घिसावट के कारण मशीन, भवन, बाँध, नहर, बिजली बनाने के संयन्त्रों की क्षमता गिर जाती है। पूँजीगत वस्तुओं की कुल क्षमता/मात्रा में होने वाली कमीं उत्पादन में उपयोग करने के कारण होती है। इस प्रकार पूँजीगत वस्तुओं की टूट–फूट/ घिसावट से हानि होती है। अतः मूल्यह्रास एक प्रकार की हानि होती है। मूल्यह्रास की गणना सकल निवेश में से शुद्ध निवेश घटा कर करते हैं।

मूल्यह्रास = सकल निवेश – शुद्ध निवेश

घरेलू–सीमा व सामान्य निवासियों की अवधारणा

घरेलू–सीमा की अवधारणा:– राष्ट्रीय आय की गणना में घरेलू–सीमा की अवधारणा महत्वपूर्ण मानी जाती है। घरेलू–सीमा की अवधारणा का अर्थ एक देश की भौगोलिक–सीमा के भीतर की जाने वाली आर्थिक–क्रियाओं से होता है। अर्थात घरेलू–सीमा की अवधारणा के अर्न्तगत एक देश की भौगोलिक–सीमा के बाहर की आर्थिक–क्रियाएँ सम्मिलित नहीं की जाती हैं।

सामान्य निवासियों की अवधारणा:– सामान्य निवासियों का आशय वे लोग जिन्हें किसी देश की नागरिकता मिली हुई है। राष्ट्रीय आय की गणना में एक देश के सामान्य निवासियों की क्रियाओं से अर्जित आय ही सम्मिलित की जाती है। चूँकि एक देश में सामान्य निवासियों व अनिवासियों की आर्थिक क्रियाओं में भेद किया जाता है। इस प्रकार सामान्य निवासियों की अवधारणा का राष्ट्रीय आय की गणना हेतु बहुत महत्व होता है।

विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय की अवधारणाः–

एक देश के आयात व निर्यात का राष्ट्रीय आय की गणना में बहुत महत्व होता है। आयात व निर्यात के द्वारा राष्ट्रीय आय की मात्रा व दिशा का पता चलता है। निर्यात की तुलना में आयात अधिक होने पर विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय ऋणात्मक होती है। आयात पर निर्यात की अधिकता होने पर विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय होती है। अर्थात् विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय आयात व निर्यातों को घटाकर उनके अन्तर द्वारा ज्ञात की जाती हैं।

इस प्रकार विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय = निर्यात – आयात । वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय (NFIA) को घरेलु साधनों द्वारा विदेशों में अर्जित आय में से विदेशी साधनों द्वारा देश में अर्जित आय के अन्तर से ज्ञात किया जाता है।

विशुद्ध परोक्ष करों की अवधारणा :–

एक देश में होने वाले उत्पादन का मूल्यांकन बाजार कीमत (MP) पर किया जाता है। उत्पादन के बाजार कीमत पर मूल्यांकन हेतु उत्पादन साधन–लागत (FC) व अप्रत्यक्ष कर, (Indirect Tax) को जोड़ा जाता है। अप्रत्यक्ष कर, (Indirect Tax) जैसे वस्तु व सेवा कर (GST), को साधन–लागत (FC) में जोड़ा तथा उसमें से सरकार द्वारा दिये गये अनुदान (Subsidy) को घटाया जाता है। इस प्रकार विशुद्ध परोक्ष कर को सकल अप्रत्यक्ष कर, (Indirect Tax) में से अनुदान (Subsidy) घटाकर ज्ञात किया जाता है।

शुद्ध अप्रत्यक्ष कर **(Net Indirect Tax)** = सकल अप्रत्यक्ष कर **(Gross Indirect Tax)** – अनुदान **(Subsidy)**

वास्तविक जगत में दो क्षेत्रों के बजाय चार क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय का चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) होता है। राष्ट्रीय आय के स्तर, रोजगार के स्तर, देश में बचत का स्तर, देश में विनियोग का स्तर, सामान्य कीमत–का स्तर, आर्थिक–वृद्धि व विकास में उतार व चढ़ाव इत्यादि का अध्ययन व्यापक अथवा समग्र स्तरों के रूप में समष्टिगत–अर्थशास्त्र में किया जाता है। राष्ट्रीय आय विभिन्न प्रकार की उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं से उत्पन्न होती है। जैसे– पशुपालन, कृषि, उद्योग, व्यापार एवं अन्य वाणिज्यिक क्रियाएँ।

महत्वपूर्ण बिन्दु

राष्ट्रीय आय समय के दो बिन्दुओं के बीच की अवधि में एक देश की अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित प्रवाह (Flow) होता है। इसी तरह समय के दो बिन्दुओं के बीच देश की सम्पत्तियों का स्तर (भण्डार या स्कन्ध अर्थात स्टॉक) **(Stock)** कहा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जाता है।

आय के चक्राकार प्रवाह के विचारों का पहली बार फ्रांस के प्रकृतिवादी–कृषि अर्थशास्त्री फ्रेंकायज क्वीजने (Francois Quesney) ने सन् 1758 के द्वारा किया गया।

एक सरल आय के चक्राकार प्रवाह के मॉडल में निम्न दो क्षेत्र होते हैं–1. प्रथम क्षेत्र–परिवार व 2. द्वितीय क्षेत्र–व्यावसायिक–फर्में।

एक देश में उत्पादन के साधन परिवार से व्यावसायिक–फर्मों की ओर/तरफ व साधन–प्रतिफल व्यावसायिक–फर्मों से परिवार ओर/तरफ जाते हैं। इस प्रकार परिवार का व्यय व्यावसायिक–फर्मों की आय व व्यावसायिक–फर्मों का व्यय परिवार की आय का निर्माण करते हैं।

वे सभी वस्तुएँ/सेवाएँ जिनका पूरा का पूरा (प्रयोग) उपभोग उनको खरीदने के बाद ही हो जाता है। अर्थात उपभोग वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग केवल एक वित्तीय वर्ष में ही किया जा सकता है।

उत्पादन में सहायता करने वाले वे साधन (वस्तुएँ) जो टिकाउ होते हैं, पूँजीगत वस्तुएँ कहलाते हैं। पूँजीगत वस्तुओं द्वारा कई वर्ष तक उत्पादन किया जा सकता हैं।

मध्यवर्ती वस्तुएँ सामान्यतः अर्द्ध–निर्मित वस्तुएँ अथवा कच्चे माल के रूप में होती हैं। मध्यवर्ती वस्तुओं को उत्पादन–प्रक्रिया के एक या अधिक चरणों/सोपानों से होकर निकलने के बाद अन्तिम वस्तु में बदला जाता है।

निवेश उत्पादन के लिए किया जाने वाला व्यय होता है। जब एक उत्पादक नकद धन व्यय करता है तब वह मौद्रिक निवेश कहलाता है। मौद्रिक निवेश द्वारा नयी मशीन, नया भवन, नया बाँध, नयी नहर इत्यादि बनाने पर वह वास्तविक निवेश में बदल जाता है।

निवेश दो प्रकार का होता है जैसेः– सकल निवेश व शुद्ध निवेश।

एक निश्चित अवधि (सामान्यतः एक वर्ष) में उत्पादक–पूँजीगत वस्तुओं पर खर्च सकल निवेश तथा भौतिक पूँजीगत वस्तुओं की घिसावट अर्थात् मूल्यह्रास को घटाकर शेष बचा हुआ निवेश ही शुद्ध निवेश कहलाता हैं।

पूँजीगत वस्तुओं में घिसावट को मूल्यह्रास कहा जाता है।

घरेलू–सीमा की अवधारणा का अर्थ एक देश की भौगोलिक–सीमा के भीतर की जाने वाली आर्थिक–क्रियाएँ।

राष्ट्रीय आय की गणना में एक देश के सामान्य निवासियों की क्रियाओं से अर्जित आय ही सम्मिलित की जाती है।

विदेशों से प्राप्त विशुद्ध साधन आय आयात व निर्यातों को घटाकर उनके अन्तर द्वारा ज्ञात की जाती हैं।

वास्तविक जगत में दो क्षेत्रों के बजाय चार क्षेत्रों में राष्ट्रीय आय का चक्राकार प्रवाह होता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्न में से शुद्ध अप्रत्यक्ष कर ज्ञात किया जा सकता है –
   (अ) सकल अप्रत्यक्ष कर – अनुदान
   (ब) सकल अप्रत्यक्ष कर – ब्याज
   (स) सकल अप्रत्यक्ष कर – लाभ
   (द) सकल अप्रत्यक्ष कर + अनुदान
2. आय के चक्राकार प्रवाह के विचार का प्रतिपादन किसने किया ?
   (अ) फ्रेंकायज क्वीजने ने
   (ब) कार्ल मार्क्स ने
   (स) साइमन कुजनेट ने
   (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं
3. सकल निवेश में से क्या घटाने पर निवल निवेश प्राप्त होगा–
   (अ) शुद्ध ब्याज (ब) विनियोग
   (स) मूल्यह्रास (द) लाभ
4. उपभोग वस्तु का उदाहरण नहीं हैं –
   (अ) सब्जियाँ (ब) कपड़े
   (स) ब्रेड (द) सिंचाई के लिए पम्प–सेट
5. पूँजीगत वस्तुओं के उदाहरण नहीं हैं –
   (अ) मशीनें, भवन व ट्रेक्टर
   (ब) बाँध व नहरें
   (स) बिजली–संयन्त्र व बिजली की तन्त्र
   (द) खाने–पीने की चीजें व कपड़े

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. प्रवाह किसे कहते हैं ?
2. भण्डार या स्कन्ध किसे कहते हैं ?
3. राष्ट्रीय आय का चक्राकार प्रवाह क्या है ?
4. आय के चक्राकार प्रवाह के मॉडल के दो क्षेत्र कौन–कौन से होते हैं ?
5. मध्यवर्ती वस्तु से क्या अभिप्राय हैं ?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. स्टॉक एवं प्रवाह में अन्तर कीजिए।
2. उपभोग वस्तुओं व पूँजीगत वस्तुओं में अन्तर का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. सकल और शुद्ध निवेश को समझाइये।
4. मूल्यह्रास के आशय को संक्षेप में समझाइये।
5. सामान्य निवासियों की अवधारणा को समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. आय कें चक्राकार प्रवाह को उचित रेखाचित्रों की सहायता से विस्तार पूर्वक समझाइये।
2. निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ।

   अ. उपभोग वस्तुऐं

   ब. पूंजीगत वस्तुऐं

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	अ	स	द	द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 15

राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित सम्मुच्चय
(National Income And Its Related Aggregates)

अर्थशास्त्र में एक देश के आय स्तर (राष्ट्रीय आय) का अध्ययन बहुत महत्वपूर्ण माना जाता है। आर्थिक वृद्धि की गणना के लिए राष्ट्रीय आय का सबसे पहले प्रयोग प्रो. साइमन कुजनेट्स ने 1934 में किया। भारत में भी राष्ट्रीय आय का अध्ययन व आंकलन कई विद्वानों द्वारा किया गया है। स्वतंत्रता से पूर्व भारत में राष्ट्रीय आय के अनुमान दादा भाई नौरोजी(1868), विलियम डिग्बी(1899), फिण्डले सिराज (1911, 1922 व 1931), शाह व खम्भर(1921), डॉ. वी. के. आर. वी. राव(1925– 1929), व सी. आर. देसाई (1931–1940) के द्वारा लगाये गये थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय आय के अनुमान के लिए एक राष्ट्रीय आय समिति का गठन किया गया। राष्ट्रीय आय समिति का गठन प्रो. प्रफुल्ल चन्द्र महलनोबिस (1949) की अध्यक्षता में हुआ। उक्त समिति के सदस्य–सलाहकार प्रो. साइमन कुजनेट्स थे। 1956 से ही प्रतिवर्ष केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (CSO) द्वारा भारत की राष्ट्रीय आय के अनुमान प्रकाशित किये जाते हैं।

राष्ट्रीय आय का अर्थ एवं परिभाषाएँ– राष्ट्रीय आय को समझने के लिए इसकी परिभाषाओं पर विचार करना आवश्यक है। राष्ट्रीय आय की प्रमुख परिभाषाओं में मार्शल, पीगू, फिशर व साइमन कुजनेट्स की परिभाषाएँ महत्वपूर्ण मानी जाती हैं।

मार्शल के अनुसार–''किसी एक देश का श्रम तथा पूँजी उसके प्राकृतिक साधनों पर क्रियाशील होकर प्रतिवर्ष भौतिक वस्तुओं व अभौतिक वस्तुओं का एक शुद्ध योगफल पैदा करते है जिसमें सभी प्रकार की सेवाएं सम्मिलित होती हैं। यही उस देश की वास्तविक शुद्ध वार्षिक आय या देश का राजस्व या राष्ट्रीय लाभाशं है।''

पीगू के अनुसार–''राष्ट्रीय आय समाज की वस्तुपरक आय का वह भाग है जो कि मुद्रा में मापा जा सकता है और इसमें विदेशों से प्राप्त आय भी सम्मिलित होती है।''

फिशर के अनुसार–''राष्ट्रीय लाभांश अथवा आय में केवल अन्तिम उपभोक्ताओं द्वारा प्राप्त सेवाएं सम्मिलित होती हैं, चाहे वे भौतिक या मानवीय वातावरण से प्राप्त हों। इस प्रकार एक पियानो या ओवरकोट जो मेरे लिए इस वर्ष बनाया गया है, इस वर्ष की आय का भाग नहीं है वरन् पूँजी में वृद्धि है। केवल इन वस्तुओं द्वारा मेरे लिए इस वर्ष की गई सेवाएं ही आय है।''

साइमन कुजनेट्स द्वारा दी गयी निम्न परिभाषा को आधुनिक मानते हैं :– 'राष्ट्रीय आय वस्तुओं व सेवाओं का वह शुद्ध उत्पादन है जो एक वर्ष की अवधि में देश की उत्पादन–प्रणाली से अन्तिम उपभोक्ताओं के हाथों में पहुँचता है।' सरल शब्दों में 'एक वित्तीय–वर्ष की अवधि में देश के निवासियों द्वारा उत्पादित अन्तिम उपभोग्य–वस्तुओं व सेवाओं की शुद्ध मात्रा के प्रचलित बाजार कीमत पर उस देश की मुद्रा में व्यक्त मूल्यों के योग को राष्ट्रीय आय का प्रवाह कहते हैं। यहाँ अन्तिम उपभोग्य–वस्तुओं व सेवाओं का अभिप्राय उन वस्तुओं व सेवाओं से होता है जिनका उपभोग एक उपभोक्ता अथवा एक उत्पादक द्वारा किया जाता है।

मार्शल ने एक देश में एक वर्ष की समय–अवधि में राष्ट्रीय आय को भौतिक वस्तुओं व अभौतिक वस्तुओं (सेवाओं) के शुद्ध उत्पादन के योग के रूप में परिभाषित किया है। पीगू ने राष्ट्रीय आय को उत्पादन के मुद्रा में मापनीय मूल्य के योग के रूप में परिभाषित किया है। फिशर ने उत्पादन के स्थान पर उपभोग को राष्ट्रीय आय की गणना का आधार बनाया। फिशर ने राष्ट्रीय आय को एक वर्ष की समय–अवधि में भौतिक वस्तुओं व अभौतिक वस्तुओं (सेवाओं) के शुद्ध उत्पादन में से वह भाग जिसे सेवा के रूप में प्राप्त किया गया अर्थात जिस भाग का उपभोग हुआ उसी को राष्ट्रीय आय माना है।

राष्ट्रीय आय की विशेषताएँ– उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय की निम्न विशेषताएँ हैं–

1. राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध एक देश की अर्थव्यवस्था से होता है।
2. राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध एक निश्चित अवधि, जो सामान्यतः एक वित्तीय–वर्ष की होती है, (भारत में एक अप्रेल से अगले वर्ष के 31 मार्च तक)।
3. राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध एक देश के निवासियों की आर्थिक–क्रियाओं से होता है किन्तु वर्तमान में देश के भौगोलिक क्षेत्र में निवासियों और गैर निवासियों की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

आर्थिक–क्रियाओं का अध्ययन भी इसमें शामिल होता है।

4. राष्ट्रीय आय का सम्बन्ध उत्पादक आर्थिक–क्रियाओं से होता है अर्थात इसमें अनुत्पादक–क्रियाओं को सम्मिलित नहीं किया जाता है।
5. राष्ट्रीय आय की गणना का सम्बन्ध अन्तिम उपभोग्य–वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन से होता है अर्थात इसमें अन्तरिम (अर्द्ध निर्मित या मध्यवर्ती) वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन को सम्मिलित नहीं किया जाता है।
6. राष्ट्रीय आय की गणना प्रचलित बाजार कीमत पर की जाती है।
7. राष्ट्रीय आय की गणना देश की मुद्रा में व्यक्त की जाती है।
8. राष्ट्रीय आय की गणना विभिन्न–वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों का योग होती है।
9. राष्ट्रीय आय एक प्रकार का प्रवाह होता है तथा यह एक प्रकार का भण्डार/स्कन्ध (Stock) नहीं होता है।
10. राष्ट्रीय आय की गणना शुद्ध मात्रा के अनुसार की जाती है अर्थात इसमें से घिसावट (मूल्यह्रास) को घटाया जाता है।

राष्ट्रीय आय की विभिन्न अवधारणाएँ

राष्ट्रीय आय की गणना दो आधारों पर की जाती है–

1. भौगोलिक आधार पर 2. राजनैतिक आधार पर

1. भौगोलिक आधार पर–

घरेलू आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना करने हेतु एक देश की भौगोलिक–सीमा के आधार पर अध्ययन किया जाता है। एक देश की भौगोलिक–सीमा में निवासियों व विदेशी निवासियों, कम्पनियों के द्वारा होने वाले कुल उत्पादन के मूल्यों को जोड़ते हुए सकल घरेलू–उत्पाद (GDP) का स्तर ज्ञात किया जाता है।

2. राजनैतिक आधार पर–

राष्ट्रीय आय की गणना राजनैतिक आधार पर करने के लिए देश की नागरिकता पर विचार करते हैं। एक देश की नागरिकता जिनके पास होती है, उन लोगों के द्वारा भौगोलिक–सीमा में व दूसरे देशों की भौगोलिक–सीमा में अर्जित आय पर विचार होता है। इस प्रकार एक देश के निवासियों (नागरिकों) द्वारा भौगोलिक–सीमा में व दूसरे देशों की भौगोलिक–सीमा में किये गये उत्पादन के मूल्यों को जोड़ते हैं। एक देश के निवासियों (नागरिकों) ने कहीं भी उत्पादन किया हो, उसकी सहायता से सकल राष्ट्रीय–उत्पाद (GNP) का स्तर ज्ञात किया जाता है। उक्त विवरण निम्न चित्र से स्पष्ट हैं–

राष्ट्रीय आय से सम्बन्धित कई अवधारणाएँ हैं जिनकी विवेचना निम्नानुसार है:–

1. बाजार कीमत पर सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}):–

एक देश की भौगोलिक–सीमा के भीतर देश के निवासियों व विदेशी निवासियों, कम्पनियों के द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों का योग और अर्द्धनिर्मित वस्तुओं व सेवाओं के भण्डार (Inventory) में वृद्धि सकल घरेलू उत्पाद (GDP_{MP}) कहलाता है।

$$GDP_{MP} = C+I+G+(X-M)$$

जहाँ:– C = उपभोग व्यय
I = विनियोग व्यय
G = सरकारी व्यय
X-M = शुद्ध निर्यात

(अ) बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{MP}) बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद ज्ञात करने के लिए बाजार कीमत पर सकल घरेलू–उत्पाद में से से घिसावट (मूल्यह्रास) को घटाया जाता है।

$$NDP_{MP} = GDP_{MP} - D$$

जहाँ:– D = घिसावट है।

(ख) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद (NDP_{FC}) साधन लागत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद ज्ञात करने के लिए बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू उत्पाद में से से अप्रत्यक्ष कर को घटाया जाता है और अनुदानों को जोड़ा जाता है।

$$NDP_{FC} = NDP_{MP} - IT + S$$

जहाँ:– IT = अप्रत्यक्ष कर
S = अनुदान

2. बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय–उत्पाद (GNP_{MP}):–

सकल राष्ट्रीय–उत्पाद एक देश की भौगोलिक–सीमा में में एक वर्ष की अवधि में देश के निवासियों व विदेशों में उसी देश के निवासियों, कम्पनियों के द्वारा उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व

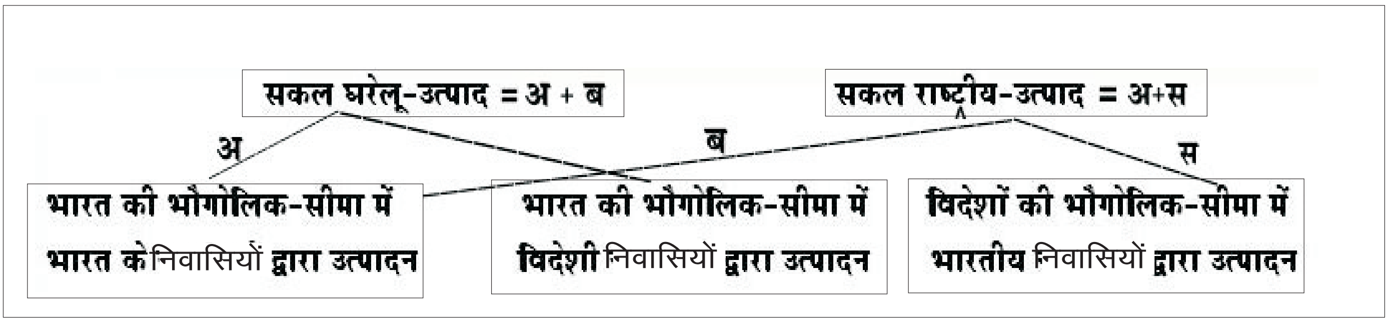

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सेवाओं के मूल्यों का मौद्रिक माप है। अर्द्धनिर्मित वस्तुओं व सेवाओं के भण्डार (Inventory) में वृद्धि सकल राष्ट्रीय–उत्पाद (GNP_{MP}) कहलाता है। वास्तविक उत्पादन को ज्ञात करना है तो सकल राष्ट्रीय–उत्पाद को कीमत परिवर्तनों के लिए समायोजित करना पड़ता है। सकल राष्ट्रीय–उत्पाद में निम्न तत्वों को शामिल किया जाता है।

$$GNP_{MP} = GDP_{MP} + NFIA$$

जहाँ:– NFIA = विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय,
X-M = शुद्ध निर्यात

या $GNP_{MP} = C+I+G+(X-M)+NFIA$

1– एक वर्ष की अवधि में उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्य जिन्हें घरेलु क्षेत्र द्वारा उपभोग किया जाता है जिसे C द्वारा दर्शाया जाता है।

2–एक वर्ष की अवधि में उत्पादित पूँजीगत वस्तुएं जिसमें निर्मित व अर्द्धनिर्मित वस्तुओं की माल सूचियां, स्थिर पूँजी निर्माण आदि शामिल होता है जिसे I द्वारा दर्शाया जाता है।

3–सरकार द्वारा वस्तुओं व सेवाओं पर किया गया व्यय अथवा चुकाया गया मूल्य जिसे G द्वारा दर्शाया जाता है।

4– अपने भौतिक या मानवीय साधनों द्वारा अन्य देशों में अर्जित आय और इसी प्रकार अन्य देशों के भौतिक या मानवीय साधनों द्वारा अपने देश में अर्जित आय का अंतर शुद्ध साधन आय कहलाती है। विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय को NFIA द्वारा दर्शाया जाता है।

5–इस प्रकार घरेलू निर्यातों के मूल्य में से विदेशी आयातों के मूल्य को घटाने पर शुद्ध निर्यात मूल्य प्राप्त होता है। जिसे X-M द्वारा दर्शाया जाता है।

3. बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (**NNP_{MP}**):–

वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन में स्थिर पूँजी का उपयोग होता है उत्पादन प्रक्रिया के दौरान मशीनें घिस जाती हैं, अथवा उनमें टूट–फूट हो जाती है। कभी–कभी आविष्कार के कारण पुरानी मशीनें अनुपयोगी हो जाती हैं। इस प्रकार संसाधनों की उत्पादन–क्षमता में कमी या ह्रास होने के कारण सकल राष्ट्रीय–उत्पाद (GNP_{MP}) में से इस मूल्य को घटा दिया जाता है। बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद गणना के द्वारा एक देश की अर्थव्यवस्था का सही–सही आंकलन किया जा सकता है। इस प्रकार घिसावट (मूल्यह्रास) को घटाकर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{MP}) की गणना निम्न प्रकार करते हैं–

$$NNP_{MP} = GNP_{MP} - D$$

जहाँ:– D = घिसावट है।

4. साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (**NNP_{FC}**):–

एक देश में उत्पादित होने वाले वस्तु/सेवा के उत्पादन के लिए साधनों पर किया गया व्यय साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद होता है। जैसे– श्रम की लागत–मजदूरी, पूँजी के उपयोग की लागत–ब्याज, भूमि के उपयोग की लागत–लगान, उद्यमशीलता के उपयोग की लागत–लाभ इत्यादि के रूप कुल लागत कहलाती है। सरकार द्वारा लगाया गया अप्रत्यक्ष–कर (Indirect Tax) घटाते हैं व सरकार द्वारा दी गई छूट या अनुदान (Subsidy) जोड़ कर साधन–लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद की गणना की जाती है।

$$NNP_{FC} = NNP_{MP} - IT + S$$

जहाँ:– IT = अप्रत्यक्ष कर
S = अनुदान

या $NNP_{FC} = R+I+W+P+NFIA$

जहाँ:– R = लगाान
I = ब्याज
W = मजदूरी
P = लाभ

> एक देश की राष्ट्रीय–आय का सर्वाधिक उपयुक्त माप उसकी साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{FC}) ही होता है।

5 निजी आय (**Private Income**) :–

निजी आय में सभी निजी क्षेत्र द्वारा उत्पादित आय अथवा अन्य किन्हीं स्त्रोतों से प्राप्त आय एवं निगमों द्वारा रखी गई आय शामिल होती है। साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद में जिन मदों को शामिल किया जाता है वे हैं सरकार व विदेशों से प्राप्त हस्तांतरण भुगतान (बेरोजगारी भत्ता, पेंशन), राष्ट्रीय ऋणों पर ब्याज, उपहार और अप्रत्याशित लाभ। जबकि जिन मदों को हम घटाते हैं वे हैं सरकारी उद्यमों और सम्पत्ति से प्राप्त आय, गैर विभागीय बचतें और सामाजिक सुरक्षा अंशदान (भविष्य निधि, जीवन बीमा), इत्यादि। निजी आय निम्न प्रकार से ज्ञात की जाती है–

Private Income = (NNP_{FC})+TP+IPD-CSS-PPU

जहाँ:– TP = सरकार व विदेशों से प्राप्त हस्तांतरण भुगतान

IPD = सार्वजनिक ऋणों पर ब्याज
CSS = सामाजिक सुरक्षा अंशदान
PPU = सार्वजनिक उपक्रमों के अतिरेक लाभ

6. व्यक्तिगत आय (**PI**):–

व्यक्तिगत आय उन सभी आय का योग होती है जो वास्तव में व्यक्तियों अथवा घरेलू क्षेत्र द्वारा प्राप्त होती है। व्यक्तिगत आय को निम्नानुसार ज्ञात किया जाता है–

व्यक्तिगत आय (**PI**) = NNP_{FC} - अवितरित निगम लाभ - निगम कर-सामाजिक सुरक्षा अंशदान + हस्तांतरण भुगतान +

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सार्वजनिक ऋण पर ब्याज

(PI) = NNP_{FC}-UCP-CT-CSS+TP+IPD

जहाँ:– UCP=अवितरित निगम लाभ

CT= निगम कर

CSS = सामाजिक सुरक्षा अंशदान

TP = हस्तांतरण भुगतान

IPD = सार्वजनिक ऋण पर ब्याज

हस्तान्तरण भुगतान वे भुगतान हैं जो किसी सेवा की ऐवज में नहीं दिये जाते, अपितु सामाजिक सुरक्षा के तहत कमजोर वर्ग को सरकार की और से प्रदान किये जाते हैं। जैसे – पेंशन, बेरोजगारी भत्ता, विकलांगों को सहायता। इसमें क्रय शक्ति का हस्तान्तरण एक समुह से दूसरे समुह को होता है।

7. व्यक्तिगत खर्च योग्य आय (PDI):–

एक व्यक्ति की खर्च योग्य आय (PDI) व्यक्तिगत आय में से व्यक्तियों के आयकर व व्यक्तियों की फीस, जुर्माने घटाकर ज्ञात की जाती है–

व्यक्तिगत खर्च योग्य आय **(PDI)** = व्यक्तिगत आय (PI) - (व्यक्तियों के आयकरं) -(व्यक्तियों की फीस, जुर्माने)

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय **(PCI)**:– किसी देश की राष्ट्रीय–आय के साथ–साथ उसकी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (PCI) का भी बहुत महत्व होता है। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय (PCI) का मूल्यांकन राष्ट्रीय आय को किसी देश की जनसंख्या का भाग देकर निम्नानुसार ज्ञात किया जाता है–

प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय **(PCI)** = राष्ट्रीय आय (NI) में देश की जनसंख्या का भाग देने पर प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय प्राप्त होती है।

$$PCI = \frac{\text{राष्ट्रीय आय}}{\text{जनसंख्या}}$$

8 राष्ट्रीय खर्चयोग्य आय (National Dispsable Income)

:– एक देश की अर्थव्यवस्था के लोगों को विभिन्न वस्तुओं व सेवाओं की उपलब्धता का स्तर ज्ञात करते हुए जीवन–स्तर का आंकलन किया जा सकता है। सामान्यतः वस्तुओं व सेवाओं की उपलब्धता का स्तर राष्ट्रीय खर्चयोग्य–आय **(National Dispsable Income)** की गणना द्वारा किया जा सकता है। राष्ट्रीय खर्चयोग्य–आय की गणना करते समय शुद्ध अप्रत्यक्ष कर (Net Indirect Tax) व शेष विश्व से शुद्ध हस्तान्तरण आय (Net Transfer Earning from Rest of the World) को भी सम्मिलित करते हैं। शुद्ध अप्रत्यक्ष कर व शेष विश्व से शुद्ध हस्तान्तरण आय के द्वारा सरकारों की इच्छा अनुसार खर्च करने की क्षमता बढ़ती है इसलिए इनको राष्ट्रीय खर्चयोग्य–आय की गणना करते समय सम्मिलित करते हैं। एक व्यक्ति की खर्चयोग्य–आय (PDI) की भाँति राष्ट्रीय खर्चयोग्य–आय की संरचना के निम्न घटक होते हैं:– 1. सरकारी अन्तिम उपभोग–व्यय, 2. निजी अन्तिम उपभोग–व्यय व 3. बचतें।

NDI = NI + NIT + NTEW

जहाँ:– NIT = Net Indirect Tax, NI = National Income

NTEW=Net Transfer Earning from Rest of the World

भारत में राष्ट्रीय आय की गणना : एक काल्पनिक संख्यात्मक उदाहरणः– एक देश की राष्ट्रीय–आय की निम्न सूचनाओं के आधार पर राष्ट्रीय–आय के निम्न विभिन्न घटकों – बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद (NDP_{MP}), साधन लागत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद (NDP_{FC}), बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय–उत्पाद (GNP_{MP}), बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{MP}), साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{FC}), निजी आय (PI), व्यक्तिगत–आय (Per I), व्यक्तिगत खर्चयोग्य–आय (PDI व प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय–आय (PCI) की गणना कीजिए।

1. बाजार कीमत पर सकल घरेलू–उत्पाद (GDP_{MP}) = 4,00,000 करोड़ रू.
2. शुद्ध विदेशी–निर्यात से आय(X-M)= 10,000 करोड रू.
3. D घिसावट =10,000 करोड़ रू.
4. अप्रत्यक्ष–कर, I T= 10,000 करोड़ रू.
5. अनुदान S = 5,000 करोड़ रू.
6. देश की जनसंख्या= 100 करोड़
7. सरकारी विभागों जैसे रेल विभाग की आय = 10,000 करोड़ रू.
8. सरकारी गैर–विभाग जैसे स्टेट बैंक के लाभ = 10,000 करोड़ रू.
9. सरकारी कर्मचारियों द्वारा पेंशन इत्यादि हेतु चुकाया अंशदान= 5,000 करोड़ रू.
10. सरकार से व्यक्तियों को चालू वर्ष की प्राप्तियाँ = 5,000 करोड़ रू.
11. विदेशों से व्यक्तियों को चालू वर्ष की प्राप्तियाँ = 2,000 करोड़ रू.
12. सरकारी ऋणों पर ब्याज प्राप्तियाँ = 3,000 करोड़ रू.
13. निजी कम्पनी की बचतें = 10,000 करोड़ रू.
14. निजी कम्पनी के निगम–कर = 15,000 करोड़ रू.
15. व्यक्तियों के आयकर = 10,000 करोड़ रू.
16. व्यक्तियों की फीस = 4,000 करोड़ रू.
17. जुर्माने = 2,000 करोड़ रू.

संख्यात्मक उदाहरण का हलः–

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

1. बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद (NDP_{MP}) = (GDP_{MP}) – D = 4,00,000–10,000=3,90,000 करोड़ रू.
2. साधन लागत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद (NDP_{FC}) = (NDP_{MP}) – IT + S = 3,90,000 – 10,000 + 5000 = 3,85,000 करोड़ रू.
3. बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय–उत्पाद (GNP_{MP}) = (GDP_{MP}) + शुद्ध विदेशी–आय
   = 4,00,000 + 10,000=4,10,000 करोड़ रू.
4. बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{MP}) = (GNP_{MP}) - D = 4,10,000 – 10,000 = 4,00,000 करोड़ रू.
5. साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{FC}) = (NNP_{MP}) - IT+S = 4,00,000 – 10,000 + 5,000=3,95,000 करोड़ रू.
6. निजी आय (PI) = शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद (NNP_{FC}) - (सरकारी विभाग जैसे रेल विभाग की आय + गैर सरकारी विभाग जैसे बैंकों के लाभ + सरकारी कर्मचारियों द्वारा पेंशन इत्यादि हेतु चुकाया अंशदान)+ (सरकार से चालू वर्ष की प्राप्तियाँ + विदेशों से चालू वर्ष की प्राप्तियाँ + सरकारी ऋणों पर ब्याज प्राप्तियाँ) = 3,95,000 - (10,000+10,000 +5,000)+ (5,000+2,000 +3,000) = 3,80,000 करोड़ रू.
7. व्यक्तिगत–आय (PI) = निजी आय (PI) -(निजी कम्पनी की बचतें) - (निजी कम्पनी के निगम–कर)
   3,80,000–(10,000)–(15000) = 3,55,000 करोड़ रू.
8. व्यक्तिगत खर्चयोग्य–आय (PDI) = व्यक्तिगत–आय (Per I) - (व्यक्तियों के आयकरं) - (व्यक्तियों की फीस + जुर्माने) = 3,55,000–(10,000) – (4000) – (2000) = 3,39,000 करोड़ रू.
9. प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय–आय (PCI) = राष्ट्रीय–आय (NI) / देश की जनसंख्या

   = 3,95,000 करोड़ रू. / 100 करोड = 3,950 रू. प्रति व्यक्ति

राष्ट्रीय आय के माप की कठिनाइयाँ:–

राष्ट्रीय–आय का माप करते समय विभिन्न प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं। कुछ कठिनाइयाँ सैद्धान्तिक होती हैं। प्रमुख कठिनाइयाँ निम्न प्रकार हैं:–

1. स्वयं के रोजगार से प्राप्त आय की गणना कठिन कार्य है।
2. पुरानी, अन्तरिम व मध्यवर्ती वस्तुओं के मूल्यांकन की कठिनाइयाँ
3. अंशपत्र व ऋणपत्रों के बाजार के लेनदेन केवल कागजी क्रियाएँ होने से राष्ट्रीय–आय में नहीं गिनी जाती है।
4. गैर कानूनी क्रियाएँ व काला–बाजार की आर्थिक–क्रियाएँ भी सैद्धान्तिक कठिनाइयाँ पैदा करती हैं।
5. आराम के लिए अवकाश इत्यादि गणना कठिन कार्य है।

राष्ट्रीय आय का महत्व :–

राष्ट्रीय–आय का बहुत महत्व होता है। राष्ट्रीय–आय एक देश की अर्थव्यवस्था का दर्पण होता है। राष्ट्रीय–आय का मूल्यांकन एक देश की सही आर्थिक जानकारी प्रस्तुत करता है। सरकारों को राष्ट्रीय–आय की गणना के द्वारा उचित आर्थिक नीतियाँ बनाने में मदद मिलती है। देश में राष्ट्रीय–आय के आंकड़ो का उपयोग आय के समान वितरण, रोजगार में वृद्धि हेतु किया जाता है। एक देश के विभिन्न क्षेत्रों (Regional) की आर्थिक प्रगति में असमानता का पता राष्ट्रीय–आय की वितरण से चल सकता है। क्षैत्रीय–असमानता दूर करने हेतु नीति बनाने में राष्ट्रीय–आय के आंकड़ो का बहुत उपयोग होता है। संसार के देशों की तुलना करने के लिए भी राष्ट्रीय–आय का अध्ययन सहायक होता है।

राष्ट्रीय–आय के आंकड़ो के आधार पर कृषि व पशुपालन के समुचित विकास से सम्बन्धित आर्थिक नीतियाँ बनायी जाती है। प्रत्येक देश अपने उद्योग, व्यापार एवं अन्य वाणिज्यिक क्रियाओं के विस्तार का मूल्यांकन राष्ट्रीय–आय के आधार पर करता है। राष्ट्रीय–आय के आंकड़े शोध हेतु उपयोगी होते हैं। आर्थिक–नियोजन हेतु राष्ट्रीय–आय के स्तर व संरचना से उपयोगी जानकारियाँ मिलती है। राष्ट्रीय–आय की संरचना प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय–आय का आधार प्रदान करती है। प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय–आय सरकारों को आय के पुनः वितरण के लिए विभिन्न वित्तीय–सबलीकरण–कार्यक्रम (Financial-Empowerment Programme) अपनाने को प्रेरित करती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- ▷ आर्थिक वृद्धि की गणना के लिए राष्ट्रीय आय का सबसे पहले प्रयोग प्रो. साइमन कुजनेट्स ने 1934 में किया।
- ▷ स्वतंत्रता से पूर्व भारत में राष्ट्रीय आय के अनुमान दादा भाई नौरोजी(1868), विलियम डिग्बी(1899), फिण्डले सिराज(1911, 1922 व 1931), शाह व खम्भर(1921), डॉ. वी. के. आर. वी. राव(1925–1929), व सी. आर. देसाई(1931–1940) इत्यादि के द्वारा लगाये गये।
- ▷ केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन (CSO) द्वारा भारत की राष्ट्रीय आय के अनुमान सन् 1956 से ही प्रतिवर्ष प्रकाशित किये जाते हैं।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

- ▷ एक वित्तीय–वर्ष की अवधि (भारत में एक अप्रेल से अगले वर्ष के 31 मार्च तक) में देश के निवासियों द्वारा उत्पादित अन्तिम उपभोग्य–वस्तुओं व सेवाओं की शुद्ध मात्रा के प्रचलित बाजार कीमत पर उस देश की मुद्रा में व्यक्त मूल्यों के योग को राष्ट्रीय आय का प्रवाह कहते हैं।
- ▷ घरेलू आधार पर राष्ट्रीय आय की गणना करने हेतु एक देश की भौगोलिक–सीमा के आधार पर विचार किया जाता है।
- ▷ एक देश की नागरिकता जिनके पास होती है, उन लोगों के द्वारा भौगोलिक–सीमा में व दूसरे देशों की भौगोलिक–सीमा में अर्जित आय पर विचार होता है।
- ▷ राष्ट्रीय–आय के आंकड़ो के आधार पर समुचित विकास से सम्बन्धित आर्थिक नीतियाँ बनायी जाती है।
- ▷ प्रत्येक देश अपने उद्योग, व्यापार एवं अन्य वाणिज्यिक क्रियाओं के विस्तार का मूल्यांकन राष्ट्रीय–आय के आधार पर करता है। राष्ट्रीय–आय के आंकड़े शोध हेतु उपयोगी होते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय का विश्व में सबसे पहले प्रयोग किसने किया?
   (अ) विलियम डिग्बी ने
   (ब) साइमन कुजनेट्स ने
   (स) फिशर
   (द) डॉ. वी. के. आर. वी. राव
2. राष्ट्रीय आय को भौतिक व अभौतिक वस्तुओं (सेवाओं) के शुद्ध उत्पादन का योग किसने बताया ?
   (अ) मार्शल ने (ब) फिशर ने
   (स) साइमन कुजनेट्स ने (द) पीगू ने
3. निम्न में से कौन सा हस्तांतरण भुगतान नहीं है–
   (अ) पेंशन (ब) बेरोजगारी भत्ता
   (स) उपहार (द) वेतन
4. राष्ट्रीय आय की विशेषता नहीं हैं ?
   (अ) राष्ट्रीय आय एक वर्ष से सम्बन्धित होती है।
   (ब) राष्ट्रीय आय प्रवाह होती है।
   (स) इसकी गणना अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं से होती है।
   (द) अनुत्पादक क्रियाएँ शामिल होती हैं।
5. राष्ट्रीय–आय का उपयुक्त माप है –
   (अ) GNP (ब) GDP
   (स) NNP_{FC} (द) NNP_{MP}

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न

1. भारत की राष्ट्रीय आय के अनुमान प्रतिवर्ष किसके द्वारा प्रकाशित किये जाते हैं ?
2. भारत की राष्ट्रीय आय के अनुमान किस वर्ष से प्रकाशित किये जाते रहे हैं ?
3. अन्तिम उपभोग्य–वस्तुओं व सेवाओं का अभिप्राय संक्षेप में बताइये।
4. घरेलू आधार पर ज्ञात राष्ट्रीय आय की गणना को क्या कहा जाता है ?
5. देश की नागरिकता के आधार पर ज्ञात राष्ट्रीय आय की गणना को क्या कहा जाता है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न

1. निम्न को संक्षेप में समझाइयेः–
   बाजार कीमत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद, साधन लागत पर शुद्ध घरेलू–उत्पाद, बाजार कीमत पर सकल राष्ट्रीय–उत्पाद, बाजार कीमत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद, साधन लागत पर शुद्ध राष्ट्रीय–उत्पाद, निजी आय, व्यक्तिगत–आय, व्यक्तिगत खर्चयोग्य–आय, प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय–आय।
2. राष्ट्रीय–आय के महत्व को संक्षेप में समझाइये।
3. राष्ट्रीय–आय के मापन की कठिनाईयों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

निबन्धात्मक प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय व इसकी विशेषताओं को विस्तार से समझाइये।
   काल्पनिक संख्यात्मक उदाहरण की सहायता से राष्ट्रीय आय के विभिन्न घटकों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	अ	द	द	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 16

राष्ट्रीय आय का मापन
(Measurement of National Income)

राष्ट्रीय आय की गणना हेतु बहुत सावधानी की आवश्यकता होती है। राष्ट्रीय आय की सही गणना के लिए पूर्ण सैद्धान्तिक जानकारी होनी चाहिए। राष्ट्रीय आय की गणना के आधार पर आर्थिक–विश्लेषण, भावी अनुमान तथा नीति–निर्माण व तदनुसार प्रभावी क्रियान्वन निर्भर करता है। राष्ट्रीय आय की गणना की विधियाँ भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। पूर्व के अध्ययन से स्पष्ट है कि एक देश में राष्ट्रीय आय का चक्राकार प्रवाह (Circular Flow of Income) होता है। राष्ट्रीय आय के चक्राकार प्रवाह के कारण एक पक्ष का व्यय जैसे–परिवार, दूसरे पक्ष जैसे व्यवसाय, की आय बन जाता है। राष्ट्रीय आय की गणना की विभिन्न विधियों की जानकारी करनी चाहिए।

राष्ट्रीय आय की गणना की विधियाँ– राष्ट्रीय आय की गणना मुख्यतः तीन विधियों से की जाती है:–

1. उत्पादन विधि अथवा मूल्य–सम्वर्धन विधि
2. आय विधि
3. व्यय विधि।

राष्ट्रीय आय की गणना उत्पादन–विधि, आय–विधि और व्यय–विधि, किसी के भी द्वारा करने पर राष्ट्रीय आय के प्रवाह की मात्रा समान ही रहती है। यह समानता रहने का मूल कारण इस प्रकार है:–

एक देश में जितना भी उत्पादन होता है उसे बेचकर जो प्राप्त धनराशि ∈ उत्पादन में सहयोगी (योगदानकर्ता), उत्पादन के साधनों (श्रम, पूँजी, भूमि, तकनीक–संगठन व साहस) के मालिकों में वितरित वह समस्त राशि होकर उन सबकी आय ∈ देश के लोगों के पास जितनी आय होती है, उस सीमा तक उनका खर्च (व्यय) बन जाता है।

अतः देश का कुल उत्पादन देश की कुल आय हो जाती है। एक देश के लोगों के पास जितनी आय होती है उस सीमा तक वे खर्च (व्यय) कर सकते हैं। अतः देश की कुल आय देश के कुल व्यय के रूप में बदल जाती है। इस प्रकार :–

कुल राष्ट्रीय उत्पादन ≡ कुल राष्ट्रीय आय ≡ कुल राष्ट्रीय व्यय

(Gross National Product) ≡ (Gross National Income) ≡ (Gross National Expenditure)

1. उत्पादन विधि:– अधिकांश देशों की राष्ट्रीय आय की गणना उत्पादन–विधि से की जाती हैं। यह राष्ट्रीय आय में गणना की सबसे सरल विधि है। किसी भी देश की राष्ट्रीय आय की गणना उत्पादन–विधि से करने के लिए कृषि, खनिजों व उद्योगों एवं विभिन्न सेवा क्षेत्रों से उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं को शामिल किया जाता है। यह ज्ञात रहे कि यहाँ अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं का उपभोग एक उपभोक्ता अपनी दैनिक आवश्यकताओं हेतु अथवा एक उत्पादक द्वारा उत्पादन (निवेश) के लिए किया जाता है।

राष्ट्रीय आय की गणना हेतु उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं की एक विस्तृत–सूची बनाई जाती है। उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं की सूची में प्रत्येक वस्तु या सेवा का नाम, उत्पादन–मात्रा, बाजार में प्रचलित कीमत का उल्लेख किया जाता है। अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं की मात्रा व कीमत को गुणा करते हुए उत्पादन का मूल्य ज्ञात करते हैं। अन्त में सभी उत्पादित अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों को जोड़ते हैं। इस प्रकार सकल (कुल) राष्ट्रीय–उत्पाद (अर्थात् उत्पादन) की गणना की जाती है।

कुछ वस्तुओं व सेवाओं की प्रकृति अन्तरिम या मध्यवर्ती प्रकार की होती है। अन्तरिम या मध्यवर्ती वस्तुओं व सेवाओं को उत्पादन–प्रक्रिया में काम लिया जाता हैं। अन्तरिम या मध्यवर्ती वस्तुओं व सेवाओं को राष्ट्रीय आय की गणना हेतु सम्मिलित नहीं किया जाता है। अन्तरिम या मध्यवर्ती वस्तुओं व सेवाओं को सम्मिलित किये जाने पर राष्ट्रीय आय की दोहरी–गणना या भ्रामक–गणना हो जाती है।

उत्पादन–विधि से राष्ट्रीय आय की गणना करते समय कई बातों का ध्यान रखना चाहिए। राष्ट्रीय आय की दोहरी या अनेक बार होने वाली भ्रामक गणना से बचने के लिए केवल अन्तिम वस्तुओं व सेवाओं के मूल्यों का ही योग करते हैं। राष्ट्रीय आय की

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

दोहरी गणना से बचने के लिए उत्पादन – विधि की मूल्य–सम्वर्धन विधि का प्रयोग किया जाता है। मूल्य–सम्वर्धन विधि के द्वारा प्रत्येक चरण पर उत्पादन का सही–सही मूल्य ज्ञात किया जाता है। सकल राष्ट्रीय–उत्पाद का सही–सही मूल्य ज्ञात करने के लिए उत्पादन के मूल्यों में से उत्पादन के साधनों पर किये गये खर्च को घटाते हैं। अर्थात् पहले चरण पर उत्पाद के मूल्य को घटा देते है जिसे निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं।

तालिका 16.1

क्र. सं.	उत्पादित वस्तु / सेवा का नाम	मात्रा	बाजार कीमत	मूल्य (रु. में)
1.	अ	20	2	40
2.	ब	30	8	240
3.	स	10	6	60
4.	द	40	4	160
5.	य	10	2	20
—	—	—	—	—
—	—	—	—	—
कुल राष्ट्रीय–उत्पादन				520

दोहरी–गणना व मूल्य वृद्धि विधि का उदाहरणः–

माना एक बेकरी डबलरोटी का 1 किलोग्राम का पैकेट 60 रु. में बेचता है, इसे बनाने के लिए 1 किलोग्राम आटा 40 रु. में आटा–चक्की से खरीदता है, आटा–चक्की का मालिक 1 किलोग्राम गेंहू 30 रु. में किसान से खरीदता है। ऐसी स्थिति में बेकरी, आटा–चक्की व किसान के 1–1 किलोग्राम उत्पादन का भ्रामक मूल्य होगा–60+40+30=130 । किन्तु इसी स्थिति में देश में उत्पादन तो केवल 1 किलोग्राम ही हुआ। अतः उत्पादन का वास्तविक मूल्य = किसान के उत्पादन का मूल्य + आटा चक्की के उत्पादन का वास्तविक मूल्य + बेकरी के उत्पादन का सही–सही मूल्य = (बेकरी के उत्पादन का मूल्य – आटा चक्की के उत्पादन का मूल्य) + (आटा चक्की के उत्पादन का मूल्य – किसान के उत्पादन का मूल्य) + किसान के उत्पादन का मूल्य = 20+10+30 = 60 रु.। इस प्रकार केवल 1 किलोग्राम उत्पादन का सही मूल्य 130 रु के स्थान पर मात्र 60 रु हुआ। अतः राष्ट्रीय आय की गणना करते समय इस बात का ध्यान नही रखा जाता है तो राष्ट्रीय आय की गणना गलत मूल्य बतायेगी जो भ्रामक होगी।

मूल्यह्रासः–

उत्पादन एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया होती है। उत्पादन करते समय उत्पादन के साधनों में टूट–फूट, घिसावट (मूल्यह्रास) या इसी प्रकार की अन्य हानियाँ होती हैं। पूँजी की (मशीनें इत्यादि) टूट–फूट व घिसावट होती है। नयी तकनीक की मशीनें इत्यादि बाजार में आ जाने के कारण पुरानी पूँजी (मशीनें इत्यादि) बेकार हो जाती हैं। उत्पादन के कारण भूमि की उपजाऊ क्षमता में कमी होती है। इस तरह उत्पादन–प्रक्रिया से कमायी गई शुद्ध राष्ट्रीय आय की गणना के लिए घिसावट (मूल्यह्रास) एक प्रकार की हानि होती है। इसीलिए घिसावट (मूल्यह्रास) को सकल राष्ट्रीय आय में से घटाया जाता है।

2. आय विधि–

आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना के द्वारा एक देश में आय के वितरण की जानकारी मिलती है। उत्पादन के साधनों (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) द्वारा उत्पादन किया जाता है। किसी वस्तु व सेवा में उपयोगिता का सृजन या उपयोगिता में वृद्धि करके उत्पादन किया जाता है। उत्पादन के साधनों को उत्पादन का पूर्णतः वितरण हो जाता है। यह वितरण – श्रम की कीमत–मजदूरी, पूँजी के उपयोग की कीमत– ब्याज, भूमि के उपयोग की कीमत– लगान, उद्यमशीलता के सेवाओं की कीमत– लाभ इत्यादि के रूप में होता है। उत्पादन का पूर्णतः वितरण उत्पादन के साधनों में बांटा जाता है।

राष्ट्रीय आय की गणना के लिए उत्पादन के साधनों को वितरित आय के निम्न घटक होते हैं:–

(1.) मजदूरी — कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति

(2.) ब्याज
(3.) लगान / किराया–भाड़ा
(4.) लाभ
— परिचालन अतिरेक

(5.) मिश्रित–आयः–कमीशन के रूप में

इस प्रकार उत्पादन के पूर्णतः वितरण से प्राप्त प्रतिफल उत्पादन के साधनों (श्रम, भूमि, पूँजी इत्यादि) के मालिकों की साधन आय होती है। अतः आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना के लिए साधन आय को जोड़ते हैं। इस प्रकार सकल मजदूरी, सकल ब्याज, सकल लगान, सकल लाभ इत्यादि के रूप में प्राप्त प्रतिफलों का योग करते हुए सकल घरेलू आय ज्ञात की जाती है।

∢ सकल घरेलू आय = मजदूरी + ब्याज + लगान + लाभ + घिसावट ।

∢ राष्ट्रीय आय $NNP_{FC} = W + I + R + P +$ विदेशों से प्राप्त शुद्ध साधन आय है जिसे $NNP_{FC} = NDP_{FC} + NFIA$ के रूप में भी दिखाया जाता है।

जहाँ:– W= मजदूरी, I = ब्याज, R = लगान P = लाभ से आय हैं।

राष्ट्रीय आय की गणना की सावधानियां–

आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना के लिए कई बार

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सावधानी रखनी चाहिए जैसे– नकद के स्थान पर वस्तु व सेवा के रूप में दी जाने वाली मजदूरी, स्वयं के मकान में रहना, उत्पादन का थोड़ा सा हिस्सा अपने लिए रख लेना व आय को सरकार को कम बताना या बताना ही नहीं। ऐसी स्थिति में सावधानी पूर्वक इन सभी मदों को आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना के लिए जोड़ा जायेगा।

3. व्यय विधि–

राष्ट्रीय आय की गणना के लिए जब व्यय विधि का उपयोग करते हैं तो सकल राष्ट्रीय व्यय की राशि ज्ञात करने के लिए एक वर्ष में होने वाले व्ययों (जीवन निर्वाह हेतु, पूँजीगत उपभोग हेतु, अधिक उत्पादन के लिए निजी पूँजीगत व्ययों, सरकार के व्ययों व शुद्ध निर्यात व्ययों) तथा घिसावट (मूल्यह्रास) का योग करते हैं।

राष्ट्रीय आय की गणना के लिए एक देश में होने वाले व्यय के प्रमुख निम्न घटक होते हैं:–

(1.) निजी–उपभोग
(2.) विनियोग / निवेश
(3.) सरकारी व्यय
(4.) शुद्ध निर्यात

(1.) निजी–उपभोग व्यय :– व्यक्तियों व परिवारों द्वारा होने वाले उपभोग–व्यय को निजी–उपभोग व्यय कहा जाता है। निजी–उपभोग व्यय के अन्तर्गत जिन वस्तुओं व सेवाओं पर किया जाता हैं वे निम्न प्रकार की होती है:–

(1.) अस्थायी उपभोक्ता वस्तुएँ
(2.) टिकाऊ–उपभोक्ता वस्तुएँ
(3.) उपभोक्ता–सेवाएँ

(2.) विनियोग / निवेश व्यय :–

निवेश एक प्रकार का उत्पादन के लिए किया जाने वाला व्यय होता है। एक निश्चित अवधि में होने वाले निवेश के कारण पूँजी के भण्डार (Stock) में वृद्धि होती है। उत्पादन–प्रक्रिया में अन्य साधनों के साथ–साथ पूँजी की घिसावट (Depreciation) होती है। यह घिसावट (Depreciation) एक प्रकार की हानि होती है। घिसावट (Depreciation) के लिए एक प्रकार प्रावधान (Provision) किया जाता है। यह प्रावधान 'पूँजी के उपभोग का प्रावधान' (Capital Consumption Allowance) कहलाता है। निवेश चार प्रकार के होते हैं:–

(1.) व्यावसायिक स्थिर–निवेश
(2.) माल के भण्डारों में निवेश
(3.) गृह–निर्माण में निवेश
(4.) सरकारी निवेश

(3.) सरकारी व्यय :–

सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ व सेवाएँ प्रदान की जाती है। एक देश की सरकार के व्यय को उत्पादन में योगदान के रूप में माना जाता है। सरकारी व्यय में शिक्षा, चिकित्सा, प्रतिरक्षा, कानून व व्यवस्था इत्यादि सम्मिलित होते हैं। सरकारी खरीद पर व्यय के अलावा भी सरकार अन्य व्यय करती है। राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए सरकार द्वारा कर्मचारियों को क्षतिपूर्ति भुगतान, सरकारी–उपभोगव्यय व स्थायी पूँजी का उपभोग–व्यय को सम्मिलित करते हैं। सरकार लोगों को सामाजिक सुरक्षा के लिए धन का हस्तान्तरण करके व्यय करती है। ध्यान रहे कि विभिन्न प्रकार के हस्तान्तरण–व्यय बिना उत्पादक कार्यों के ही किये जाते हैं। अतः हस्तान्तरण–व्ययों को राष्ट्रीय आय की गणना करने के लिए नहीं जोड़ते हैं।

(4.) शुद्ध निर्यात व्यय :–

एक निश्चित अवधि में होने वाले आयात व निर्यात के अन्तर के आधार पर शुद्ध निर्यात व्यय ज्ञात किया जाता है। राष्ट्रीय आय की गणना हेतु शुद्ध निर्यात व्यय सम्मिलित करते हुए सकल घरेलू–व्यय की गणना निम्न प्रकार की जाती है:–

∴ सकल घरेलू व्यय = परिवारों का उपभोग व्यय + निजी निवेश व्यय + सरकारी व्यय + शुद्ध विदेशी व्यय

$$\therefore\ GDP_{MP} = C + I + G + (X - M)$$

जहाँ:– C= उपभोग व्यय, I = निजी निवेश व्यय, G = सरकारी व्यय व (X-M) = आयात–निर्यात हैं।

राष्ट्रीय आय की गणना की समस्याएँ–

राष्ट्रीय आय की गणना करते समय कई कठिनाईयाँ आती है। केवल सैद्धान्तिक समस्याएँ ही नहीं आती है, अपितु कुछ व्यावहारिक समस्याएँ भी आती है। कम विकसित देशों में लोग अनपढ़ होते हैं। कम विकसित देशों में ज्यादातर उत्पादन का वस्तु–विनिमय (Barter Exchange) होता हैं। बहुत सारे लेनदेन बाजार के बाहर होने के कारण सरकार को जानकारी ही नहीं होती है। पिछड़े देशों में श्रम–विभाजन व विशिष्टीकरण नहीं होता है। राष्ट्रीय–आय की सूचना आसानी से नहीं मिलती है। राष्ट्रीय–आय के आंकड़े अपर्याप्त, अनुपलब्धता तथा कम विश्वसनीय होने से भी राष्ट्रीय आय की गणना में कठिनाई आती है।

राष्ट्रीय–आय व आर्थिक कल्याण में सम्बन्ध :–

कल्याण से अभिप्राय व्यक्ति अथवा समाज की उस स्थिति से होता है जब दोनों प्रसन्न और संतुष्ट होते हैं। अर्थशास्त्रियों के अनुसार आर्थिक कल्याण से आशय उस कल्याण से होता है जिसे प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से मुद्रा द्वारा मापा जा सकता है।

राष्ट्रीय–आय व आर्थिक कल्याण में गहरा सम्बन्ध देखने को मिलता है। यह माना जाता है कि राष्ट्रीय आय के बढ़ने के

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

साथ–साथ एक देश के लोगों का आर्थिक कल्याण भी बढता है। राष्ट्रीय आय का स्तर, राष्ट्रीय–उत्पादन में वृद्धि होने पर, बढ़ता है। राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि के कारण राष्ट्रीय व्यय भी बढ़ जाता है। राष्ट्रीय व्यय के बढ़ने पर आर्थिक कल्याण अधिक हो जाता है। एक देश के लोगों का आर्थिक कल्याण अधिक मात्रा में वस्तुओं व सेवाओं के उपभोग के कारण बढता है। इसी प्रकार राष्ट्रीय आय का देश के लोगों में बँटवारा समतापूर्ण किया जाना चाहिए।

1. सामान्यतः यह माना जाता है कि राष्ट्रीय आय का लोगों की सन्तुष्टि /प्रसन्नता से गहरा सम्बन्ध होता है। राष्ट्रीय आय का वितरण जितना समतापूर्ण होगा आर्थिक कल्याण उतना ही अधिक मात्रा में होगा। राष्ट्रीय–आय की विषमता के कारण कई प्रकार की आर्थिक अकुशलताएँ उत्पन्न होती हैं। आर्थिक अकुशलताएँ देश के विकास की गति को धीमा करती है। आय के वितरण के अतिरिक्त 2. आय को अर्जित करने का तरीका, 3. आय को व्यय करने का ढंग, 4. कार्यस्थल की दशाऐं आदि घटक भी आर्थिक कल्याण को प्रभावित करते हैं।

आजकल आर्थिक कल्याण को पर्यावरण की दशा के साथ जोड़ कर देखा जाने लगा है। एक नयीं शब्दावली 'हरित–लेखांकन' (Green Accounting) का प्रयोग किया जाता है। 'हरित–लेखांकन' में पर्यावरण की हानि का अध्ययन किया जाता है। पर्यावरण की हानि की मात्रा को राष्ट्रीय–आय से घटाकर 'पर्यावरण–संशोधित राष्ट्रीय–आय' (Environment Adjusted National Income) ज्ञात की जाती है। वर्तमान में 'पर्यावरण संशोधित राष्ट्रीय आय' (Environment Adjusted National Income) की अवधारणा को अपनाया जाने लगा है। इस प्रकार राष्ट्रीय आय का वितरण व पर्यावरण की दशा को अच्छा बनाये रखते हुए प्रत्येक देश आगे बढ़ना चाहता है। राष्ट्रीय आय का समतापूर्ण वितरण व पर्यावरण की उत्तम दशा होना आवश्यक है। समतापूर्ण वितरण व पर्यावरण की उत्तम दशा से एक देश में टिकाउ विकास (Sustainable development) किया जा सकता हैं।

टिकाउ विकास (Sustainable development) भविष्य की आवश्यकताओं को प्रभावित किये बिना वर्तमान की आवश्कताओं की पूर्ति करने वाला विकास सतत विकास कहलाता है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

▷ राष्ट्रीय आय की गणना मुख्यतः तीन विधियों से की जाती हैः– उत्पादन विधि अथवा मूल्य–सम्वर्धन विधि, आय विधि व व्यय विधि।

▷ एक देश में कुल राष्ट्रीय–उत्पादन =कुल राष्ट्रीय आय= कुल राष्ट्रीय व्यय होते हैं।

▷ राष्ट्रीय आय की गणना उत्पादन–विधि से करते समय देश में उत्पादित अन्तिम उपभोग्य–वस्तुओं व सेवाओं को शामिल विचार करते हैं।

▷ राष्ट्रीय आय की दोहरी गणना से बचने के लिए मूल्य–सम्वर्धन विधि का प्रयोग किया जाता है।

▷ उत्पादन करते समय उत्पादन के साधनों में टूट–फूट, घिसावट (मूल्यह्रास), या इसी प्रकार की अन्य हानियाँ होती हैं। जिसे पूँजीगत–उपभोग भत्ता भी कहते हैं।

▷ आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना के लिए सकल मजदूरी, सकल ब्याज, सकल लगान, सकल लाभ इत्यादि के रूप में प्राप्त प्रतिफलों का योग करते हुए सकल राष्ट्रीय आय ज्ञात की जाती है।

▷ राष्ट्रीय आय की गणना व्यय विधि से करने के लिए एक वर्ष में होने वाले व्ययों (जीवन निर्वाह हेतु, पूँजीगत उपभोग हेतु, अधिक उत्पादन के लिए निजी पूँजीगत व्ययों, सरकार के व्ययों व शुद्ध विदेशी व्ययों) तथा घिसावट (मूल्यह्रास) का योग करते हैं।

▷ राष्ट्रीय आय की गणना करते समय सैद्धान्तिक व अन्य प्रकार की समस्याएँ लोगों के अनपढ़ होने, वस्तु–विनिमय, व बाजार के बाहर लेनदेन होने के कारण उत्पन्न होती हैं।

▷ राष्ट्रीय आय के बढ़ने के साथ–साथ एक देश के लोगों का आर्थिक कल्याण भी बढता है। राष्ट्रीय आय का वितरण जितना समतापूर्ण होगा आर्थिक कल्याण उतना ही अधिक मात्रा में होगा। राष्ट्रीय आय की विषमता के कारण कई प्रकार की आर्थिक अकुशलताएँ उत्पन्न होती हैं।

▷ आजकल आर्थिक कल्याण को पर्यावरण की दशा के साथ जोड़ नयीं शब्दावली 'हरित–लेखांकन' का प्रयोग किया जाता है। पर्यावरण की हानि की मात्रा को राष्ट्रीय आय से घटाकर 'पर्यावरण–संशोधित राष्ट्रीय आय' ज्ञात की जाती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. राष्ट्रीय आय की गणना की विधियाँ हैं –
   (अ) उत्पादन विधि (ब) आय विधि
   (स) व्यय विधि (द) उपर्युक्त सभी
2. भारत में राष्ट्रीय आय की गणना के लिए कौन सी वस्तुओं को सम्मिलित करतें हैं ?
   (अ) मध्यवर्ती–वस्तुओं व सेवाओं को
   (ब) अर्द्धनिर्मित –वस्तुओं व सेवाओं को
   (स) अन्तिम उपभोग्य वस्तुओं व सेवाओं को
   (द) कच्चे माल को
3. राष्ट्रीय आय की किस विधि में दोहरी–गणना की त्रुटि की संभावना होती है –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) व्यय विधि (ब) उत्पादन विधि
(स) आय विधि (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. राष्ट्रीय आय की आय विधि से गणना के घटक नहीं हैं ?
(अ) मजदूरी व ब्याज
(ब) लगान / किराया–भाड़ा
(स) मिश्रित–आय व लाभ
(द) अन्तिम उपभोग्य वस्तुएँ व सेवाएँ

5. 'हरित–लेखांकन' में किस पर विचार किया जाता हैं ?
(अ) अंधाधुंध औद्योगीकरण पर
(ब) तीव्र रोजगार वृद्धि पर
(स) पर्यावरण की हानि पर
(द) निजी–उपभोग में तीव्र वृद्धि पर

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राष्ट्रीय आय की गणना की कितनी विधियाँ हैं ?
2. राष्ट्रीय आय की गणना के लिए किस प्रकार की वस्तुओं व सेवाओं को सम्मिलित करते हैं ?
3. राष्ट्रीय आय की दोहरी–गणना की त्रुटि से बचने के लिए कौन सी विधि अपनाते हैं ?
4. राष्ट्रीय आय की आय विधि से गणना के कौन–कौन से घटक होते हैं ?
5. 'हरित–लेखांकन' किसे कहते हैं ?
6. राष्ट्रीय–आय का बँटवारा किस प्रकार का होने पर आर्थिक कल्याण अधिक मात्रा में बढ़ता हैं ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. राष्ट्रीय आय की गणना की विधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. दोहरी–गणना की त्रुटि से बचने के लिए मूल्य–संवर्द्धन विधि किस प्रकार उपयोगी होती हैं ?उदाहरण देकर समझाइये।
3. आय विधि से राष्ट्रीय आय की गणना को संक्षेप में समझाइये।
4. राष्ट्रीय आय की गणना की कौन–कौन सी समस्याएँ होती हैं ?संक्षेप में समझाइये।
5. आर्थिक कल्याण व राष्ट्रीय–आय का वितरण में सम्बन्ध को संक्षेप में समझाइये।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. राष्ट्रीय आय की गणना की विभिन्न विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।
2. उत्पादन–विधि से राष्ट्रीय आय की गणना को विस्तार से समझाइये।
3. व्यय–विधि से राष्ट्रीय आय की गणना का विस्तृत वर्णन कीजिए।
4. राष्ट्रीय आय में वृद्धि से आर्थिक कल्याण में वृद्धि होती है। क्या आप इस कथन से सहमत हैं, अपने विचार लिखिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
द	स	ब	द	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 17

मुद्रा : अर्थ, कार्य एवं महत्व
(Money : Meaning, Functions and Importance)

मुद्रा का आविष्कार मानवीय आविष्कारों में सबसे महत्वपूर्ण है। ज्ञान की प्रत्येक शाखा में एक महत्वपूर्ण आविष्कार हुआ है। जैसे– यन्त्रकला (Mechanics) में पहिये का, विज्ञान में आग का, राजनीति शास्त्र में वोट का, उसी प्रकार अर्थशास्त्र तथा मनुष्य के सामाजिक जीवन के व्यापारिक पक्ष में मुद्रा एक महत्वपूर्ण आविष्कार है।

आदिकाल में मनुष्य अपनी मूलभूत आवश्यकताओं के लिए प्रकृति पर निर्भर था। मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ उसने समूह में रहना सीखा। समूहों में रहते– रहते मनुष्यों ने अपनी रुचि, कौशल एवं क्षमता के आधार पर अलग–अलग व्यवसायों का चयन किया, जिनसे उनकी विभिन्न आवश्यकताऐं पूरी होने लगी। प्रारम्भिक काल में समूह छोटे होने के कारण मनुष्य अपनी आवश्यकता की वस्तुओं का लेन–देन सहज और सरल रूप में करने लगे। वस्तु के बदले वस्तु खरीदने–बेचने की इस व्यवस्था को वस्तु विनिमय प्रणाली कहा जाता है।

वस्तु विनिमय प्रणाली

वस्तु विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत दो व्यक्तियों द्वारा परस्पर स्वयं के द्वारा उत्पादित अतिरिक्त वस्तु अथवा सेवा का लेन–देन किया जाता था। प्राचीन काल में मनुष्य केवल प्राथमिक व्यवसाय में ही संलग्न था, जैसे – कृषि, पशुपालन, मछली पालन व आखेट इत्यादि। अतः सामान्यतः अनाज के बदले वस्त्र, वस्त्र के बदले दूध, दूध के बदले अनाज अथवा पालतू पशुओं का भी क्रय–विक्रय इस प्रणाली के माध्यम से किया जाता था। यह व्यवस्था पूर्णतः आपसी समझ एवं विश्वास पर आधारित थी।

वस्तु विनिमय प्रणाली की कठिनाइयाँ

मानव सभ्यताओं के विकास के साथ मनुष्यों के आर्थिक क्रिया कलाप बढ़ते चले गये और वस्तु विनिमय प्रणाली में अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगी, जिसके कारण इसका लोप हो गया। फलस्वरूप इसका स्थान मुद्रा व्यवस्था ने ले लिया। आइये कुछ प्रमुख कठिनाइयों को समझने का प्रयास करते हैं –

(1) दोहरे संयोग की कठिनाई :–

बाजार में वस्तु विनिमय तभी संभव हो सकता हैं जब दो व्यक्ति एक दूसरे के लिये उपयोगी वस्तुओं का लेन–देन करने हेतु तत्पर हों। ऐसा संयोग सदैव मिलना कठिन है। यदि एक किसान को अपने अतिरिक्त गेहूं के बदले चीनी खरीदनी हो तो उसे ऐसे व्यक्ति को तलाशना पड़ेगा जिसके पास अतिरिक्त चीनी विनिमय हेतु उपलब्ध हो, ऐसा संयोग आसानी से मिलना संभव हो यह आवश्यक नहीं होता था।

(2) वस्तु के मूल्य मापने में कठिनाई :–

विनिमय हेतु उपलब्ध अतिरिक्त वस्तु का मूल्य मापना कठिन कार्य हैं। लेन–देन अथवा विनिमय करने वाले दोनों व्यक्ति आपसी समझ एवं उपयोगिता के आधार पर वस्तुओं का विनिमय करते थे। वास्तव में प्रत्येक सौदे में वस्तुओं का नये सिरे से मोल–भाव करना अत्यन्त कठिन कार्य है।

(3) भावी बचत संभव नहीं :–

इस व्यवस्था में ऐसी वस्तुओं का भी लेन–देन होता था जिसका दीर्घकाल तक संचय करना कठिन होता था। विशेष तौर पर दूध, फल, सब्जियाँ आदि खाद्य पदार्थ भावी समय के लिए बचाकर नहीं रखें जा सकते। अतएव इस प्रणाली में अतिरिक्त उत्पादों की भावी बचत संभव नहीं थी।

(4) अविभाज्य वस्तु के विनिमय में कठिनाई :–

वस्तु विनिमय प्रणाली में प्रायः वस्तु विभाजन की समस्या भी उत्पन्न हो जाती थी। उदाहरण के लिए एक भैंस का विनिमय मूल्य चार बोरी गेहूँ हैं तो ऐसे में यदि किसान की जरूरत एक बोरी गेहूँ हैं तो वह अपनी भैंस (जो कि अविभाज्य है) को एक बोरी गेहूँ से विनिमय नहीं कर सकेगा।

(5) उधार के लेखे में कठिनाई :–

वस्तु विनिमय में सौदे तात्कालिक ही संभव हो पाते थे, यदि कोई व्यक्ति उधार रख कर वस्तु विनिमय के द्वारा प्राप्त करना चाहता था तो उधार रखी गई वस्तु की भावी कीमत कितनी होगी यह पता लगाना अत्यन्त कठिन कार्य था।

वस्तु विनिमय प्रणाली की कठिनाइयाँ

- दोहरे संयोग की कठिनाई
- वस्तु के मूल्य मापने में कठिनाई
- भावी बचत संभव नही
- अविभाज्य वस्तु के विनिमय में कठिनाई
- उधार के लेखे में कठिनाई

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वस्तु विनिमय प्रणाली के अन्तर्गत उपरोक्त कठिनाइयों के कारण कालान्तर में इस व्यवस्था का लोप हो गया और मुद्रा का प्रादुर्भाव विनिमय के माध्यम के रूप में हुआ।

मुद्रा का प्रादुर्भाव

प्राचीन भारतीय इतिहास राजा–महाराजाओं का इतिहास रहा है। ऐसी राजव्यवस्था में समस्त आर्थिक एवं सामाजिक नीतियों के अंतिम निर्णयकर्ता राजा हुआ करते थे। यहाँ तक कि वे अपनी मोहर (राजकीय चिन्ह) जिस धातु या वस्तु पर टंकित कर देते थे वह राजकीय मुद्रा का रूप धारण कर लेती थी। सिक्कों का चलन इसी प्रणाली के विकास को दर्शाता हैं। देशकाल और परिस्थिति के अनुसार सोने, चाँदी, ताँबे व काँसे के सिक्के चलाये गये। इस प्रकार जारी मुद्रा 'सर्वग्राह्यता' एवं 'वैधानिकता' के गुणों के साथ विनिमय के माध्यम के रूप में स्वीकार की जाने लगी।

अर्थ एवं परिभाषा :–

मुद्रा को अंग्रेजी में मनी (Money) कहते हैं। इस 'MONEY' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'मोनेटा' (Moneta) शब्द से हुई हैं। मोनेटा 'देवी जूनो' (Goodess Juno) का दूसरा नाम है। प्राचीन रोम में देवी जूनो को स्वर्ग की रानी कहकर संबोधित किया जाता था। उनका विचार था कि 'देवी जूनो' स्वर्ग का आनन्द देने वाली देवी हैं, ठीक उसी प्रकार देवी जूनो के मंदिर में बनाई गई मुद्रा (सिक्का) भी स्वर्गीय सुखों को देने वाली है।

विभिन्न अर्थशास्त्रियों ने 'मुद्रा' की परिभाषा भिन्न–भिन्न प्रकार से दी है। अतः एक सर्वमान्य परिभाषा को जानना कठिन कार्य है, फिर भी अपने अध्ययन को व्यापक बनाने की दृष्टि से हम कुछ विद्वानों द्वारा दी गई परिभाषाओं को समझने का प्रयास करेंगे –

- राबर्टसन के अनुसार :– ''ऐसी कोई भी वस्तु जो बड़े पैमाने पर वस्तुओं के व्यावसायिक दायित्वों के भुगतान के रूप में स्वीकार की जाती है, मुद्रा कहलाएगी।''
- नेप के अनुसार :– ''कोई भी वस्तु जो राज्य द्वारा मुद्रा घोषित कर दी जाती है, मुद्रा कही जाती है।''
- मार्शल के अनुसार :– ''मुद्रा में वे सब वस्तुएँ सम्मिलित की जाती हैं जो किसी विशेष समय अथवा स्थान में बिना संदेह या विशेष जाँच पडताल के वस्तुओं एवं सेवाओं को खरीदने तथा व्यय के भुगतान के साधन के रूप में, सामान्यतया स्वीकार की जाती हैं।
- सैलिगमैन के अनुसार :– ''मुद्रा वह वस्तु है जिसे सामान्य स्वीकृति प्राप्त हो।''
- किनले के अनुसार :– ''मुद्रा एक ऐसी वस्तु है, जिसे सामान्यतया विनिमय के माध्यम अथवा मूल्य के मान के रूप में स्वीकार एवं प्रयोग किया जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम मुद्रा के दो महत्वपूर्ण गुणों को मान सकते हैं, पहला – सामान्य स्वीकृति और दूसरा – वैधानिकता। इस प्रकार मुद्रा की सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है :–

मुद्रा एक ऐसी वस्तु है, जो विनिमय के माध्यम, मूल्य के मापक, स्थापित भुगतानों के मान तथा मूल्यों के संचय के साधन के रूप में स्वतंत्र, विस्तृत तथा सामान्य रूप से लोगों द्वारा स्वीकार की जा सकती है।

भारतीय रिजर्व बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की पूर्ति के वैकल्पिक मापों को चार रूपों में प्रदर्शित करता हैं –

M_1 = C+DD+OD

M_2 = M_1 + डाकघर, बचत में बचत जमाऐं

M_3 = M_1 + व्यावसायिक बैंकों की निवल आवधिक जमाऐं

M_4 = M_3 + डाकघर बचत संस्थाओं में कुल जमाऐं

यहाँ DD–माँग जमाऐं व्यापारिक एवं सहकारी बैंकों के पास

C–लोगों के पास रखी करन्सी (नोट व सिक्के)

OD–रिजर्व बैंक के पास अन्य जमाए

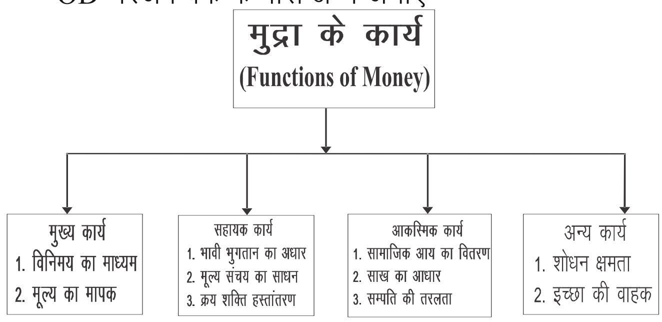

मुद्रा के मुख्य कार्य :– मुद्रा के मुख्य या प्राथमिक कार्य निम्नलिखित हैं –

1– विनिमय का माध्यम :–

यह एक ऐसा महत्वपूर्ण कार्य है जो इसकी प्रमुख पहचान भी है समस्त प्रकार के लेन–देन मुद्रा के माध्यम से ही सम्पन्न होते हैं क्योंकि मुद्रा में सर्वग्राह्यता का गुण विद्यमान होता है। बाजार में संव्यवहार प्रयोजन हेतु मुद्रा एक उपयुक्त माध्यम है।

2– मूल्य का मापक :–

यह दूसरा महत्वपूर्ण कार्य हैं। मुद्रा के माध्यम से ही वस्तु का मूल्य निर्धारण संभव होता हैं। वस्तु और सेवाओं के मूल्य मुद्रा के रूप में मापने से उनका विनिमय आसान हो जाता है। राष्ट्रीय आय की गणना भी सरल हो जाती है। व्यय विधि उत्पादन विधि और आय विधि द्वारा देश की राष्ट्रीय आय मुद्रा के रूप में सरलता से ज्ञात की जा सकती है।

- सहायक कार्य :– मुद्रा के सहायक कार्य, गौण कार्य अथवा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

द्वितीयक कार्य ऐसे कार्य हैं जो आर्थिक सुगमता के लिए अब होने लगे हैं यद्यपि मुद्रा का आविष्कार इन कार्यों के लिए नहीं हुआ। ये सहायक कार्य इस प्रकार हैं –

1– भावी भुगतानों का आधार :–

ऐसे आर्थिक सौदे जिनका भुगतान भविष्य में किया जाना है तो मुद्रा ऐसे भावी भुगतानों के लिए आधार प्रदान करती है, अर्थात भविष्य में उस वस्तु की कीमत का अनुमान लगा लिया जाता है। अतः मुद्रा स्थगित भुगतान के आधार के रूप में भी कार्य करती हैं। जनता के विभिन्न प्रकार के ऋण जैसे – गृह ऋण, शिक्षा ऋण, उद्यम ऋण आदि का लेनदेन आसान हो जाता है। इसी प्रकार शेयर, डिबेन्चर और प्रतिभूतियों को खरीदना व बेचना भी मुद्रा के द्वारा सरल हो जाता है। मुद्रा एवं पूंजी बाजार का विकास संभव हो पाता है, जो एक अर्थ व्यवस्था को सुदृण बनाने के लिए आवश्यक होता है।

2– मुद्रा मूल्य संचय का साधन :–

मुद्रा के माध्यम से किसी ऐसी वस्तु जिसका टिकाऊपन कम है, बेचकर उसके मूल्य को भविष्य के लिए संचित कर रखा जा सकता हैं। मूल्य संचय तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन संभव हो पाता है। मुद्रा द्वारा क्रय की गयी जमीन, मकान, सोना, चांदी एवं बॉण्ड इत्यादि के रूप में मुद्रा का संचय किया जा सकता है। यद्यपि कभी–कभी मुद्रा के मूल्य में परिवर्तन होने पर लाभ व हानि की आशंका बनी रहती है।

3– क्रय शक्ति हस्तांतरण :–

मुद्रा के द्वारा एक व्यक्ति अपने द्वारा संचित क्रय शक्ति को आसानी से दूसरे व्यक्ति को हस्तांतरित कर सकता है। इस प्रकार मुद्रा क्रय शक्ति हस्तांतरण के साधन के रूप में भी कार्य करती है। एक व्यक्ति नकद रूप में मुद्रा दूसरे व्यक्ति को सौंप कर क्रय शक्ति का हस्तान्तरण भी कर सकता है। आज के समय में नकदी विहीन अर्थव्यवस्था में कोई भी व्यक्ति डेबिट, क्रेडिट, एटीम अथवा चैक इत्यादि के माध्यम से भी अपनी क्रय शक्ति अन्य व्यक्ति को हस्तान्तरित सरलता से कर सकता है। इसके अतिरिक्त एक व्यक्ति स्वंय की खरीदी गई परिसम्पत्तियों को दूसरे व्यक्ति को बेच कर भी क्रय शक्ति का हस्तान्तरण कर सकता है। इस प्रकार मुद्रा की सहायता से व्यक्तियों के मध्य एवं विभिन्न स्थानों के मध्य परिसम्पत्तियों का क्रय शक्ति हस्तान्तरण सरलता से संभव हो जाता है।

- आकस्मिक कार्य :– मुद्रा के द्वारा कुछ ऐसे आकस्मिक कार्य भी सम्पादित किये जाते हैं जो मुद्रा को और भी उपयोगी एवं सुविधाजनक माध्यम के रूप में सिद्ध करते हैं। ये इस प्रकार है :–

1– राष्ट्रीय आय का वितरण :–

वर्तमान युग में बड़े पैमाने पर उत्पादन और उपभोग किया जाता है, जो कि मुद्रा के माध्यम से ही संभव है। राष्ट्रीय आय का अनुमान भी मुद्रा के मूल्य से लगाया जाता है तथा कुल उत्पादन से प्राप्त मूल्य का समाज के विभिन्न वर्गों को भुगतान भी मुद्रा से संभव है।

2– साख का आधार :–

बाजारीकरण के इस दौर में बैंको और वित्तीय संस्थाओं द्वारा अनेक प्रकार के ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं तथा जमाओं को भी स्वीकार किया जाता है। ये सभी कार्य मुद्रा के माध्यम से ही सम्पन्न हो सकते हैं।

3– सम्पति की तरलता :–

प्रो. जे. एम. कीन्स के अनुसार मुद्रा का एक महत्वपूर्ण कार्य पूँजी अथवा धन को तरल रूप प्रदान करना है। तरल रूप में मुद्रा का किसी भी कार्य में तत्काल प्रयोग किया जा सकता है।

- मुद्रा के अन्य कार्य :– मुद्रा के द्वारा उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्वपूर्ण कार्य भी सम्पन्न किए जाते हैं, जो इस प्रकार हैं–

1– शोधन क्षमता सूचक :–

मुद्रा की उपलब्धता आर्थिक ऐजेंट (व्यक्ति या फर्म) की शोधन क्षमता की सूचक होती हैं। समाज में जिस भी किसी व्यक्ति के पास मुद्रा है उसके पास भुगतान करने की क्षमता (Pay to Ability) होती है।

2– मुद्रा इच्छा की वाहक :–

मुद्रा एक ऐसी वस्तु अथवा माध्यम है जो मनुष्य को अपनी इच्छानुसार आर्थिक निर्णय लेने में सहायता प्रदान करती है, मुद्रा की सहायता से व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। उपभोक्ता जिस वस्तु के लिये सबसे अधिक कीमत देने को तत्पर होता है। उन्हीं वस्तुओं का उत्पादन बाजार में अधिक किया जाता है। इसीलिये पूँजीवाद में बाजार की प्रसिद्ध कहावत भी हैं – 'उपभोक्ता बाजार का राजा होता हैं।' (Consumer is the King to Market)

मुद्रा का महत्व (Importance of Money)

वर्तमान समय में मुद्रा आर्थिक परिक्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटक बन चुकी है। अतः मुद्रा के महत्व को हम निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं –

1. बाजार व्यवस्था की धुरी – आधुनिक समय में मुद्रा अर्थ व्यवस्था में विनिमय का सरल माध्यम है। अतः बाजार व्यवस्था में समस्त लेनदेन मुद्रा के माध्यम से किये जाते है।
2. आर्थिक विकास का मापक– मुद्रा देश की आर्थिक उन्नति एवं विकास का मापक है। लोक हितकारी सरकारें

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

3. अर्थव्यवस्था की बचतों के निवेश परिवर्तन– अर्थ व्यवस्था में लोगों के द्वारा की जाने वाली बचतें मुद्रा के रूप में संग्रह करके बैंकों में जमा की जाती है जो भविष्य में निवेश का आधार बनती है।
4. श्रम विभाजन एवं विशिष्टीकरण– मुद्रा के माध्यम से देश में श्रम विभाजन व विशिष्टीकरण करके उत्पादन का उच्चतम स्तर प्राप्त किया जाता है जो मुद्रा से संभव हुआ है।
5. आर्थिक जीवन में स्वतंत्रता– मुद्रा के प्रयोग से उपभोक्ता एवं उत्पादक दोनों ही बाजार में विवेकानुसार निर्णय लेने में हेतु स्वतंत्र होते है।
6. सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार – मुद्रा अर्थ व्यवस्था में आर्थिक स्वतंत्रता के साथ–साथ मूल्य संग्रह की सुविधा भी प्रदान करती है जो सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार बनती है।

उपरोक्त बिन्दुओं से स्पष्ट है कि मुद्रा का आर्थिक क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है, किन्तु फिर भी कुछ अर्थशास्त्री मुद्रा के प्रचलन को नियंत्रण में रखने की सलाह देते हैं क्योंकि अनियंत्रित होने पर यह मुद्रा स्फीति का कारण बनती है जिसके अर्थव्यवस्था को गंभीर परिणाम भुगतने पड़ते हैं, इसलिए किसी विद्वान ने ठीक ही कहा हैं कि ''मुद्रा एक अच्छी सेविका किन्तु बुरी स्वामिनी है।''

विमुद्रीकरण (Demonatization) -

एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके तहत देश का केन्द्रीय बैंक कालेधन अथवा नकली नोटों को चलन से बाहर करने के लिए चलन में पुरानी मुद्रा की वैधानिकता समाप्त कर नयी मुद्रा जारी कर देता है इस प्रकार अवैध तरीके से अर्जित कालाधन एवं नकली करेंसी स्वत: ही नष्ट हो जाती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- वस्तु के बदले वस्तु को खरीदना या बेचना वस्तु विनिमय कहलाता है।
- मुद्रा वह वस्तु है जिसे जनता द्वारा सामान्यतया विनिमय के माध्यम तथा मूल्य के मापक के रूप में स्वीकार किया जाता हो तथा समाज एवं सरकार उसे वैधानिक मान्यता देते हों।
- **मुद्रा के कार्य :–**

(1) मुख्य कार्य – विनिमय का माध्यम, मूल्य का मापक।
(2) सहायक कार्य – भावी भुगतानों का आधार, मूल्य संचय का साधन, क्रय शक्ति हस्तांतरण।
(3) आकस्मिक कार्य – सामाजिक आय का वितरण, साख का आधार, सम्पत्ति की तरलता।
(4) अन्य कार्य – इच्छा की वाहक, शोधन क्षमता सूचक।

अभ्यासार्थ प्रश्न

बहुचयनात्मक प्रश्न –

(1) निम्न में से M_2 ज्ञात कर सकते हैं।
(अ) M_1+ व्यावसायिक बैंकों की निवल आवधिक जमाऐं
(ब) M_3 + डाकघर बचत संस्थाओं में कुल जमाऐं
(स) C+DD
(द) M_1 + डाकघर बचत संस्थाओं में कुल जमाऐं

(2) निम्नलिखित में से कौन सा कार्य मुद्रा का मुख्य कार्य हैं–
(अ) विनिमय का माध्यम
(ब) सामाजिक प्रतिष्ठा का आधार
(स) बिलों का भुगतान
(द) राष्ट्रीय आय का वितरण

(3) मुद्रा का निम्न में से कौन सा आकस्मिक कार्य हैं –
(अ) विनिमय का माध्यम (ब) मूल्य मापन
(स) साख का आधार (द) मूल्य स्थिरता

(4) वस्तु विनिमय की प्रमुख कठिनाई निम्न में से कौन सी है–
(अ) दोहरे संयोग का न मिलना
(ब) मुद्रा मूल्य ज्ञात न होना
(स) भावी बचत संभव न होना
(द) उपरोक्त सभी

(5) वस्तु के बदले वस्तु खरीदने की प्रक्रिया कहलाती हैं –
(अ) मुद्रा प्रणाली (ब) वस्तु मुद्रा प्रणाली
(स) वस्तु विनिमय प्रणाली (द) पत्र मुद्रा प्रणाली

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1– वस्तु विनिमय प्रणाली का अर्थ लिखिए।

2– मुद्रा को परिभाषित कीजिए।

3– मुद्रा के दो प्रमुख कार्यों को बताइये।

4– वस्तु विनिमय की कोई दो कठिनाइयाँ लिखिये।

5– मुद्रा उपभोक्ता को निर्णय का अधिकार किस प्रकार देती है ?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1– वस्तु विनिमय प्रणाली को एक उदाहरण देकर समझाइये।

2– मुद्रा के मूल्य से आप क्या समझते हैं।

3– वर्तमान युग में मुद्रा के महत्व को समझाइये।

4– मुद्रा के आकस्मिक कार्य कौन–कौन से हैं।

5– मुद्रा के दो सहायक कार्य लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1– मुद्रा के प्रमुख कार्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2– वस्तु विनिमय प्रणाली क्या हैं? इस प्रणाली के दोषों का वर्णन कीजिए।

3– मुद्रा का अर्थ एवं परिभाषा स्पष्ट कर देते हुए इसके महत्व पर प्रकाश डालिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
द	अ	स	द	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 18
व्यापारिक बैंक–अर्थ एवं कार्य
(Commercial Bank - Meaning & Functions)

वर्तमान युग में 'बैंक' एक सर्वप्रचलित एवं सर्वोपयोगी शब्द है, जिसके अर्थ से साधारणतया सभी अवगत हैं, किन्तु इसके इतिहास की तरफ जाएँ तो पता चलता है कि 'बैंक' शब्द की व्युत्पत्ति इटेलियन भाषा के 'बंकों' (BANCO) शब्द से हुई हैं, इटली में लोग बैंचों पर बैठकर मुद्रा परिवर्तन का कार्य करते थे। कालांतर में जो फ्रांसीसी भाषा के 'बैंके' (BANK) में बदलता हुआ अंग्रेजी भाषा में 'बैंक' (BANK) कहा जाने लगा। कालान्तर में 'बैंक' शब्द का प्रयोग मुद्रा का लेन–देन करने वाली संस्थाओं के लिए किया जाने लगा।

एक अन्य धारणा के अनुसार 'बैंक' शब्द की व्युत्पति जर्मन भाषा के 'BANCK' (बैंक) शब्द से हुई हैं जिसका अर्थ होता है – "सम्मिलित स्कंध कोष (Joint Stock Fund) अतः बैंक शब्द की उत्पत्ति के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता।

आधुनिक बैंकिंग का विकास यूरोप में हुआ था, तत्पश्चात यह समूचे विश्व में फैल गया।

बैंक की परिभाषा :–

बैंक शब्द का अर्थ एवं कार्य स्पष्ट करते हुए अनेक अर्थशास्त्रियों ने इसकी परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं, जो इस प्रकार हैं–

फिण्डले शिराज के अनुसार – "बैंकर, वह व्यक्ति फर्म या कम्पनी हैं जिसके पास व्यवसाय के लिए ऐसा स्थान हो जहाँ मुद्रा अथवा करेंसी की जमा द्वारा साख का कार्य किया जाता है और जिसकी जमा का ड्राफ्ट, चैक या आर्डर द्वारा भुगतान किया जाता है।"

क्राउथर के अनुसार :– "बैंक का कार्य अन्य लोगों से ऋण लेकर बदले में अपना ऋण प्रदान करके मुद्रा का निर्माण करना है।"

भारतीय बैंकिंग कम्पनीज एक्ट (1949) :–

"बैंकिंग से तात्पर्य ऋण देने अथवा विनियोजन के लिए जनता का धन जमा करना है, जो माँग करने पर लौटाया जा सकता है तथा चैक, ड्राफ्ट अथवा अन्य प्रकार की आज्ञा द्वारा निकाला जा सकता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट है कि – बैंक एक ऐसी संस्था है जो अपने ग्राहकों को धन सम्बन्धी समस्त लेन–देन की सुविधा प्रदान करती है।

व्यापारिक बैंक के कार्य :–

व्यापारिक बैंक का कार्यक्षेत्र वर्तमान युग में बहुत विस्तृत हो गया हैं। ये बैंक अपने ग्राहकों को अनेक प्रकार की सुविधाऐं प्रदान करते हैं। वित्तीय समाशोधन के अतिरिक्त, ग्राहकों को बीमा, लॉकर सुविधा, निवेश आदि के अवसर भी प्रदान करते हैं। परम्परागत रूप से बैंकों के द्वारा किये जाने वाले प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं –

1. जमाएं स्वीकार करना
2. ऋण प्रदान करना
3. साख निर्माण
4. एजेंसी सेवाऐं
5. अन्य सेवाऐं

1. जमाएं स्वीकार करना :–

व्यापारिक बैंकों का प्रमुख कार्य अपने ग्राहकों की जमाएं स्वीकार करना है। ग्राहक अपने चालू अथवा बचत खातों में अपनी छोटी–छोटी बचतें जमा करवाता हैं। बैंक ऐसी छोटी–छोटी बचतों से एकत्रित कोषों पर अपने ग्राहकों को ब्याज अदा करता है।

बचत खाता:–

इस प्रकार के खाते छोटे बचतकर्ता अथवा नौकरीपेशा लोग बैंकों में खुलवाते हैं। इन जमाओं पर बैंक एक निश्चित दर से ब्याज भी अदा करता है। इसमें ब्याज दर कम होती है।

चालू खाते :–

इस प्रकार के खाते व्यापारी अथवा उद्योगपति बैंकों में खुलवाते हैं, जिनका दैनिक नकद लेन देन अधिक होता है।

अवधि जमाएँ :–

बैंकों द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए जो जमाएँ स्वीकार की जाती हैं उन्हें अवधि जमाएँ (Fixed Deposit) कहते हैं, इन पर ब्याज की दर ऊँची होती है।

मांग जमाएँ :–

जबकि माँग जमाऐं, वे जमाऐं होती हैं जो ग्राहक के द्वारा किसी भी समय माँगे जाने पर बैंकों को अदा करनी पड़ती है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

वर्तमान दौर में आम लोगों को बैंकिंग सुविधा उपलब्ध करवाने हेतु 'प्रधानमंत्री जन धन योजना' के अन्तर्गत शून्य राशि पर भी खाते बैंकों द्वारा खोले जाते हैं। इन खातों में नियमित लेन देन करने वाले ग्राहकों को बैंक 5000 रु. तक की अधिविकर्ष सुविधा प्रदान करते हैं।

2– ऋण प्रदान करना :–

व्यापारिक बैंकों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य ऋण प्रदान करना है। बैंक अपने ग्राहकों को ऋण सुविधा प्रदान करता है। ये बैंक मुख्यतः गृह , शिक्षा , विवाह एवं वाहन इत्यादि हेतु ऋण प्रदान करते हैं। बैंक अपने ग्राहकों की जमाओं से एकत्रित राशि से ही साख सृजन का कार्य करता हैं। ऋण चुकाने के लिए बैंकों द्वारा अपने ग्राहकों को एक निश्चित समयावधि का विकल्प प्रदान किया जाता हैं। प्रायः परिसम्पति हेतु दिए जाने वाले ऋण दीर्घकालीन ऋण होते हैं। बैंक द्वारा कमजोर वर्गों के लिये विभिन्न सरकारी योजनाओं के तहत सरल ऋण उपलब्ध करवाये जाते हैं।

अधिविकर्ष –

सुविधा के अन्तर्गत व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को उनके चालू खातों पर अधिविकर्ष सीमा उपलब्ध करवाती है। अल्प समय के लिए ग्राहक उस सीमा तक जमा धन से अधिक राशि निकलवा सकते है। यह सुविधा बैंक अपने प्रतिष्ठित साख वाले व्यवसायी वर्ग के ग्राहकों को ही उपलब्ध करवाती है।

3. साख निर्माण –

व्यापारिक बैंक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य साख सृजन है। अन्य वित्तीय संस्थाओं के समान उनका उद्देश्य भी लाभ कमाना होता है। बैंक अपने जमाधारकों से प्राप्त जमाओं से एकत्र राशि को ऋण के रुप में अन्य ग्राहकों को उपलब्ध करवाती है, जिस पर नियत दर से ब्याज भी वसूल करती है। इसे ही बैंकों की साख निर्माण प्रक्रिया कहते हैं, जिसे हम आगे विस्तार से जानेंगे।

4. एजेन्सी सेवाएं –

व्यापारिक बैंकों द्वारा ग्राहकों को ऐजेन्सी सेवाएं भी उपलब्ध करवाई जाती है। बैंक चैक, विनिमय बिल, ड्राफ्ट इत्यादि को स्वीकार /जमाकर अपने ग्राहकों को ऐजेन्सी के रुप में वित्तीय सुविधा प्रदान करते हैं। व्यापारिक बैंक अपने खाताधारकों की सम्पत्ति और वसीयत के कार्यकारक (executor) और न्यासी (Trustee) के रुप में भी कार्य करता है।

वाहक चैक (Bearer Cheque) –

इस प्रकार के चैक का नकद भुगतान बैंक चैक प्रस्तुत करने वाले वाहक को कर सकता है।

रेखांकित चैक (Cross Cheque) -

इस प्रकार के चैक का भुगतान बैंक चैक में अंकित नाम वाले व्यक्ति के खाते में करता है।

5. अन्य सेवाएं :–

(I) इंटरनेट बैंकिंग :– व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को 24 घंटे अपनी सेवाएँ देने के लिए इंटरनेट बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करते हैं। इसके द्वारा ग्राहक घर बैठे अपने खातों से विभिन्न सेवाओं का शुल्क भुगतान आसानी से कर सकते हैं। इंटरनेट बैंकिंग के द्वारा ऑनलाइन शॉपिंग हेतु घर बैठे भुगतान किया जा सकता है। इस हेतु ग्राहकों को बैंक से Login ID और Passward जारी किया जाता हैं जो पूर्णतया गोपनीय रखना होता है।

(ii) ATM सुविधा :– व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को 24 घंटे नकद आहरण की सुविधा प्रदान करने हेतु सार्वजनिक स्थानों (बस स्टैण्ड, रेल्वे स्टेशन, हॉस्पिटल, हवाई अड्डों) पर ATM मशीन उपलब्ध करवाते हैं। कोई भी ग्राहक अपने ATM कार्ड से प्रतिदिवस निर्धारित सीमा तक राशि आहरित कर सकता है। इसके अतिरिक्त ATM नकद हस्तांतरण व खाते में नकद शेष की जानकारी भी उपलब्ध करवाता है। इसका पूरा अर्थ ATM - Automated Teller Machine है। यह पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत मशीन होती है जो बैंक के सर्वर से जुड़ी होती है।

(iii) मोबाइल बैंकिंग :– वर्तमान युग में 'स्मार्टफोन' का प्रचलन बढ़ने से व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को 'मोबाइल ऐप' के माध्यम से भी बैंकिंग सुविधा प्रदान करते हैं। ग्राहक अपने बैंक से सम्बन्धित एप गूगल प्ले स्टोर से डाउनलोड कर सुविधा का लाभ उठा सकता है। इंटरनेट बैंकिंग की तरह एक User ID और Passward के जरिये ग्राहक सभी प्रकार के भुगतान अपने मोबाइल से कहीं भी कभी भी कर सकता है।

(iv) लॉकर सुविधा :–व्यापारिक बैंक निश्चत शुल्क पर अपने ग्राहकों को कीमती सामान को सुरक्षित रखने के लिए अपने बैंक में लॉकर सुविधा प्रदान करता है। लोग इसमें कीमती जेवरात, जमीन के कागजात व कानूनी दस्तावेज आदि सुरक्षित रखते हैं।

(v) क्रेडिट कार्ड सुविधा :– व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को 'क्रेडिट कार्ड ' के माध्यम से भी बैंकिंग सुविधा प्रदान करते हैं, इसके अन्तर्गत व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को उनके खातों पर एक निश्चत साख सीमा में कार्ड द्वारा भुगतान की सुविधा उपलब्ध करवाते हैं। क्रेडिट कार्ड के माध्यम से कहीं भी कभी भी अल्प समय में ऑन लाइन भुगतान कर सकते हैं।

व्यापारिक बैंक द्वारा साख सृजन

आधुनिक बैंकिंग प्रणाली में साख सृजन का महत्वपूर्ण स्थान है। देश के आर्थिक विकास में बैंकों की बड़ी भूमिका है। जहाँ बैंक एक ओर जनता से प्राप्त छोटी–छोटी बचतों के जमाकर्ता के रूप में कार्य करता है वहीं यह इन छोटी – छोटी बचतों से तैयार जमाओं से साख निर्माण का कार्य करते हुए उत्पादक कार्यों के लिए ऋण प्रदान करता हैं। अब हम समझने का

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बैंक साख का निर्माण किस प्रकार करते हैं।

साख का निर्माण :–

व्युत्पन्न जमाओं द्वारा साख सृजन :– साख निर्माण व्यापारिक बैंकों का प्रमुख कार्य है। अन्य बैंकों की भांति उनका उद्देश्य भी लाभ कमाना होता है। बैंक मुद्रा अथवा साख मुद्रा का संबंध बैकों के पास जमा की गई उन छोटी–छोटी बचत राशियों से आंकता हैं, जो चैक द्वारा निकलवाई जा सकती हैं। ये राशि माँग पर देय होती है, अतः इन्हें मांग जमा कहते हैं। इस प्रकार की माँग जमाओं के बढ़ने से ही अपनी कुल जमाओं से कई गुणा अधिक उधार देकर साख मुद्रा का निर्माण करते हैं। इस प्रकार बैंक जितना अधिक ऋण देता है उतनी ही अधिक साख जमाएँ उत्पन्न होती हैं और अधिक ऋणों का निर्माण होता है। इसलिए कहा जाता हैं –''ऋण जमाओं को उत्पन्न करते हैं और जमाएँ ऋणों को जन्म देती हैं।''

प्रो. होम के अनुसार – ''व्युत्पन्न जमा का निर्माण ही साख का सृजन होता हैं।'' इस प्रकार व्यापारिक बैंक उनके पास जितनी राशि जमा के रूप में प्राप्त होती हैं उससे कई गुणा अधिक साख सृजन कर देते हैं। प्रो. होम के अनुसार बैंक जमाएं दो प्रकार की होती हैं – प्रारम्भिक बैंक जमाएं तथा द्वितीय व्युत्पन्न जमाएं।

प्रारम्भिक जमाएँ :– वे जमाएँ होती हैं जो जमाकर्ता द्वारा वास्तविक मुद्रा के रूप में बैंक में जमा की जाती हैं।

व्युत्पन्न जमाएँ :– वे जमाएँ हैं जो बैंक प्रारम्भिक जमाओं से प्राप्त राशियों से ऋण खाता खोलकर ऋण राशि जमा करता है।

अतः एक प्रारम्भिक जमा से कई व्युत्पन्न जमाएँ उत्पन्न होती जाती हैं। ये व्युत्पन्न जमाएँ साख जमाएँ कहलाती हैं।

साख सृजन की प्रक्रिया :–

बैंकों के साख सृजन की प्रक्रिया को निम्नांकित उदाहरण द्वारा आसानी से समझा जा सकता हैं –

चरण 1– मान लीजिए कि किसी व्यापारिक बैंक में प्रारम्भिक जमा 10000 रुपये होती है। बैंकों का नकद कोषानुपात 20% है तो बैंक ऋण प्रावधानों के अनुसार अपनी प्रारम्भिक जमा का 20% (यानी 2000) रखकर शेष राशि 8000 रुपये का ऋण दे सकता है। यदि बैंक किसी व्यक्ति को 8000 रुपये का ऋण जारी करता हैं। यह साख जमा पुनः ऋण के रूप में दी जा सकती हैं। इस प्रकार प्रत्येक ऋण जमा को जन्म देता है।

चरण 2– अब 8000 रुपये में से बैंक पुनः 20% (यानी 1600) नकद कोष में रखकर शेष राशि 6400 रुपये का ऋण दे सकता है। इस प्रकार बैंक दूसरे किसी अन्य व्यक्ति को 6400 रुपये का ऋण स्वीकृत कर देता है और उसके खाते में राशि जमा कर देता है।

चरण 3– अब इन 6400 रुपये में से बैंक पुनः 20% (यानी 1280) नकद कोष में रखकर शेष राशि 5120 रुपये का ऋण दे सकता है। इस प्रकार बैंक तीसरे किसी व्यक्ति को 5120 रुपये का ऋण स्वीकृत कर देता है और उसके खाते में यह राशि जमा कर देता है।

इस प्रकार प्रारम्भिक जमा 10000 रुपये की जमा राशि से बैंक साख सृजन की यह प्रक्रिया चालू करते हैं और व्युत्पन्न जमा के माध्यम से बैंक प्रारम्भिक जमा से भी अधिक धन राशि की साख प्रदान कर देते हैं। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक बैंक अपनी प्रारम्भिक जमाओं का पाँच गुणा (20% आरक्षित अनुपात) साख सृजन नहीं कर देती।

साख सृजन की इस प्रक्रिया को और भी अधिक स्पष्ट करने के लिए उपर्युक्त उदाहरण को तालिका में दर्शाया गया हैं–

तालिका 18.1

बैंक द्वारा साख सृजन की प्रक्रिया			
परिसम्पत्तियाँ			देयताएं (राशि रुपयों में)
चरण	जमाएं	नकद कोष (20%)	प्रदत्त ऋण / व्युत्पन्न जमाएं
I	10000	2000	10000-2000 = 8000
II	8000	1600	8000-1600 =6400
III	6400	1280	6400-1280 = 5120
IV	5120	1024	5120-1024 = 4096
V	4096	819.2	4096-819.2 = 3276.8
	....	....	....
योग	$\Sigma Td = 50000$	$\Sigma Rr = 10000$	$\Sigma\ Dd = 40000$

कुल व्युत्पन्न जमाएं = कुल जमाएं – कुल कोषानुपात

(संकेत में) $\Sigma Dd = \Sigma Td - \Sigma Rra$

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि व्यापारिक बैंक किस प्रकार प्रारम्भिक जमा से व्युत्पन्न जमाएँ उत्पन्न कर अपनी साख की राशि को कई गुणा बढ़ा देते हैं। बैंकों द्वारा कितनी व्युत्पन्न जमाएँ सृजित की जाएंगी यह साख गुणंक पर निर्भर करता है। उपर्युक्त उदाहरण में 20% CRR है अर्थात 1/5 हैं। अतः कुल साख सृजन 50000 रुपये का होगा। क्योंकि जमा गुणक $=\frac{1}{RR_r}$ जहां RR_r = आवश्यक रिजर्व अनुपात है। जमा गुणक एक बैंक द्वारा जमा प्रसार को निर्धारित करता है। उपरोक्त उदाहरण में बैंक के पास 10000 रू. जमाएं हैं, और CRR 20% है तो साख गुणक होगा।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

$\frac{1}{RR_r} = \frac{1}{20\%}$

$= \frac{1}{.20}$

$= \frac{100}{20} = 5$

और साख निर्माण होगा $\frac{1}{RR_r} \times D = 5 \times 10{,}000$

$= 50{,}000$

इसी प्रकार व्युत्पन्न जमाएं हम कुल जमाओं में से कुल कोषानुपात के राशि घटाने पर प्राप्त कर सकते हैं।

व्युत्पन्न जमाएं = कुल जमाएं – कुल कोषानुपात

50,000 रू. – 10,000 रू.

= 40,000 रू.

साख सृजन की सीमाएँ :– बैंक असीमित मात्रा में साख सृजन नहीं कर सकते। अनेक आर्थिक दशाओं का इस पर सीधा प्रभाव पड़ता है। बैंकों की साख सृजन की प्रक्रिया की कुछ सीमाएँ इस प्रकार हैं –

1. बैंकिंग विकास का स्तर :– जिन देशों में बैंकिंग सेवाएं पर्याप्त विकसित नहीं है वहां बैंकों की साख सृजन क्षमता सीमित होती है।
2. आम लोगों की बैंकिंग की आदत :– देश के लोगों में बैंकिंग आदतों का भी साख सृजन क्षमता पर सीधा प्रभाव पड़ता है।
3. व्यावसायिक व औद्योगिक विकास का स्तर :– जो देश उच्च औद्योगिक विकास को प्राप्त कर चुके हैं वहां बैंक लेन–देन विकसित होने से साख सृजन क्षमता अधिक होती है।
4. केन्द्रीय बैंक की मौद्रिक नीति :– सरल मौद्रिक नीति देश में साख सृजन को बढ़ावा देती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

♦ भारतीय बैंकिंग कम्पनीज एक्ट (1949) :– ''बैंकिंग से तात्पर्य ऋण देने अथवा विनियोजन के लिए जनता का धन जमा करना है, जो माँग करने पर लौटाया जा सकता है तथा चैक, ड्राफ्ट अथवा अन्य प्रकार की आज्ञा द्वारा निकाला जा सकता है।''

♦ बैंकों द्वारा एक निश्चित अवधि के लिए जो जमाएँ स्वीकार की जाती हैं उन्हें अवधि जमाएँ (Fixed Deposit) कहते हैं, इन पर ब्याज की दर ऊँची होती है।

♦ माँग जमाएं वे जमाएं होती हैं जो ग्राहक के द्वारा किसी भी समय माँगे जाने पर बैंकों को अदा करनी पड़ती हैं, ऐसी जमाओं पर ब्याज दर कम होती है।

♦ व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को 24 घंटे अपनी सेवाएँ देने के लिए इंटरनेट बैंकिंग सेवाएँ प्रदान करते हैं। इसके द्वारा ग्राहक घर बैठे अपने खातों से विभिन्न सेवाओं का शुल्क भुगतान आसानी से कर सकते हैं।

♦ ATM - Automated Teller Machine होती है। यह पूर्णतया कम्प्यूटरीकृत मशीन होती है जो बैंक के सर्वर से जुड़ी होती है।

♦ वर्तमान युग में 'स्मार्टफोन' का प्रचलन बढ़ने से व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को 'मोबाइल ऐप' के माध्यम से भी बैंकिंग सुविधा प्रदान करते हैं।

♦ व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को उनके खातों पर अधिविकर्ष सीमा उपलब्ध करवाती है, अल्प समय के लिए ग्राहक उस सीमा तक जमा धन से अधिक राशि निकलवा सकते हैं।

♦ व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को क्रेडिट कार्ड के माध्यम से भी बैंकिंग सुविधा प्रदान करते हैं इसके अन्तर्गत व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को उनके खातों पर एक निश्चत साख सीमा में कार्ड द्वारा भुगतान की सुविधा उपलब्ध करवाते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

(1) व्यापारिक बैंक का प्रमुख कार्य है –
 (अ) जमाएं स्वीकार करना तथा ऋण प्रदान करना
 (ब) नोट निर्गमन करना
 (स) सरकार के बैंकर का कार्य
 (द) बैंकों को आर्थिक सहायता पहुँचाना

(2) निम्नलिखित में से कौनसे जमा खाते में सर्वाधिक ब्याज दर देय है –
 (अ) चालू खाता (ब) आवर्ति जमा खाता
 (स) बचत खाता (द) स्थायी जमा खाता

(3) ATM सुविधा क्या है –
 (अ) 24 घण्टे बैंक काउंटर खुला रखना
 (ब) बैंक से तत्काल ऋण सुविधा
 (स) स्वचालित कम्प्युटरीकृत मशीन से 24 घण्टे बैंकिंग सुविधा
 (द) बैंक का सामान्य टैलर काउण्टर

(4) मोबाइल बैंकिंग के लिये आवश्यक है–
 (अ) स्मार्टफोन (ब) इंटरनेट
 (स) बैंक अकाउंट (द) उपर्युक्त सभी

(5) कौनसी योजना के तहत लोग अपना खाता बैंक में निशुल्क खुलवा सकते हैं –
 (अ) प्रधानमंत्री स्वरोजगार योजना
 (ब) प्रधानमंत्री जन धन योजना
 (स) प्रधानमंत्री राहतकोष योजना

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(द) राष्ट्रीय बचत योजना

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. व्यापारिक बैंक की परिभाषा लिखिए।
2. व्यापारिक बैंक के कोई दो कार्य लिखिए।
3. अधिविकर्ष सुविधा को समझाइये।
4. इंटरनेट बैंकिग क्या है?
5. **ATM** का पूरा नाम लिखिये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. बचत खाते और चालू खाते के अंतर को समझाइये।
2. व्यापारिक बैंक के प्रमुख कार्य लिखिये।
3. मोबाइल बैंकिंग क्या है? समझाइये।
4. वर्तमान में बैंकों द्वारा उपलब्ध करवाई जाने वाली कोई दो सेवाओं का वर्णन कीजिये।
5. व्यापारिक बैंकों द्वारा की जाने वाली साख सृजन की कोई दो सीमाऐं लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न –

1. व्यापारिक बैंक की परिभाषा लिखिए। व्यापारिक बैंकों के कार्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
2. साख सृजन किसे कहते हैं? व्यापारिक बैंकों द्वारा की जाने वाली साख सृजन की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	द	स	द	ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 19

केन्द्रीय बैंक : कार्य एवं साख नियंत्रण
(Central Bank : Functions and Credit Control)

केन्द्रीय बैंक–

प्रत्येक देश की अर्थव्यवस्था के बैंकिंग और मौद्रिक क्षेत्र को नियमित एवं नियंत्रित करने का महत्वपूर्ण कार्य उसका केन्द्रीय बैंक करता है। यह देश में सुस्थिर आर्थिक विकास, पूर्ण रोजगार, मूल्य–स्थिरता एवं सुदृढ़ भुगतान संतुलन को स्थिर बनाये रखने के लिये उत्तरदायी होता है। केन्द्रीय बैंक सभी बैंकों एवं वित्तीय संस्थाओं को निर्देश जारी करता है। अमेरिका में यह 'फेडरल रिजर्व बैंक' इंग्लैण्ड में 'बैंक ऑफ इंग्लैण्ड' और भारत में यह भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India) के नाम से जाना जाता है। केन्द्रीय बैंक प्रत्येक देश का शीर्षस्थ (Apex) बैंक होता है। एम. एच. डी. कॉक के अनुसार 'केन्द्रीय बैंक वह होता हैं जो अपने देश की मौद्रिक व बैंकिग ढाँचे का सिरमौर होता है।'

केन्द्रीय बैंक की परिभाषा–

केन्द्रीय बैंक को अनेक विद्वानों ने अपने–अपने दृष्टिकोणों से परिभाषित करने का प्रयास किया है –

ए. सी. एल. डे के अनुसार :– ''केन्द्रीय बैंक वह बैंक है, जो मौद्रिक एवं बैंकिंग प्रणाली को नियंत्रित एवं स्थिर करने में सहायक होता हैं।''

सैम्यूलसन के अनुसार :– ''एक केंन्द्रीय बैंक, बैंकों का बैंक है, जिसकी जिम्मेदारी मौद्रिक आधार के नियंत्रण की होती है और उच्च शक्तिशाली मुद्रा नियंत्रण करता है।''

इस प्रकार स्पष्ट है केन्द्रीय बैंक किसी भी देश की वह शीर्ष संस्था है जो मौद्रिक व बैंकिग क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए अधिकृत होती हैं।

भारत में उक्त भूमिका भारतीय रिजर्व बैंक अदा करता है। यह देश की सम्पूर्ण मौद्रिक एवं वित्तीय क्षेत्र का नियामक होता है। साथ ही करेंसी जारी करने से लेकर बैंकिग संस्थाओं को अनुज्ञा पत्र जारी करने का अधिकार भी इसे प्राप्त है। इस प्रकार देश की अर्थव्यवस्था में इसे एक शीर्ष बैंक अथवा केन्द्रीय बैंक के रूप में जाना जाता हैं।

केन्द्रीय बैंक के कार्य

केन्द्रीय बैंक के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं –

(1) करेंसी का निर्गमन

(2) बैंको का बैंक एवं नियंत्रणकर्ता

(3) सरकार का बैंकर एवं सलाहकार

(4) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय कोषों का संरक्षक

(5) अन्तिम ऋण दाता

(6) केन्द्रीय समाशोधन

(7) साख का नियमन एवं नियंत्रण

(1) करेंसी का निर्गमन:–

केन्द्रीय बैंक वैधानिक रूप से देश की मुद्रा (नोट) का निर्गमन एवं संचालन का कार्य प्रमुख रूप से करता है। भारत में नोट निर्गमन का एकाधिकार भारतीय रिजर्व बैंक के पास है, जिससे नोटों में एक रूपता तथा विनिमय में सुविधा बनी रहती है। देश में पर्याप्त मात्रा में नोट जारी करने के लिए न्यूनतम कोष प्रणाली (Minimum Reserve System) का उपयोग किया जाता है, जिसके अन्तर्गत अर्थव्यवस्था में निर्गमित कुल मुद्रा की एवज में न्यूनतम कोष रिजर्व बैंक को अपने पास जमा रखना पड़ता हैं। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक का देश में करेंसी संचालन पर प्रत्यक्ष रूप से नियन्त्रण होता हैं।

न्यूनतम कोष प्रणाली:–

इस प्रणाली के अन्तर्गत भारत में रिजर्व बैंक अपने पास 115 करोड़ रुपये का सोना और 85 करोड़ की विदेशी प्रतिभूतियाँ सदैव रिजर्व में रखता हैं इस प्रकार दो सौ करोड़ रुपये का न्यूनतम कोष रिजर्व में रखने के पश्चात भारतीय रिजर्व बैंक किसी भी सीमा तक नोट जारी कर सकता है। भारत में 1956 से ही इस प्रणाली का उपयोग नोट निर्गमन हेतु किया जा रहा है।

(2) बैंकों का बैंक एवं नियंत्रणकर्ता :–

केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के समस्त वित्तीय क्रिया–कलापों का नियमन एवं नियंत्रण करता है। सभी व्यापारिक बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित प्रतिशत भाग केन्द्रीय बैंक के पास अनिवार्य रूप से रखना पड़ता है। देश की बैंकिंग प्रणाली को उन्नत बनाने के लिये केन्द्रीय बैंक समय–समय पर दिशा–निर्देश जारी करता है। बैंको के मध्य किसी प्रकार के विवाद को निपटाने में यह निर्णयकर्ता की भूमिका अदा करता हैं। केन्द्रीय बैंक देश के बैंकिग ग्राहकों के हितों को भी संरक्षण प्रदान करता है। भारत में रिजर्व बैंक ग्राहकों से सीधे शिकायत प्राप्त होने पर संबंधित बैंक को दिशा–निर्देश जारी करता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(3) सरकारी बैंकर, एजेन्ट एवं सलाहकार :–

केन्द्रीय बैंक देश की ऊँची विकास दर प्राप्त करने में सहयोगी भूमिका अदा करता है। आर्थिक विकास हेतु नीति निर्माण में सलाहकार का कार्य करता है। केन्द्रीय बैंक सरकार की ओर से धन जमा करता है एवं जरूरत पड़ने पर सरकार की तरफ से भुगतान भी करता है। भारत में इसी प्रकार रिजर्व बैंक केन्द्रीय बैंक के रूप में सरकार के सलाहकार की भूमिका अदा करता है। देश की मौद्रिक नीति की घोषणा इसी प्रयोजन हेतु केन्द्रीय बैंक द्वारा समय–समय पर की जाती है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय विनिमय कोषों का संरक्षक :–

केन्द्रीय बैंक देश के लिये विदेशी विनिमय कोषों का संरक्षक भी होता है। यह विनिमय कोषों के संरक्षण के साथ–साथ भुगतान कोषों को संवर्धित करने का कार्य भी करता है। यह विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त विदेशी मुद्रा को जमा करता है तथा आवश्यकता पड़ने पर सरकार की ओर से अदायगी भी करता है। विदेशी मुद्रा की तुलना में घरेलू मुद्रा की विनिमय दर को स्थिर बनाये रखने का कार्य भी केन्द्रीय बैंक द्वारा किया जाता है जिसके लिये 'अवमूल्यन' अथवा 'अधिमूल्यन' उपकरणों का उपयोग किया जाता है। भारत में यह कार्य रिजर्व बैंक सम्पादित करता है।

(5) अन्तिम ऋण दाता :–

केन्द्रीय बैंक देश का शीर्षस्थ बैंक होने के साथ – साथ अपने अधीनस्थ बैंकों के लिए वित्तीय संकट की स्थिति में अंतिम ऋण दाता की भूमिका भी अदा करता है। अधीनस्थ बैंकों को उनकी प्रतिभूतियों की एवज में तत्काल केन्द्रीय बैंक ऋण उपलब्ध करवाता है।

(6) केन्द्रीय समाशोधन :–

केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के नकद कोषो का संरक्षक होने के कारण अपने अधीनस्थ बैंको के लिये समाशोधन बैंक का कार्य भी करता है। व्यापारिक बैंको के आपसी लेन–देन इत्यादि का समाशोधन केन्द्रीय बैंक के माध्यम से बिना नकद राशि का भुगतान किये खातों के माध्यम से हो जाते हैं। केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर राशि स्थानान्तरित करने में भी माध्यम बनता है। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक भुगतानों एवं राशि स्थानान्तरण हेतु केन्द्रीय समाशोधन का माध्यम बनता हैं।

(7) साख का नियमन एवं नियंत्रण :–

देश में मुद्रा की पूर्ति के परिमाण और साख की मात्रा दोनों को नियंत्रित करने का कार्य केन्द्रीय बैंक का होता है। देश में मुद्रा की कुल मात्रा और उसका चलन वेग प्रत्यक्ष रूप से मुद्रा स्फीति और मुद्रा संकुचन को प्रभावित करता है। आर्थिक विकास के लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए केन्द्रीय बैंक अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा को नियंत्रित करता हैं। साख का विस्तार या संकुचन करने के लिए केन्द्रीय बैंक मौद्रिक नीति का उपयोग करता है, जिसे हम आगे विस्तार से जानेंगे।

केन्द्रीय बैंक का प्रमुख कार्य साख नियंत्रण हैं। व्यापारिक बैंक की साख निर्माण क्षमता को नियंत्रित करना आवश्यक होता हैं। देश में कीमत स्तर को स्थिर करना अर्थात मुद्रा स्फीति एवं मुद्रा संकुचन जैसी अस्थिरता को दूर करना केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण का प्रमुख उद्देश्य होता है। इसके अतिरिक्त विदेशी विनिमय दर को स्थिर करना, स्थिरतापूर्वक आर्थिक वृद्धि करना देश में व्यापार के अनुकूल साख की मात्रा उपलब्ध कराना आदि।

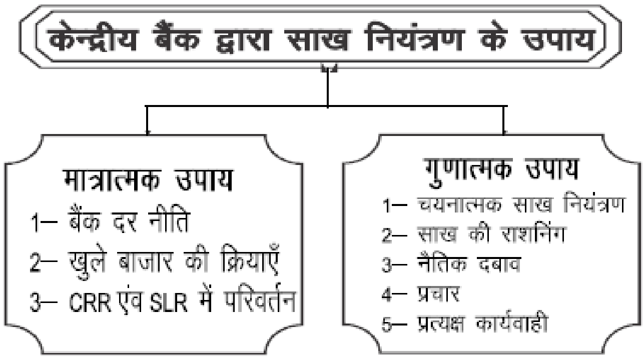

(I) मात्रात्मक उपाय (Quantitative Methods) :–

इन उपायों के अपनाने से प्रत्यक्ष रूप से कुल साख की मात्रा पर प्रभाव पड़ता है किन्तु साख किस उद्देश्य के लिए उपलब्ध कराई जा रही है, अप्रभावित रहती है। ये उपाय केवल साख की मात्रा पर विशेष ध्यान देते हैं न कि साख की दिशा पर, जब देश की अर्थव्यवस्था में मुद्रा की तरलता की मात्रा का आधिक्य अथवा कमी हो जाती है तो केन्द्रीय बैंक साख की मात्रा एवं लागत को नियंत्रित करने के लिए जिन उपायों को अपनाता है उन्हें मात्रात्मक या परिमाणात्मक उपाय कहा जाता है। साख नियंत्रण के लिए भारत जैसे विकासशील देश में अपनाये जाने वाले मात्रात्मक उपाय इस प्रकार हैं–

1. बैंक दर नीति :–

बैंक दर केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण का सर्वाधिक प्रचलित उपाय है। इसका उपयोग कर केन्द्रीय बैंक अपने अधीनस्थ बैंकों की ऋण देने की क्षमता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करते हैं। ''बैंक दर वह है, जिस दर पर केन्द्रीय बैंक अपने व्यापारिक बैंकों को ऋण उपलब्ध करवाता है।''

बैंक दर वह दर है जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के विनिमय बिलों की पुनर्कटौती करता है भारत में यह कार्य भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा किया जाता है। जब देश में साख की मात्रा कम करनी होती हैं तब केन्द्रीय बैंक 'बैंक दर' को बढ़ा देती है, जिससे व्यापारिक बैंक के लिए ऋण महंगे हो जाते हैं, उसकी साख देने की क्षमता घट जाती हैं। इसके विपरीत साख का विस्तार करने के लिए बैंक दर घटा दी जाती है जिससे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

व्यापारिक बैंक सस्ते ऋण केन्द्रीय बैंक से प्राप्त कर लोगों के लिए अधिक साख (ऋण) उपलब्ध करवा पाते हैं।

2. खुले बाजार की क्रियाऐं :–

केन्द्रीय बैंक द्वारा सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदने व बेचने की क्रिया को खुले बाजार की क्रियाऐं कहा जाता है। अर्थव्यवस्था में साख का नियमन करने हेतु केन्द्रीय बैंक इस प्रकार की क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। जब अर्थव्यवस्था में साख की मात्रा कम करनी होती है, तो केन्द्रीय बैंक अपने पास संचित प्रतिभूतियों को वाणिज्यिक बैंकों को बेचना शुरू कर देता है, जिससे उनके पास नकद कोषों में कमी आती हैं और साख की मात्रा घटती है। इसके विपरीत यदि केन्द्रीय बैंक सरकारी प्रतिभूतियों को खरीदना शुरू करती है तो बैंको के पास नकद कोषों में वृद्धि हो जाती है, जिससे बैंक अधिक ऋण स्वीकृत कर पाते हैं। इससे अर्थव्यवस्था में साख का विस्तार होता है।

3. नकद कोषानुपात (CRR) व वैधानिक तरलतानुपात (SLR) में परिवर्तन :–

केन्द्रीय बैंक साख नियंत्रण के लिये नकद कोषानुपात (CRR) व वैधानिक तरलतानुपात (SLR) दोनों उपकरणों का उपयोग करता है। बैंकिंग विधान के अनुसार ''सभी व्यापारिक बैंकों को अपनी कुल तरल परिसम्पत्तियों की एक निश्चित मात्रा स्वर्ण एवं सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में रखना अनिवार्य होता है जिसे वैधानिक तरलतानुपात (SLR) कहते हैं।

इसी प्रकार 'बैंकिंग विधान के अनुसार बैंकों को अपनी कुल जमाओं का एक निश्चित अनुपात नकद रिजर्व के रूप में बनाये रखना होता है, जिसे नकद कोषानुपात (CRR) कहते हैं।

जब केन्द्रीय बैंक को साख का विस्तार करना होता है तो उक्त दोनों अनुपातों को कम कर दिया जाता है एवं इसके विपरीत जब साख का संकुचन या कमी करनी होती है तो उक्त अनुपातों में वृद्धि कर दी जाती है।

(ii) गुणात्मक उपाय (Qualitative Measures) :– केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियंत्रण हेतु कुछ गुणात्मक उपाय भी अपनाये जाते हैं जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विशिष्ट क्षेत्र में साख को सीमित करने का होता हैं। साख का प्रवाह अनुत्पादक से उत्पादक क्षेत्र की वरफ करने का प्रयास केन्द्रीय बैंक की चयनात्मक साख नियंत्रण रीतियों द्वारा किया जाता है। साख नियंत्रण के गुणात्मक उपाय इस प्रकार हैं–

1. चयनात्मक साख नियंत्रण :–

केन्द्रीय बैंक द्वारा विशिष्ट क्षेत्रों एवं विशिष्ट आवश्यकता वाले समूहों के लिये चयनात्मक साख के नियंत्रण के उपाय अपनाये जाते हैं, जो इस प्रकार हैं –

1. ऋण की सीमाओं में परिवर्तन करना।
2. विनिमय बिलो की ब्याज दरों/कटौती दरों में भिन्नता रखना
3. विशिष्ट क्षेत्रों में ऋणों की जाँच व नियंत्रण।
4. विलासिता पूर्ण वस्तुओं के ऋण की अलग से किस्त निर्धारण करना।

2. साख की राशनिंग :–

इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक के द्वारा भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के लिए साख की राशनिंग (अधिकतम सीमा निर्धारण) कर दी जाती हैं। यह सीमा बैंक के अनुसार अलग – अलग निर्धारित की जा सकती है। साख की राशनिंग निम्न तरीकों से की जा सकती हैं–

- परिवर्तनशील पोर्टफोलियो सीमा (सीलिंग) निर्धारण– केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के लिए पोर्टफोलियो सीमा का निर्धारण करता है जिससे बैंक उस सीमा से अधिक साख का विस्तार नहीं कर पाए।
- परिवर्तनशील पूँजी सम्पत्ति अनुपात– केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के पूँजी एवं कुल परिसम्पत्तियों के न्यूनतम अनुपात को निश्चित करता है।

उपरोक्त सभी उपायों के अतिरिक्त भी केन्द्रीय बैंक अन्य उपायों के माध्यम से साख का नियमन एवं नियंत्रण करता है, जो कि इस प्रकार हैं –

3. नैतिक दबाव :–

इसके अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों को सलाह व मार्ग दर्शन प्रदान करता है और इसी के द्वारा उनकी साख निर्माण नीति को नियमित करने का प्रयास करता है। केन्द्रीय बैंक अपने अधीनस्थ व्यापारिक बैंकों को सद्भाव व नैतिक अनुनय से भी अपनी साख नियंत्रित करने के लिए दबाव बना सकता हैं। अतः यह एक सहज एवं महत्वपूर्ण उपाय है।

4. प्रचार :–

बाजारीकरण के इस युग में विज्ञापनों का बड़ा महत्व है। प्रत्येक देश का केन्द्रीय बैंक इस हेतु अपनी–अपनी पत्र पत्रिकाएँ, जर्नल, बुलेटिन इत्यादि प्रकाशित करता है, जिसमें अर्थव्यवस्था से जुड़ी चुनौतियों, समसामयिक आर्थिक पहलुओं पर अपनी राय प्रस्तुत करता है और चुनौतियों से निपटने के उपाय भी सुझाता हैं। केन्द्रीय बैंक का यह उपाय भी साख नियंत्रण में सहायक सिद्ध होता है।

5. प्रत्यक्ष कार्यवाही :–

केन्द्रीय बैंक द्वारा उपरोक्त उपाय करने के पश्चात भी यदि बैंक इसकी नीति का पालन नहीं करते और बाजार विफलताएँ होती प्रतीत हों तो इसे ऐसे वैधानिक अधिकार प्राप्त हैं कि यह व्यापारिक बैंकों के खिलाफ प्रत्यक्ष कार्यवाही कर सकता है। ऐसी कठोर कार्यवाही के तहत दोषी बैंकों को पुनर्कटौती की सुविधा से वंचित कर सकता है। रिजर्व बैंक के द्वारा साख नियंत्रण के लिए किये उपायों में इसे सबसे कठोर कार्यवाही माना जाता हैं। अतः उक्त उपाय व्यवहार में कम ही प्रयोग में लिया जाता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि केन्द्रीय बैंक सफल साख नियंत्रण करने के लिए मात्रात्मक एवं चयनात्मक साख नियंत्रण उपायों का एकीकृत एवं उचित समायोजन करता हैं। जहाँ एक ओर मात्रात्मक उपाय प्रत्यक्ष रूप से साख की मात्रा को प्रभावित करते है वहीं चयनात्मक विधियाँ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

साख की दिशा को निर्धारित करती हैं।

भारतीय रिजर्व बैंक (Reserve Bank of India)

भारतीय रिजर्व बैंक भारत का केन्द्रीय बैंक है। भारत में बैंक के रूप में इसकी स्थापना 1 अप्रैल 1935 में हुई। प्रारम्भ में इसका केन्द्रीय कार्यालय कलकत्ता में स्थापित हुआ। तत्पश्चात 1937 में इसे मुंबई स्थानान्तरित कर दिया गया। तब तक यह निजी स्वामित्व में था। सन् 1949 में इसका पूर्ण रूप से राष्ट्रीयकरण कर दिया गया।

भारतीय रिजर्व बैंक का प्रबंधन एवं संचालन एक केन्द्रीय

भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम, 1934 के प्रावधानों के अनुसार हुई है।

उक्त अधिनियम के तहत् रिजर्व बैंक का कामकाज केन्द्रीय निदेशक बोर्ड द्वारा शासित होता हैं। भारत सरकार भारतीय रिजर्व बैंक अधिनियम के अनुसार इस बोर्ड को नियुक्त करती है।

गठन :— बोर्ड में नियुक्ति/नामन चार वर्ष के लिये होता है।

सरकारी निदेशक :— पूर्णकालिक अवधि के लिये

:— एक गवर्नर और अधिकतम चार उप गवर्नर

गैर सरकारी निदेशक :— सरकार द्वारा नामित

:— विभिन्न क्षेत्रों से दस निदेशक और दो सरकारी अधिकारी

:— चार निदेशक, चार स्थानीय बोर्डों में से एक प्रत्येक से

रिजर्व बैंक के कार्य :—

भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा सम्पादित किये जाने वाले प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं —

मुद्रा जारीकर्ता :— अर्थव्यवस्था में आम जनता को अच्छी गुणवत्ता वाले करेंसी नोट व सिक्कों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से करेंसी नोट जारी करता हैं। भारतीय रिजर्व बैंक भारत की करेंसी रुपया है जिसका संकेत ₹ है। परिचालन योग्य नहीं रहने पर करेंसी और सिक्कों को नष्ट भी करता हैं। भारत में एक रुपये का नोट सरकार द्वारा जारी किया जाता है, जिस पर वित्त सचिव के हस्ताक्षर होते हैं। 2, 5, 10, 20, 50, 100, 200, 500 एवं 2000 के नोट भारतीय रिजर्व बैंक जारी करता है। जिस पर रिजर्व बैंक गर्वनर के हस्ताक्षर होते है।

मौद्रिक प्राधिकारी :— देश की अर्थव्यवस्था के लिये मौद्रिक नीति तैयार करता है; उसका कार्यान्वयन और निगरानी भी करता है। मौद्रिक नीति का प्रमुख उद्देश्य मूल्य स्थिरता बनाए रखना और उत्पादक क्षेत्रों को पर्याप्त ऋण उपलब्ध करवाना होता है।

वित्तीय प्रणाली का विनियामक :— बैंकिंग प्रणाली में लोगों का विश्वास बनाये रखना और जमाकर्ताओं के हितों की रक्षा करना रिजर्व बैंक का प्रमुख उद्देश्य होता है। इसके अतिरिक्त जनता को किफायती बैंकिंग सेवाएँ उपलब्ध करवाने के उद्देश्य से रिजर्व बैंक बैंकिंग परिचालन के लिये विस्तृत मानदण्ड निर्धारित करता हैं, जिसके अन्तर्गत देश की बैंकिंग व वित्तीय प्रणाली कार्य करती है।

विदेशी मुद्रा प्रबंधक :— विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम 1999 के अन्तर्गत रिजर्व बैंक विदेशी व्यापार और भुगतान को सुविधाजनक बनाने के लिए कार्य करता हैं। इसी के साथ भारत में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

विदेशी मुद्रा बाजार के क्रमिक विकास हेतु कार्य करता है।

विकासात्मक भूमिका :– राष्ट्रीय उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए रिजर्व बैंक व्यापक स्तर पर प्रोत्साहनात्मक कार्य करता हैं। विभिन्न क्षेत्रों के विकास हेतु मार्गदर्शन प्रदान करता है। रिजर्व बैंक वित्तीय संस्थाओं को इस प्रकार वित्तीय मजबूती प्रदान करता है।

संबंधित कार्य :– उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त रिजर्व बैंक अनेक अन्य कार्य भी सम्पादित करता है जो इस प्रकार हैं –

सरकार का बैंकर :– भारतीय रिजर्व बैंक केन्द्र और राज्य सरकारों के लिये व्यापारी बैंक की भूमिका अदा करता है उनके लिये एक बैंकर का कार्य भी करता है। वित्तीय संकट की स्थिति में रिजर्व बैंक भारत सरकार की आर्थिक सहायता भी करता है।

बैंकों का बैंकर :– भारतीय रिजर्व बैंक सभी अनुसूचित बैंकों के बैंक खातों को नियमित करता हैं। देश में मौद्रिक आधार परिवर्तित करने के लिए समाशोधन गृह की सुविधा प्रदान करता हैं। रिजर्व बैंक अधीनस्थ बैंकों के लिए अंतिम ऋणदाता के रूप में भी कार्य करता है।

सूचना प्रकाशित करना :– रिजर्व बैंक मुद्रा, साख तथा देश की आर्थिक स्थिति के बारे में विश्वसनीय जानकारी प्रकाशित करता हैं। रिजर्व बैंक के कुछ महत्वपूर्ण वार्षिक, अर्धवार्षिक, त्रैमासिक व मासिक अवधि में प्रकाशित होते हैं–

वार्षिक प्रकाशन :– भारत की बैंकिंग की प्रवृत्ति और प्रगति रिपोर्ट, करेंसी और वित्त पर रिपोर्ट, भारतीय अर्थव्यवस्था पर सांख्यिकी की हस्त पुस्तिका।

मासिक प्रकाशन :– भारतीय रिजर्व बैंक बुलेटिन, मोनेटरी एण्ड क्रेडिट इन्फर्मेशन रिव्यू।

भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति :–

(Monetary Policy of Reserve Bank of India)

मौद्रिक नीति से अभिप्राय मुद्रा एवं साख की मात्रा पर नियमन एवं नियंत्रण करने की नीति से है। आधुनिक समय में देश की आर्थिक तरक्की में मुद्रा एवं साख का महत्वपूर्ण स्थान है। देश में मौद्रिक आवश्यकता के अनुरूप मुद्रा एवं साख की मात्रा में उचित प्रबंध एवं नियमन करने की आवश्यकता होती है। भारत में मौद्रिक एवं साख नीति रिजर्व बैंक अपने केन्द्रीय बोर्ड की सिफारिश के आधार पर जारी करता है। रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति के प्रमुख उपकरण निम्नलिखित हैं–

रेपो दर :– रेपो दर से अभिप्राय उस ब्याज दर से है, जो रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को अल्पकालिक दैनिक लेन–देन हेतु ऋणों पर वसूल करता है। केन्द्रीय बैंक बहुत कम अवधि के लिए ऐसे ऋण उपलब्ध करवाता है, यह ओवरनाईट कहलाता है। रिजर्व बैंक इस उपकरण का उपयोग करके बैंको की तरलता घटाने के लिए करता है, जिसके तहत रेपो दर बढ़ा देता है।

रिवर्स रेपो दर :– रिवर्स रेपो दर से अभिप्राय उस ब्याज दर से हैं, जो रिजर्व बैंक वाणिज्यिक बैंकों को उनकी अल्पकालिक जमाओं की एवज में अदा करता है। रिजर्व बैंक इस उपकरण का उपयोग करके बैंकों की तरलता सीमित करने के लिए करता है। रिवर्स रेपो बढ़ाने से बैंकों की जमाओं पर मिलने वाला ब्याज अधिक हो जाने से बैंक अपनी जमाएं केन्द्रीय बैंक में बढ़ा देते हैं।

नकद कोषानुपात (Cash Reserve Ratio):- रिजर्व बैंक सभी व्यापारिक बैंकों का शीर्षस्थ बैंक है। अतः सभी सदस्य बैंकों को अपनी नकद जमाओं का एक निश्चित अनुपात नकद रिजर्व के रूप में बनाये रखना पड़ता है। इसे ही नकद कोषानुपात (CRR) कहते हैं। रिजर्व बैंक इसी कोषानुपात में वृद्धि करके सदस्य बैंकों के साख–सृजन की क्षमता को कम कर देता हैं। इससे देश में साख का संकुचन हो जाता है किन्तु जब यह नकद कोषानुपात में कमी कर देता हैं तो देश की अर्थव्यवस्था में साख का प्रसार हो जाता है।

वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) :– भारतीय रिजर्व बैंक अपने अधीनस्थ बैंकों को अपनी कुल नकद जमाओं का एक निश्चित अनुपात जमा कोष (स्वर्ण, सरकारी प्रतिभूतियां) के रूप रखने के लिए निर्देशित करता है, जिसे सांविधिक या वैधानिक तरलता अनुपात (SLR) कहते हैं। इस प्रकार केन्द्रीय बैंक वैधानिक तरलता अनुपात को कम करके देश में बैंकों द्वारा साख का विस्तार कर सकता है तथा दूसरी तरफ देश में साख की मात्रा घटाने के लिए वैधानिक तरलता अनुपात को बढ़ा देता हैं। इस प्रकार वैधानिक तरलता अनुपात भी भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण हैं।

इस प्रकार रिजर्व बैंक ने 'मूल्य स्थिरता के साथ आर्थिक विकास' के लक्ष्य को बनाये रखने के लिए नियंत्रित साख विस्तार की नीति का पालन किया हैं।

केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंक में तुलना

देश की अर्थव्यवस्था में उसके केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। तथापि केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंकों के उद्देश्य और कार्यों में भिन्नता पाई जाती है, फिर भी देश की मौद्रिक एवं बैकिंग व्यवस्था में दोनो संस्थाऐ अहम जिम्मेदारी निभाती हैं। केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंकों के उद्देश्य और कार्यों की तुलना हम निम्नानुसार कर सकते हैं–

1. व्यापारिक बैंको का प्रमुख उद्देश्य लाभ कमाना होता है जबकि केन्द्रीय बैंक का प्रमुख उद्देश्य मौद्रिक एवं बैकिंग व्यवस्था का नियमन एवं नियंत्रण करना होता है।
2. व्यापारिक बैंक अपनी व्युत्पन्न जमाओं के माध्यम से साख

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निर्माण करती हैं जबकि केन्द्रीय बैंक नोट निर्गमन के माध्यम से साख नियंत्रण करता हैं।

3. व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों को अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती हैं जबकि केन्द्रीय बैंक सरकार व व्यापारिक बैंकों को अल्पकालीन व दीर्घकालीन ऋण प्रदान करती हैं।

4. व्यापारिक बैंक अपने ग्राहकों से जमाएं स्वीकार करती है जबकि केन्द्रीय बैंक ग्राहकों से प्रत्यक्ष लेन–देन स्वीकार नहीं करता है।

5. व्यापारिक बैंक, केन्द्रीय बैंक द्वारा जारी मौद्रिक एवं साख नीति का अनुपालन करते हैं जबकि केन्द्रीय बैंक सरकार का सलाहकार तथा बैकों का बैंक होता है।

6. व्यापारिक बैंकों में ग्राहक अपनी इच्छानुसार राशि जमा करा सकता है जबकि व्यापारिक बैंकों को अपनी जमाओं का एक निश्चित अनुपात केन्द्रीय बैंक में जमा रखना अनिवार्य होता है।

इस प्रकार केन्द्रीय बैंक के दिशा निर्देशों का पालन करते हुए व्यापारिक बैंक देश की मौद्रिक एवं बैंकिग व्यवस्था को सुचारू रूप से चलाने में सहयोग प्रदान करते है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- केन्द्रीय बैंक के दो प्रमुख कार्य– करेंसी नोट का निर्गमन, बैंकों का बैंक एवं नियंत्रणकर्ता
- केन्द्रीय बैंक किसी भी देश की वह शीर्ष संस्था हैं जो मौद्रिक व बैंकिग क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए अधिकृत होती है।
- मात्रात्मक उपाय को अपनाने से प्रत्यक्ष रूप से कुल मुद्रा की पूर्ति एवं साख की मात्रा पर प्रभाव पड़ता हैं, किन्तु साख किस उद्देश्य के लिए उपलब्ध कराई जा रही है, अप्रभावित रहता है।
- साख नियंत्रण हेतु गुणात्मक उपाय भी अपनाये जाते हैं जिनका उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विशिष्ट क्षेत्र में साख को सीमित करने का होता है।
- बैंक दर वह हैं, जिस दर पर केन्द्रीय बैंक अपने व्यापारिक बैंकों को ऋण उपलब्ध करवाता है।
- व्यापारिक बैंकों को अपनी कुल तरल परिसम्पत्तियों की एक निश्चित मात्रा स्वर्ण एवं सरकारी प्रतिभूतियों के रूप में रखना अनिवार्य होता है, जिसे वैधानिक तरलता अनुपात कहते हैं।
- बैंकों को अपनी कुल सम्पति का एक निश्चित अनुपात अपने पास तरल या नकद रूप में रखना अनिवार्य होता है, जिसे नकद कोषानुपात कहते हैं।
- साख की राशनिंग के अन्तर्गत केन्द्रीय बैंक के द्वारा भिन्न–भिन्न क्षेत्रों के लिए साख की राशनिंग (अधिकतम सीमा निर्धारण) कर दी जाती हैं। यह सीमा बैंक के अनुसार अलग–अलग निर्धारित की जा सकती है।
- प्रत्यक्ष कार्यवाही :– केन्द्रीय बैंक द्वारा उपरोक्त उपाय करने के पश्चात भी यदि बैंक इसकी नीति का पालन नहीं करते और बाजार विफलताएँ होती प्रतीत हों तो इसे ऐसे वैधानिक अधिकार प्राप्त हैं कि यह व्यापारिक बैंकों के खिलाफ प्रत्यक्ष कार्यवाही कर सकता हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

(1) बैंक दर से क्या तात्पर्य है –
(अ) जिस पर व्यापारिक बैंक उधार देते हैं।
(ब) जिस पर केन्द्रीय बैंक व्यापारिक बैंकों के बिलों की पुनर्कटौती करता है ।
(स) महाजनों द्वारा बैंकों को जिस दर पर उधार दिया जाता है।
(द) बैंक जनता को जिस दर पर उधार देता है।

(2) निम्नलिखित में से कौन सा साख नियन्त्रण का गुणात्मक उपाय नहीं है –
(अ) साख राशनिंग (ब) नैतिक दबाव
(स) खुले बाजार की क्रियाऐं (द) प्रत्यक्ष कार्यवाही

(3) केन्द्रीय बैंक का निम्न में से कौन सा प्रमुख कार्य है –
(अ) नोट निर्गमन करना
(ब) जनता से सीधा धन जमा करना
(स) जनता को ऋण देना
(द) उपर्युक्त सभी

(4) भारत का केन्द्रीय बैंक है –
(अं) भारतीय स्टेट बैंक (ब) भारतीय रिजर्व बैंक
(स) यूनियन बैंक (द) सिंडीकेट बैंक

(5) एक रुपये के नोट पर किसके हस्ताक्षर होते हैं–
(अ) गवर्नर (ब) प्रधानमंत्री
(स) वित्त सचिव (द) वित्त मंत्री

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1– केन्द्रीय बैंक की परिभाषा लिखिए।
2– बैंक दर से क्या अभिप्राय है?
3– साख की राशनिंग से आप क्या समझते हैं?
4– भारत के केन्द्रीय बैंक का नाम लिखिये।
5– भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा जारी एक मासिक बुलेटिन का नाम लिखिये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1– केन्द्रीय बैंक के नोट निर्गमन के कार्य को समझाइये।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

2– केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियन्त्रण के लिये अपनाये जाने वाले परिमाणात्मक उपाय लिखिये।

3– केन्द्रीय बैंक द्वारा की जाने वाली प्रत्यक्ष कार्यवाही को समझाइये।

4– भारतीय रिजर्व बैंक के केन्द्रीय निदेशक मण्डल को एक फ्लो चार्ट से समझाइये।

5– भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा प्रकाशित कोई चार वार्षिक प्रकाशनों के नाम लिखिये।

निबंधात्मक प्रश्न :–

1– केन्द्रीय बैंक की परिभाषा दीजिए तथा उसके प्रमुख कार्यों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2– केन्द्रीय बैंक द्वारा साख नियन्त्रण के लिये अपनाये जाने वाले उपायों का विस्तार से वर्णन कीजिए।

3– भारतीय रिजर्व बैंक के मौद्रिक उपकरणों को विस्तार से समझाइये।

4– केन्द्रीय बैंक तथा व्यापारिक बैंक में कार्यों के आधार पर तुलना कीजिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	स	अ	ब	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 20

उपभोग फलन, बचत फलन व निवेश फलन की अवधारणा
(Concept of Consumption function, Saving function & Investment function)

परिचय

क्लासिकल अर्थशास्त्रियों का यह मानना था कि अर्थव्यवस्था में पूर्ण रोजगार पाया जाता है। 'से के बाजार के नियम' भी इसी मान्यता पर आधारित था। इनके अनुसार अगर अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की स्थिति है और अगर अर्थव्यवस्था में मुक्त (Free) व पूर्ण प्रतिस्पर्धा की स्थिति है तो बाजार में कुछ शक्तियां ऐसे काम करेंगी जिससे पुनः पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त होगी।

लेकिन 1929–39 के बीच ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका व अन्य देशों में आर्थिक मंदी की स्थिति आयी, जिसके कारण बेरोजगारी बढ़ी व राष्ट्रीय आय भी कम हुई। इसके कारण कई कारखाने बंद हुए और कई उद्योगों में उत्पादन की क्षमता से कम उत्पादन पर काम होने लगा। बहुत बड़े पैमाने पर बेरोजगारी बढ़ने के कारण लोगों को अत्यन्त आर्थिक कठिनाई से गुजरना पड़ा और इस समस्या का उस समय प्रचलित आर्थिक सिद्धान्तों द्वारा कोई सामाधान भी नहीं निकल रहा था।

इसी सन्दर्भ में 1936 में J.M.Keynes (जे.एम.कीन्स) ने अपनी पुस्तक 'The general Theory of employment, interest and money' में रोजगार के क्लासिकल सिद्धान्त का खंडन किया तथा आय व रोजगार के नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो कि उस समय की आर्थिक समस्याओं के निदान में सहायक रहा। कीन्स ने अपनी पुस्तक में रोजगार को प्रभावित करने वाले कारकों के बारे में बताया तथा उन कारकों को भी बताया जिससे अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न होती है। कीन्स ने बताया पूंजीवादी अर्थव्यवस्थाओ में पूर्ण रोजगार की स्थिति नहीं पायी जाती है और अर्थव्यवस्था में सामान्यतया अपूर्ण रोजगार (Under employment equilibrium) साम्य की स्थिति होती है।

कीन्स का आय एवं रोजगार का सिद्धान्त एक अल्पकालीन सिद्धान्त है। कीन्स के अनुसार जनसंख्या, पूंजी, श्रम, शक्ति, तकनीक, मजदूरों की कार्यकुशलता एक समय में बदलती नहीं है। उनके अनुसार आय और उत्पाद में वृद्धि ज्यादा श्रमशक्ति को लगाकर प्राप्त की जा सकती है।

अतः अल्पकाल में अगर राष्ट्रीय आय अधिक होती है तो रोजगार भी अधिक होगा और अगर राष्ट्रीय आय कम होगी तो रोजगार की मात्रा भी कम होगी। कीन्स के आय उत्पादन निर्धारण सिद्वांत को समझने से पहले निम्न निर्धारक फलनों का अध्ययन आवश्यक होगा।

उपभोग फलन

उपभोग फलन कीन्स के अर्थशास्त्र का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। इसको कीन्स का मूलभूत मनोवैज्ञानिक नियम (Fundamental Pschological law) भी कहा जाता है। इस नियम के अनुसार आय के बढ़ने पर उपभोग बढ़ता है लेकिन उस अनुपात में नहीं बढ़ता है जिस अनुपात में आय बढ़ती है अतः बढ़ी हुई आय का कुछ भाग उपभोग बढ़ाने में जाएगा और कुछ भाग बचत बढ़ाने में जाएगा।

कीन्स के अनुसार उपभोग पर प्रमुख रुप से आय का प्रभाव पड़ता है। आय के बढ़ने पर उपभोग बढ़ता है और आय के घटने पर उपभोग घटता है। उपभोग, प्रयोज्य आय पर निर्भर करता है। आय में से कर को घटाने के बाद खर्च योग्य आय प्राप्त होती है जो उपभोग व बचत (C+S) के बराबर होती है एक उपभोग फलन को गणितीय भाषा में निम्न प्रकार से दर्शाते हैं

$$C = f(Y_d)$$

यहां C - उपभोग

Y_d - प्रयोज्य आय

अगर उपभोग फलन एक सरल रेखा है तब

$$C = a + bY_d$$

यहां पर a - स्वायत्त उपभोग

b - सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति (उपभोग फलन का ढाल) अथवा

$$b \quad \frac{C}{Y_d}$$

कुल प्रयोज्य आय में परिवर्तन के फलस्वरुप जो उपभोग में परिवर्तन होता है वह सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति कहलाती है।

चित्र 20.1 (अ) एक रेखीय उपभोग फलन दिखाया गया है यह बताता है कि उपभोग व्यय, व्यक्ति की प्रयोज्य आय के साथ बदलता है। इस चित्र में आय उपभोग सम्बन्ध दिखलाया गया है जबकि दूसरे चर जैसे धन, पूर्ववर्ती आय, (आय का वितरण), कर

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

की दर आदि को स्थिर रखा गया है।

चित्र में सरल रेखा $C = a + b\,Y_d$ एक रेखीय उपभोग फलन है। चित्र में 45° का कोण बनाते हुए समता रेखा (समग्र पूर्ति रेखा) भी बनायी गयी हैं जो यह बताती है कि कुल आय, उपभोग व्यय (C) तथा बचत के बराबर होती है। Y=C+I

उपभोग फलन यह बताता है कि आय का स्तर शून्य के बराबर होने पर भी एक व्यक्ति कुछ न कुछ उपभोग करता है चित्र में यह 100 इकाई के बराबर है। यह स्वायत्त उपभोग कहलाता है। अतः आय के शून्य स्तर पर अबचत होती है। इसे स्थिर उपभोग चर द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है।

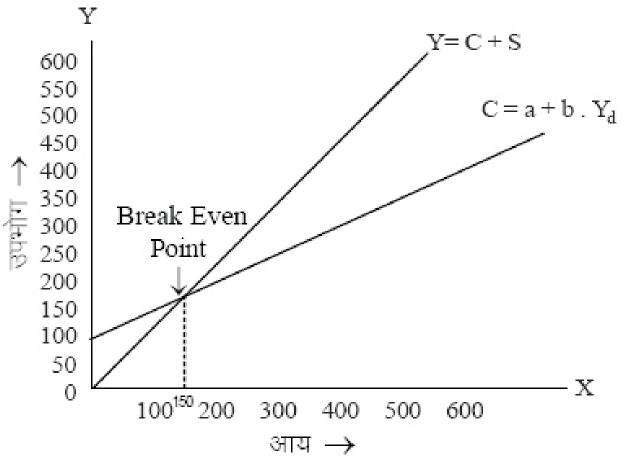

चित्र (अ)

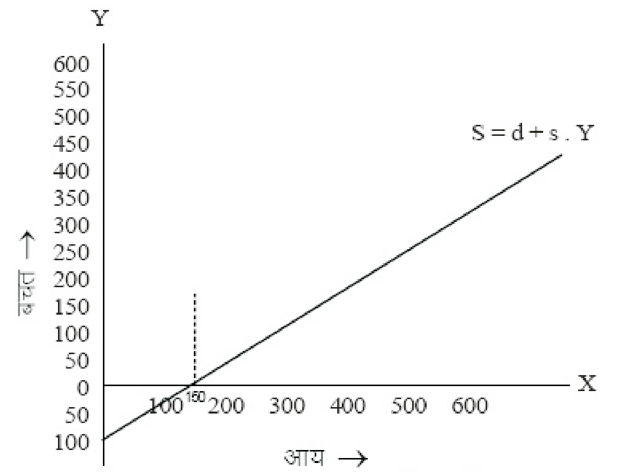

चित्र (ब)

रेखाचित्र 20.1

रेखाचित्र 20.1 में जब आय का स्तर 150 है उस समय बचत शून्य के बराबर है। इस आय के स्तर पर व्यक्ति न तो बचत करता है न ही अबचत करता है। यह आय का समविच्छेद (Breakeven) स्तर कहलाता है। (Breakeven) बिन्दु के पूर्व समाज अबचत करता है क्योंकि समाज का आय का स्तर उपभोग स्तर से कम है।

आय के समविच्छेद (Breakeven level of income) से है क्योंकि उपभोग का स्तर आय के स्तर से कम है।

उपभोग की औसत प्रवृत्ति (Average Propensity to consume)

उपभोग की औसत प्रवृत्ति कुल आय व कुल उपभोग के बीच आनुपातिक संबंध बताती है।

यह आय के किसी विशेष स्तर से उपभोग व्यय का अनुपात होता है।

उपभोग की औसत प्रवृत्ति (APC)

$$APC \quad \frac{C}{Y} \quad \frac{\text{कुल उपभोग}}{\text{कुल आय}}$$

कुल उपभोग में आय का भाग देने से APC प्राप्त होती है।

आय के विभिन्न स्तर पर उपभोग की औसत प्रवृत्ति बदलती रहती है।

उपभोग की औसत प्रवृत्ति को ज्ञात करने के लिए एक तालिका के माध्यम से इसे समझाया जा रहा है। तालिका से ज्ञात होता है कि आय के विभिन्न स्तरों पर उपभोग की औसत प्रवृत्ति का मान बदलता रहता है। जैसे जैसे आय बढ़ती है, त्यों त्यों APC घटती जाती है क्योंकि उपभोग पर व्यय की गई आय का अनुपात होता जाता है।

तालिका 20.1

आय	उपभोग	APC	MPC
0	100	$\frac{100}{0} = \infty$	-
100	150	$\frac{150}{100}$ 1.5	$\frac{50}{100} = 0.5$
200	200	$\frac{200}{200} = 1.0$	$\frac{50}{100} = 0.5$
300	250	$\frac{250}{300} = 0.83$	$\frac{50}{100} = 0.5$
400	300	$\frac{300}{400} = 0.75$	$\frac{50}{100} = 0.5$
500	350	$\frac{350}{500} = 0.7$	$\frac{50}{100} = 0.5$

उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (Margical Propensity to Consume)

उपभोग की वृद्धि में आय की वृद्धि का भाग दिया जाता है तो उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति ज्ञात होती है।

$$MPC \quad \frac{C}{Y} \quad \frac{\text{उपभोग में परिवर्तन}}{\text{आय में परिवर्तन}}$$

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अर्थात उपभोग में परिवर्तन का आय में परिवर्तन के अनुपात को उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति कहते हैं।उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति उपभोग की उस वृद्धि को दर्शाती है जो आय में एक इकाई की वृद्धि से प्राप्त होती है। यह शून्य से अधिक व एक से कम होती हैं।

$$O < MPC < 1$$

यदि $MPC = 0.7$

इसका तात्पर्य है कि आय में एक रुपया बढ़ने से उपभोग में 70 पैसे की वृद्धि होगी। उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति उपभोग फलन के ढ़ाल को दर्शाती है।

उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति को ज्ञात करने के लिए तालिका 20.1 से समझाया जा सकता है।

तालिका से ज्ञात होता है कि एक सरल रेखीय उपभोग फलन में आय के विभिन्न स्तर पर उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति समान रहती है। अर्थात एक सरल रेखीय उपभोग फलन के प्रत्येक बिन्दु पर उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति स्थिर रहती है (चित्र 20.2 अ)। कीन्स के अनुसार, अल्पकाल में MPC स्थिर रहती है। इस अवस्था में APC > MPC होती है। अनेक अर्थशास्त्रियों के अनुसार दीर्घकाल में APC तथा MPC दोनों ही बराबर रहते है। उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति सरल रेखीय उपभोग फलन के ढ़ाल के बराबर होती है।

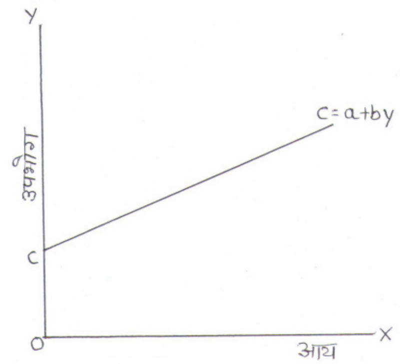

रेखाचित्र 20.2 अ

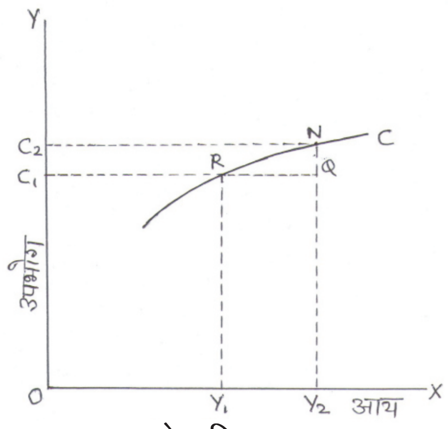

रेखाचित्र 20.2 ब

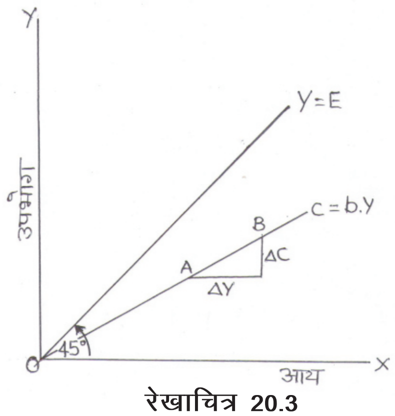

रेखाचित्र 20.3

चित्र 20.2 ब में $\frac{NQ}{RQ}$ द्वारा उपभोग वक्र के ढाल को दर्शाया गया है जहां NQ उपभोग में परिवर्तन (C) और RQ आय में परिवर्तन (Y) है अथवा $\frac{C_1C_2}{Y_1Y_2}$ है। इसी चित्र में औसत उपभोग प्रवृत्ति R बिन्दु पर $\frac{OC_1}{OY_1}$ है और N बिन्दु पर $\frac{OC_2}{OY_2}$ है। C वक्र दायीं ओर अधिक चपटा हो जाता है, जो घटती औसत उपभोग प्रवृत्ति को दर्शाता है।

रेखाचित्र 20.3 रैखिक उपभोग फलन OC=bY दोनों अक्षों के मूल बिन्दु O से प्रारंभ होता है। यहां पर दीर्घकाल में APC और MPC दोनों बराबर होते है। यह दीर्घकालीन उपभोग फलन कहलाता है।

बचत फलन Saving function

बचत को ज्ञात करने के लिए कुल आय में से उपभोग व्यय को घटाया जाता है।

चूंकि $Y = C + S$

इसलिए $S = Y - C$

पूर्व में हमने उपभोग फलन के साथ ही बचत फलन को ग्राफ में दिखलाया है। बचत फलन को ज्ञात करने के लिए 45° की समता रेखा में से आय के विभिन्न स्तर पर उपभोग को घटा दिया जाए तो हमें बचत फलन ज्ञात होता है। चित्र (20.2 ब) में बचत फलन दर्शाया गया है।

$$Y = C + S \quad ...(1)$$

और $$C = a + bY \quad ...(2)$$

(2) का मान (1) में रखने पर

$$Y = a + bY + s$$

$$-a + (1 - b)Y = s$$

अतः बचत फलन का गणितीय रूप है

$$s = -a + (1 - b)Y$$

बचत की औसत प्रवृत्ति (Average propensity to save)

कुल आय व कुल बचत के बीच आनुपातिक संबंध बताती है।

बचत की औसत प्रवृत्ति (APS)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

$$APS \quad \frac{S}{Y} \quad \frac{\text{कुल बचत}}{\text{कुल आय}}$$

कुल बचत में कुल आय का भाग देने पर बचत की औसत प्रवृत्ति प्राप्त होती है। बचत की औसत प्रवृत्ति को दर्शाया गया हैं।

तालिका 20.2

आय	उपभोग	बचत	APS
0	100	0	-
100	150	- 50	$\frac{50}{100}$ 0.5
200	200	0	$\frac{0}{200}$ 0
300	250	50	$\frac{50}{300}$ 0.16
400	300	100	$\frac{100}{400}$ 0.25
500	350	150	$\frac{150}{500}$ 0.3

हम जानते हैं

$$Y = C + S$$

पूरा समीकरण में Y का भाग देने पर

$$\frac{Y}{Y} \quad \frac{C}{Y} \quad \frac{S}{Y}$$

$$1 = APC + APS$$

$$APS = 1 - APC$$

APS का मान निकालने के लिए 1 में से APC को घटाया जाता है।

बचत की सीमान्त प्रवृत्ति (Marginal Propensity it Save)

जब बचत की वृद्धि में आय की वृद्धि का भाग दिया जाता है तो बचत की सीमान्त प्रवृत्ति ज्ञात होती है।

$$MPS \quad \frac{S}{Y} \quad \frac{\text{बचत में परिवर्तन}}{\text{आय में परिवर्तन}}$$

अर्थात बचत में परिवर्तन का आय में परिवर्तन के अनुपात को बचत की सीमान्त प्रवृत्ति कहते है।

हम जानते हैं।

$$Y = C + S$$

इसलिए $\quad Y = \quad C + \quad S$

Y से भाग देने पर

$$\frac{Y}{Y} \quad \frac{C}{Y} \quad \frac{S}{Y}$$

$$1 = MPC + MPS$$

इसलिए $\quad MPS = 1 - MPC$

MPS को निकालने के लिए एक में से MPC को घटाया जाता है।

बचत की सीमान्त प्रवृत्ति ज्ञात करने के लिए निम्न तालिका का प्रयोग करते हैं।

तालिका 20.3

आय	उपभोग	बचत	MPS
0	100	0	-
100	150	- 50	$\frac{50}{100}$ 0.5
200	200	0	$\frac{50}{100}$ 0.5
300	250	50	$\frac{50}{100}$ 0.5
400	300	100	$\frac{50}{100}$ 0.5
500	350	150	$\frac{50}{100}$ 0.5

निवेश फलन –

निवेश शब्द से अर्थशास्त्र में तात्पर्य है नये उत्पादक परिसम्पति (New Productive Assets) को प्राप्त करना और इस नयी उत्पादक परिसम्पति से वस्तुएं और सेवाएं उत्पादित करना। साधारण भाषा में लोगों के द्वारा निवेश शब्द का प्रयोग किया जाता है जब कोई व्यक्ति जमीन में या कम्पनी के शेयर खरीदने में पैसे लगाता है। जबकि अर्थशास्त्र में निवेश से तात्पर्य है नये उत्पादक परिसम्पतियों को प्राप्त करने से है और इसका वस्तुओं और सेवाओं को उत्पादित करने में प्रयोग करना। अगर इन उत्पादक परिसम्पतियों को प्राप्त किया जाता है लेकिन इससे वस्तुएं और सेवाएं उत्पादित नहीं की जाती है तो यह सिर्फ पूंजी निर्माण ही कहलाएगा। और जैसे ही इन परिसम्पतियों का वस्तु और सेवाओं को उत्पादित करने में प्रयोग होता है वैसे ही पूंजी निर्माण, निवेश में बदल जाता है।

किसी अर्थव्यवस्था में निवेश निम्न प्रकार का हो सकता है।

(i) सार्वजनिक निवेश – यह निवेश सरकार व स्थानीय निकायों द्वारा किया गया निवेश है। सरकार द्वारा आधारभूत संरचना को खड़ा करने में किया गया निवेश सार्वजनिक निवेश कहलाता है जैसे रोड़, पुल, बांध, सड़कें आदि।

(ii) निजी निवेश – अगर निवेश निजी निवेशकों द्वारा नयी

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

फैक्ट्री, बिल्डिंग, उपकरण आदि में किया जाता है तो यह निजी निवेश कहलाता है।

(iii) स्वायत्त निवेश – यह वह निवेश है जो उत्पत्ति आय, ब्याज दर तथा लाभ में परिवर्तन पर निर्भर नहीं करता है स्वायत्त निवेश को X अक्ष के सामान्तर सरल रेखा खींचकर बताया जाता है। इस तरह का निवेश सरकारों द्वारा सामान्यतया किया जाता है जैसे लोक कल्याणकारी कार्यों पर किया गया खर्च, जैसे– सड़क, बांध, नहर इत्यादि पर किया गया व्यय इस प्रकार के निवेश में शामिल होता है।

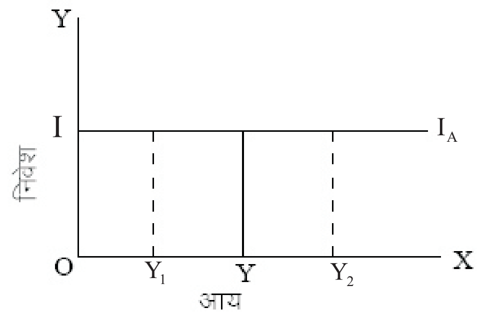

रेखाचित्र 20.4

रेखाचित्र 20.5 में स्वायत्त निवेश को क्षैतिज अक्ष के समान्तर वक्र II_a के रुप में दिखाया गया है। यह प्रकट करता है कि आय के सभी स्तरों OY, OY_2 और OY निवेश की मात्रा IO स्थिर रहती है। इस प्रकार स्वायत्त निवेश आय बेलोच होता है। इसे बहिर्जात घटक जैसे जनसंख्या, अनुसंधान नवप्रवर्तन आदि प्रभावित करते है।

(iv) **प्रेरित निवेश –**

जब निवेश लाभ या आय अर्जित करने के लिए किया जाता है तो इस प्रकार के निवेश को प्रेरित निवेश कहा जाता है। यदि आय बढ़ती है तो निवेश भी बढ़ता है। प्रेरित निवेश आय लोच होता है।

प्रेरित निवेश का वक्र आय के साथ उपर की ओर जाता हुआ वक्र है। जब आय बढ़ती है तो उपभोग की मांग भी बढ़ती है और इसको पूरा करने के लिए निवेश बढ़ाया जाता है। लाभ हेतु किया गया प्रेरित निवेश कीमतों, मजदूरी और ब्याज दर से प्रभावित होता है।

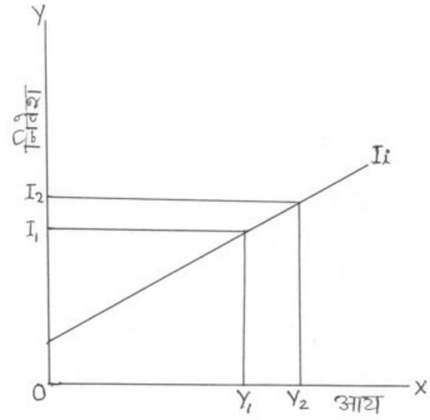

रेखाचित्र 20.5

रेखाचित्र 20.6 में जब आय का स्तर Y_1 है उस समय निवेश का स्तर I_1 है और जब आय का स्तर Y_2 है उस समय निवेश का स्तर I_2 है।

बचत व निवेश के बारे में दो पहलू हैं

(a) प्रत्याशित बचत व प्रत्याशित निवेश Ex-ante Saving and Ex-ante investment किसी एक विशेष साल में जो लोग बचत करते हैं उसे प्रत्याशित बचत कहते हैं।

इसी तरह जब उद्यमकर्त्ता को अपनी वस्तु की बिक्री बढ़ने या वस्तुओं और सेवाओं की कीमत बढ़ने की आशा होती है तो वे अपने वस्तुओं के भंडार को बढ़ाते हैं जिसे प्रत्याशित निवेश कहते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि बचतकर्ता और निवेशकर्ता दो अलग – अलग समूह होते हैं और दोनों अलग – अलग उद्देश्यों से प्रेरित होते हैं अतः प्रत्याशित बचत व प्रत्याशित निवेश एक दूसरे के बराबर नहीं होते हैं।

अतः एक पूंजीगत अर्थव्यवस्था में प्रत्याशित बचत व प्रत्याशित निवेश में अन्तर ही आय के स्तर, उत्पाद के स्तर तथा रोजगार के स्तर में उतार चढ़ाव लाते हैं।

इसमें दो स्थिति हो सकती है –

(1) जब प्रत्याशित निवेश, प्रत्याशित बचत से अधिक होता है।

माना उद्यमकर्ता 50000 करोड़ रु. का निवेश करना चाहते हैं जबकि पारिवारिक इकाई 45000 करोड़ रु. की प्रत्याशित बचत करते हैं ऐसी स्थिति में समग्र मांग समग्र पूर्ति से ज्यादा होती है। इस मांग को पूरा करने के लिए उद्यमकर्ता अतिरेक मांग, ज्यादा साधन को लगाकर अपने उत्पाद को बढ़ायेगें। इससे राष्ट्रीय आय बढ़ेगी और बचत व निवेश पुनः बराबर होकर साम्य की स्थिति प्राप्त होगी।

(2) जब प्रत्याशित निवेश, प्रत्याशित बचत से कम होता है।

माना उद्यमकर्ता 45000 करोड़ रु. का निवेश पसंद करते है

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जबकि पारिवारिक इकाईयां 50000 करोड़ रु. की प्रत्याशित बचत करते हैं। ऐसी स्थिति में समग्र पूर्ति, समग्र मांग से ज्यादा होती है। ऐसी स्थिति में उद्यमकर्ता के पास बिना बिक्री हुई वस्तुओं का स्टॉक इकट्ठा हो जाएगा। अतः उद्यमकर्ता रोजगार के स्तर को घटांएगे और कम उत्पादित करेगें और अंत में आय का स्तर भी घटेगा। इसके कारण बचत भी घटेगी और अंत में निवेश के पुनः बराबर होगी।

(b) पूर्वव्यापी बचतें व संपादित विनियोग (Expost Saving and Expost investment)

संपादित बचतें (Expost Savings) वे बचतें हैं जो पारिवारिक इकाई आय में से वास्तव में बचाते हैं।

संपादित निवेश (Expost Investments) :- ये वे निवेश है जो एक साल में उद्यमकर्ताओं द्वारा वास्तव में किये जाते हैं। आय के सभी स्तरों पर संपादित बचतें, संपादित विनियोग के बराबर होती है।

पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता (Marginal efficiency of Capital) – एक पूंजीगत अर्थव्यवस्था में निवेश हमेशा लाभ के उद्देश्य से प्रेरित होता है। अतः निवेश दो बातों पर निर्भर करता है–

(1) पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता Marginal efficiency of Capital (MEC)

(2) ब्याज दरों पर (Rate of Interst)

पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता बट्टे की वह दर है जो पूर्ति कीमत (Supply Price) या (परियोजना की लागत) को परियोजना से होने वाले भविष्य के प्रतिफल के बराबर करती है। प्रो. कुरिहारा के अनुसार 'यह अतिरिक्त पूंजीगत वस्तुओं की भावी आय और उनकी पूर्ति कीमत के बीच अनुपात है।' पूंजी की सीमान्त उत्पादकता, पूंजी निवेश से अनुमानित लाभ की दर होती है। यह दो तत्वों द्वारा प्रभावित होती है– प्रत्याशित आय और पूर्ति कीमत। प्रत्याशित लाभ अर्थात् निवेश करते समय ध्यान में रखा जाता हैं कि भविष्य में कितने प्रतिफल प्राप्त होगें। इसी प्रकार पूंजीगत वस्तुओं पर किया गया व्यय लागत अथवा पूर्ति कीमत कहलाता है।

$$C \quad \frac{R_1}{1 \quad r} \quad \frac{R_2}{(1 \quad r)^2} \quad .... \quad \frac{R_n}{(1 \quad r)^n}$$

यहां पर $C =$ परियोजना की लागत (पूर्ति कीमत)

$r =$ बट्टे की दर

$R_1, R_2 .... R_n$ = वार्षिक भविष्य के प्रतिफल पूंजीगत सम्पत्ति से

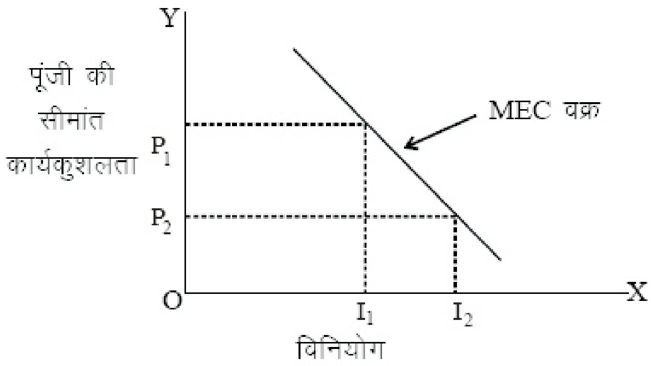

रेखाचित्र 20.6

उपरोक्त रेखाचित्र 20.7 MEC वक्र को दर्शाता है। X अक्ष पर विनियोग की मात्रा और Y अक्ष पर पूंजी की सीमान्त उत्पादकता को दर्शाया गया है, जब विनियोग OI_1 से बढ़कर OI_2 होता है तो पूंजी की सीमान्त उत्पादकता घटकर OP_1 से OP_2 हो जाती है। पूंजी सीमान्त उत्पादकता विनियोग में वृद्धि के साथ–साथ घटती जाती है। इसके दो कारण है 1. अधिक उत्पादन हेतु जैसे–जैसे पूंजी का उपयोग बढ़ता है वैसे–वैसे प्रत्याशित लाभ की मात्रा घटती जाती है क्योंकि अधिक उत्पादन से उत्पादित वस्तु की कीमतें क्रमशः घटने लगती है। 2. पूंजी की मांग बढ़ने पर उसकी पूर्ति कीमत में वृद्धि होने से उसकी उत्पादन लागत में भी वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार जैसे–जैसे निवेश बढ़ता है। पूंजी की सीमांत कार्यकुशलता (MEC) दाहिने हाथ की तरफ झुकती है।

एक निवेशक, निवेश सम्बन्धी निर्णय करने के लिए पूंजी की सीमांत कार्यकुशलता (MEC) की ब्याज दर से तुलना करता है। जब तक पूंजी की सीमांत कार्यकुशलता ब्याज दर से ज्यादा होगी तब तक निवेश किया जाता रहेगा। विनियोग का साम्य स्तर वहां निर्धारित होता है जहां पूंजी की सीमान्त उत्पादकता ब्याज की वर्तमान दर के बराबर हो जाती है।

मुख्य बिन्दु :–

कीन्स का उपभोग के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक नियम – इस नियम के अनुसार एक व्यक्ति की आय के बढ़ने पर वस्तुओं और सेवाओं का उपभोग बढ़ता है लेकिन उतना नहीं जितनी उसकी आय बढ़ी है। अतः बढ़ी हुई आय का कुछ हिस्सा उपभोग बढ़ाने में जाएगा और कुछ हिस्सा बचत बढ़ाने में जाएगा।

एक उपभोग फलन को गणितीय रुप में निम्न प्रकार से दर्शाते हैं।

$$C = f(Y_d)$$

or $C = a + bY_d$ (सरल रेखीय उपभोग फलन)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

यहां पर a = स्वायत्त उपभोग

b = सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति

c = उपभोग व्यय

Y_d = प्रयोज्य आय

उपभोग की औसत प्रवृत्ति, कुल उपभोग में कुल आय का भाग देने से प्राप्त होती है।

$$APC \quad \frac{C}{Y}$$

उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति :– जब उपभोग की वृद्धि में आय की वृद्धि का भाग दिया जाता है तो उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

$$MPC \quad \frac{C}{Y}$$

यहां पर MPC - उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति

C – उपभोग में वृद्धि / परिवर्तन

Y – आय में वृद्धि / परिवर्तन

MPC का मान 0 से 1 के बीच में होता है।

बचत फलन :– बचत फलन, बचत व आय के बीच फलनात्मक सम्बंध को बताता है।

$S = f(Y_d)$

or $S = -a + (1-b)Y$

बचत की औसत प्रवृत्ति (APS) Average prospensity to save

कुल बचत में कुल आय का भाग देने से प्राप्त होती है।

$APS = \frac{S}{Y}$

बचत की सीमान्त प्रवृत्ति :– जब बचत की वृद्धि में आय की वृद्धि का भाग दिया जाता है तो MPS या बचत की सीमान्त प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

$$MPS \quad \frac{S}{Y}$$

निवेश से तात्पर्य नयी उत्पादक परिसम्पत्ति को खरीदना और उसका वस्तुओं और सेवाओं में उपयोग निवेश कहलाता है।

सार्वजनिक निवेश – सरकारों द्वारा किया गया निवेश सार्वजनिक निवेश कहलाता है

निजी निवेश – यदि निवेश निजी निवेशकर्ता द्वारा नयी फैक्ट्री, बिल्डिंग, औजारों (equiment) आदि पर किया जाता है तो निजी निवेश कहलाता है।

स्वायत्त निवेश – यह वह निवेश होता है जो उत्पत्ति, आय, ब्याज दर तथा लाभ आदि पर निर्भर नहीं करता है।

प्रेरित निवेश :– जब निवेश लाभ या आय अर्जित करने के लिए किया जाता है तो इस प्रकार के निवेश को प्रेरित निवेश कहा जाता है।

पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता :– नये निवेश पर लाभ की प्रत्याशा (expected rate of profitability) को पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता कहते है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1 उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति का क्या सूत्र है।

(अ) $\frac{S}{Y}$ (ब) $\frac{C}{Y}$

(स) $\frac{C}{Y}$ (द) शून्य

2 MPC का अधिकतम मूल्य होगा

(अ) शून्य (ब) एक

(स) अनन्त (द) इनमें से कोई नहीं।

3 यदि APC = APS है तो APC तथा APS का मान अलग–अलग क्या होगा।

(अ) शून्य (ब) 1

(स) 0.5 (द) 0.7

4 MPC तथा MPS का जोड़ कितने के बराबर होता है।

(अ) शून्य (ब) अनन्त

(स) इनमें से कोई नहीं (द) एक

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति से आप क्या समझते है?
2. उपभोग फलन किसे कहते है?
3. यदि MPC = 0.5 तो MPS का क्या मान होगा?
4. निवेश फलन किसे कहते हैं?
5. बचत की औसत प्रवृत्ति किसे कहते हैं?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. उपभोग की औसत प्रवृत्ति से आप क्या समझते हैं इसे किस प्रकार मापा जा सकता है।
2. निवेश से आप क्या समझते हैं।
3. स्वायत्त निवेश तथा प्रेरित निवेश में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

4. बचत की सीमान्त प्रवृत्ति एवं उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति से आप क्या समझते हैं।

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. बचत फलन को सारणी एवं चित्र तथा गणितीय सूत्र के द्वारा समझाइए।
2. पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता को विस्तार से समझाइये।
3. उपभोग फलन को सारणी, चित्र व गणितीय सूत्र के द्वारा समझाइये।

उत्तर तालिका

1	2	3	4
स	ब	स	द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 21

आय– उत्पादन का निर्धारण
(Income - Output Dertermination)

हमने पूर्ववर्ती अध्याय में उपभोग फलन, बचत फलन व निवेश फलन की अवधारणा का अध्ययन किया है। इस अध्याय में हम समग्र मांग व समग्र पूर्ति वक्रों की सहायता से आय एवं उत्पादन के संतुलन स्तर का निर्धारण करेंगे।

समग्र मांग :–

एक दिए हुए आय व रोजगार के स्तर पर एक साल में अर्थव्यवस्था में जो वस्तुओं और सेवाओं की मांग की जाती है उसे समग्र मांग कहते है।

समग्र मांग एक अर्थव्यवस्था मे समग्र खर्चे के बराबर होती है। एक खुली अर्थव्यवस्था में समग्र मांग के चार हिस्से होते हैं।

1. उपभोग खर्च (C)
2. विनियोग खर्च (I)
3. सरकारी खर्च (G)
4. शुद्ध निर्यात (X-M)

AD = C + I + G + (X-M) (खुली अर्थव्यवस्था में)

AD = C + I (बंद अर्थव्यवस्था में)

प्रस्तुत अध्याय में द्वि–क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था के संदर्भ में आय उत्पादन निर्धारण का विश्लेषण किया गया है। द्वि–क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था में समग्र मांग दो हिस्सों से मिलकर बनी होती है।

1. उपभोग मांग 2. विनियोग मांग

उपभोग मांग उपभोग की सीमान्त प्रवृति तथा आय पर निर्भर करती है।

उपभोग की सीमान्त प्रवृति के दिए होने पर उपभोग मांग आय पर निर्भर करती है। अतः उपभोग मांग आय का फलन है।

समीकरण के रूप में $C = f(Y)$

विनियोग मांग दो तत्वों पर निर्भर करती है।

1. पूँजी की सीमान्त कार्यदक्षता (Marginal efficiency of Capital)
2. ब्याज दर (Rate of Interest)

इसमें से ब्याज दर तुलनात्मक रूप से स्थिर रहती है और अल्पकाल में सामान्यतः बदलती नहीं है।

अतः विनियोग मांग मुख्यतया पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता में बदलाव पर निर्भर करती है। पूंजी की सीमान्त कार्यकुशलता से तात्पर्य उस प्रत्याशित लाभ की दर से है जो अपने पूंजी परिसम्पति के विनियोग पर प्राप्त होता हैं।

घरेलू निवेश मांग = सकल घरेलू पूंजी निर्माण + बिना बिके माल के स्टॉक में बदलाव।

समग्र पूर्ति :–

समग्र पूर्ति से तात्पर्य उत्पाद की कुल पूर्ति से है। समग्र पूर्ति का एक हिस्सा उपभोग के प्रयोग के लिए बेचा जाता है और दूसरा हिस्सा बिना बिके स्टॉक से है।

अर्थव्यवस्था में कुल उपभोग व्यय (C) और कुल बचतें (S) का योग होती है। उपभोग व्यय जहां उपभोक्ता वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन पर किया जाता है वहीं कुल बचतें पूंजीगत वस्तुओं के उत्पादन में निवेश की जाती है। समीकरण के रुप में समग्र पूर्ति –

Aggregate supply = C + S

समग्र पूर्ति से तात्पर्य बाजार में बिकने के लिए कुल उत्पाद के मौद्रिक मूल्य से है।

एक द्विस्तरीय अर्थव्यवस्था में साम्य आय स्तर का निर्धारण

एक ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें दो क्षेत्र हैं एक घरेलू क्षेत्र और दूसरा उत्पादक क्षेत्र। इसमें समग्र मांग वक्र व समग्र पूर्ति वक्र निम्न प्रकार से प्राप्त किये जाते हैं।

समग्र मांग वक्रः– ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें दो क्षेत्र हैं इसमें घरेलू क्षेत्र में मांग अंतिम उपभोग के लिए होती है तथा उत्पादक क्षेत्र में घरेलू निवेश के लिए मांग होती है। यह भी माना जाता है कि निवेश स्वायत्त है।

अतः I = Ia (स्वायत्त विनिवेश)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अतः AD = C + Ia

AD = a + b . Y_d + Ia (चूंकि C = a + b . Y_d)

अतः समग्र मांग वक्र को ग्राफ में निम्नानुसार बनाया जाता है।

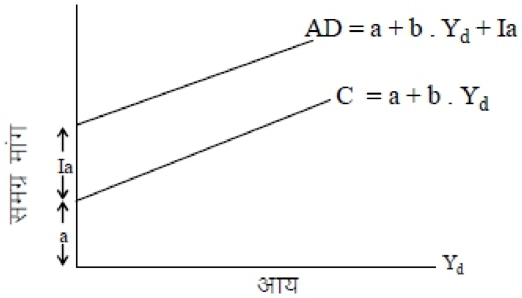

j[kkfp= 21-1

रेखाचित्र में सर्वप्रथम उपभोग वक्र को बनाया जाता है उपभोग वक्र C = a + b Y_d में a स्वायत उपभोग है। यह स्थिर उपभोग के उस स्तर को बताता है जो आय के शून्य स्तर पर होता है। C में I_a को जोडने पर समग्र मांग प्राप्त होती है चूंकि निवेश स्वायत है अतः यह उपभोग फलन के समानान्तर जुड़ जाता है। एक सारणी के द्वारा समग्र मांग को निम्न प्रकार से ज्ञात कर सकते हैं।

माना कि स्वायत्त उपभोग (a) = 1000

तथा स्वायत्त निवेश (Ia) = 5000

तथा उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति (MPC) = b = 0.7

तालिका 21.1

Y_d	स्वायत्त उपभोग a = 1000	b . Y_d 0.70 x Y_d	C = a+b.Y	Ia	AD = C+Ia
1000	1000	700	1700	5000	6700
2000	1000	1400	2400	5000	7400
3000	1000	2100	3100	5000	8100
4000	1000	2800	3800	5000	8800
5000	1000	3500	4500	5000	9500

समग्र पूर्ति से तात्पर्य बाजार में बिकने के लिए कुल उत्पाद के मौद्रिक मान से है।

निम्न रेखाचित्र में समग्र पूर्ति वक्र को दिखाया गया है।

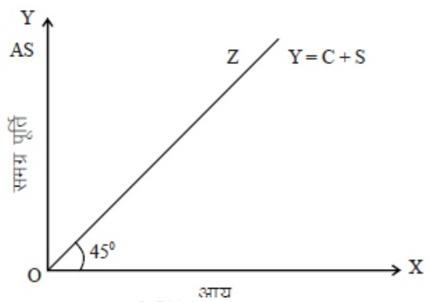

j[kkfp= 21-2

रेखाचित्र 21.2 में एक रेखा OZ ऐसी बनाई गई है जो X और Y दोनों अक्ष से 45° डिग्री का कोण बनाती है। यह समग्र पूर्ति वक्र को प्रदर्शित करती है। इसे आय रेखा के नाम से भी जाना जाता है। यह 45° डिग्री की सरल रेखा दो बातें बतलाती है–

1. समग्र उत्पाद

2. राष्ट्रीय आय को मौद्रिक रूप में

वास्तव में राष्ट्रीय उत्पाद और राष्ट्रीय आय एक ही है।

आय रेखा OZ (जो X अक्ष के साथ 45° डिग्री का कोण बनाती है) व उपभोग वक्र C के द्वारा समाज की बचत को दर्शाया गया है। जैसे जैसे आय बढ़ती है वैसे वैसे बचत भी बढ़ती जाती है।

आय के साम्य स्तर का निर्धारण

आय के साम्य स्तर, आय या उत्पाद का वह स्तर है जहां पर समग्र मांग = समग्र पूर्ति

AD = AS

समग्र मांग व समग्र पूर्ति वक्र को एक साथ बनाने पर निम्नानुसार आय के साम्य स्तर का निर्धारण होता है।

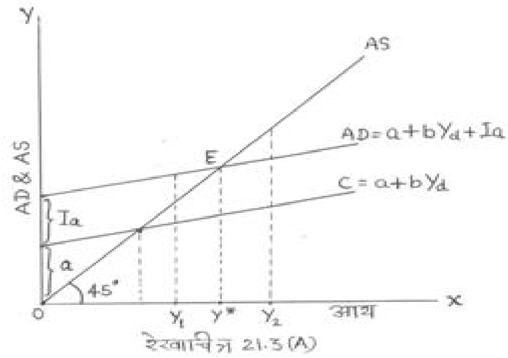

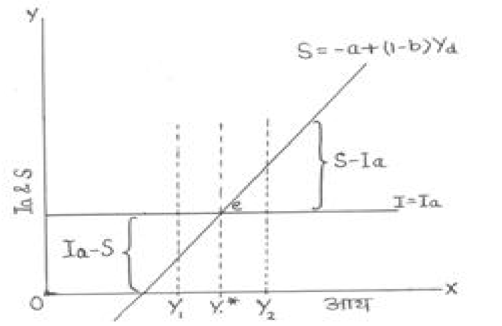

j[kkfp= 21-3 B

चित्र में पेनल (A) में E बिन्दु आय के साम्य स्तर को बताता है। यहां पर AD = AS

C + Ia = C + S

Ia = S

पैनल (B) में बचत फलन S = -a + (1-b) Y को चित्रित किया गया है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निवेश स्वायत है और स्थिर है। अतः इसे X अक्ष के समानान्तर बनाया गया है।

निवेश और बचत फलन एक दूसरे को e बिन्दु पर काटते हैं और यह उपर पैनल के संतुलन बिन्दु E के एकदम नीचे है। अतः समग्र मांग व समग्र पूर्ति जिस बिन्दु पर बराबर होते है वह साम्य बिन्दु होता है। इसी बिन्दु पर Ia व S दोनों बराबर होते है जोकि आय के साम्य स्तर को बताता है।

अगर उत्पत्ति आय के Y_1 स्तर पर पूर्ण, रोजगार की स्थिति आती है ऐसी स्थिति में $Y_1 < Y^*$ अतः AD > AS और यह अन्तराल Ia - S के बराबर है। यह मुद्रा स्फीति कारक अन्तराल (Inflationary gap) कहलाता है।

आय के Y_2 स्तर पर $Y_2 > Y^*$ यहां पर AD<AS और यह अन्तराल S - Ia के बराबर है। यह अपस्फीतिकारक अंतराल (Deflationary gap) कहलाता है।

यदि मुद्रास्फीतिकरक अंतराल (Inflationary gap) की स्थिति है तो समग्र मांग को कम करके इसे ठीक किया जा सकता है।

यदि अपस्फीतिकारक अंतराल (Deflationary gap) की स्थिति है तो समग्र मांग को बढ़ाकर अर्थव्यवस्था को पुनः साम्य स्तर पर लाया जा सकता है।

गणितीय तरीके से आय के साम्य को निम्न प्रकार से समझा सकते हैं।

$AS = Y$

तथा $AD = C + Ia$

साम्य आय के स्तर के लिए

$AS = AD$

$Y = C + Ia$

चूंकि $C = a + bY$

$Y = a + bY + Ia$

$Y - bY = a + Ia$

$Y(1-b) = a + Ia$

$$Y = \frac{1}{(1-b)}(a + Ia)$$

यह साम्य आय का स्तर है

यहां पर b - सीमान्त उपभोग की प्रवृति

1 - b = 1 - MPC = MPS (बचत की सीमान्त प्रवृति)

अतः साम्य आय

$$Y = \frac{1}{1-MPC}(a + Ia)$$

$$\text{or } Y = \frac{1}{MPS}(a + Ia)$$

उदाहरण 'अर्थव्यवस्था में यदि स्वायत्त निवेश 200 रु. है और दिया हुआ उपभोग फलन C= 80 + 0.75 Y है तो –

1. तो आय का साम्य स्तर क्या होगा ?
2. राष्ट्रीय आय में कितनी वृद्धि होगी यदि विनियोग 25 करोड़ से बढ़ता है?

हल : दिया है $Ia = 200$

$\Delta I = 25$

$C = 80 + 0.75Y$

$AS = Y, \; AD = C + Ia$

$AS = AD$

$Y = C + Ia$

$Y = 80 + .75Y + 200$

$(Y - .75Y) = 80 + 200$

$Y(1 - .75) = 280$

$.25Y = 280$

$$Y = 280 \times \frac{100}{25} = 1120$$

साम्य आय का स्तर 1120 करोड़ के बराबर होगा।

गुणक का मान $K = \frac{1}{1-MPC} = \frac{1}{1-.75} = 4$

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

$$\Delta Y = K.\Delta I$$

$= 4 \times 25$ करोड़

$= 100$ करोड

निवेश गुणक की अवधारणा

सबसे पहले 1931 के दशक में आर. एफ. काहन ने रोजगार गुणक को प्रतिपादित किया।

1930 के दशक में जब अमेरिका और यूरोप में आर्थिक मंदी छाई हुई थी तब जे. एम. कीन्स ने इस समस्या से निजात पाने के लिए समग्र मांग को बढ़ाने का समर्थन किया और इसके साथ ही कीन्स ने निवेश गुणक का विचार प्रस्तुत किया। कीन्स के गुणक को निवेश गुणक या आय गुणक भी कहते हैं। गुणक की अवधारणा, आय, उत्पादन व रोजगार के सिद्धान्त के लिए महत्वपूर्ण घटक है।

यह प्रारम्भिक निवेश और इसके परिणामस्वरुप आय में होने वाली वृद्धि के बीच सम्बन्ध बताता है। इसके अनुसार जब अर्थव्यवस्था में प्रारम्भिक निवेश किया जाता है तो आय निवेश के बराबर न होकर उससे कई गुना अधिक बढ़ती है। प्रारम्भिक निवेश के फलस्वरुप जितना गुना आय बढ़ती है वह निवेश गुणक कहलाता है। अगर अर्थव्यवस्था में 100 करोड़ रु. के निवेश के फलस्वरुप आय 500 करोड़ रू. बढ़ती है तो

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निवेश गुणक $= \frac{500 \text{ करोड़ रु.}}{100 \text{ करोड़ रु.}} = 5$

अतः निवेश गुणक का मूल्य आय में परिवर्तन तथा निवेश में परिवर्तन के अनुपात के बराबर होता है। गणितीय सूत्र में

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

यहां K = निवेश गुणक का सूचक है।

ΔY = आय में परिवर्तन का सूचक है।

ΔI = निवेश में परिवर्तन का सूचक है।

गुणक की अवधारणा इस तथ्य पर आधारित है कि एक व्यक्ति का व्यय दूसरे व्यक्ति की आय के बराबर होता है। आय का कितना हिस्सा उपभोग के लिए बढ़ाया जाता है यह इस बात पर निर्भर करता है कि व्यक्ति की सीमान्त उपभोग की प्रवृत्ति (MPC) कितनी है। यदि MPC (उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति) अधिक है तो लोग आय का बड़ा हिस्सा उपभोग पर खर्च करेंगे जिससे निवेश की तुलना में आय में कई गुना वृद्धि होती है अतः K (निवेश गुणक) व उपभोग की सीमान्त प्रवृति के बीच सीधा सम्बन्ध है।

जबकि बचत की सीमान्त प्रवृति MPC जितनी ज्यादा होगी उतना ही निवेश गुणक का मान कम होगा। अतः निवेश गुणक व बचत की सीमान्त प्रवृति के बीच प्रतिलोम सम्बन्ध है।

K, MPC व MPS के बीच सम्बन्ध को निम्न प्रकार से लिखते हैं।

यदि MPC= .75 है

तब $K = \frac{1}{1 - MPC}$

$$= \frac{1}{1 - .75}$$

$$= \frac{1}{.25} = 4$$

हम जानते हैं कि MPC + MPS = 1

या MPS = 1 - MPC

अतः MPS = 1 - .75

= .25

या $K = \frac{1}{MPS} = \frac{1}{.25} = 4$

यदि MPC, शून्य के बराबर है जो कि एक दुर्लभ स्थिति है तो उस स्थिति में

$$K = \frac{1}{1 - 0} = 1$$

तब गुणक का मान 1 होगा

यदि MPC, एक के बराबर है तो गुणक

$$K = \frac{1}{1 - 0} = \frac{1}{0} = \infty$$

उपरोक्त दोनों गुणक की न्यून तथा उच्चतम सीमा है।

वास्तव में MPC का मान 0 से 1 के बीच होता है

$$0 < MPC < 1$$

इसलिए हमेशा गुणक का मूल्य एक और शून्य के बीच रहता है।

गुणक प्रक्रिया का चित्र द्वारा निरूपण

Diagramatic presentation of the multiplier process

हम जानते हैं कि अर्थव्यवस्था में साम्य उस बिन्दु पर होता है, जहां पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर होता है या जहाँ पर बचत, निवेश के बराबर होता है।

1. समग्र मांग – समग्र पूर्ति वक्र विधि

समग्र मांग उपभोग खर्च व निवेश खर्च के बराबर होती है। जब निवेश खर्च बढ़ता है तब समग्र मांग वक्र ऊपर की ओर विवर्तित हो जाता है तथा साम्य परिवर्तित होकर ऊँची आय पर संतुलन में आता है।

गुणक प्रक्रिया में निवेश के बढ़ने पर आय में कई गुणा वृद्धि होती है जिसे चित्र में दिखाया गया है।

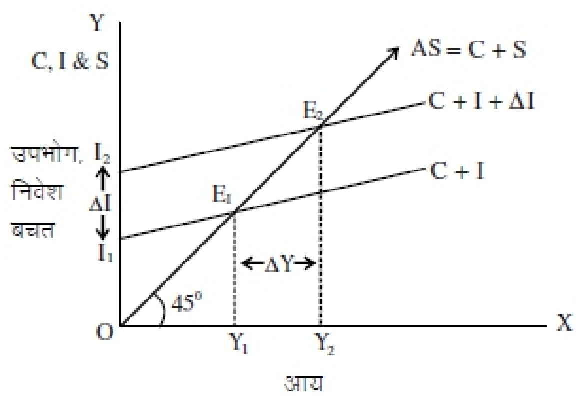

j[kkfp= 21-4

रेखाचित्रानुसार जब $I_1 I_2 = \Delta I$ निवेश बढ़ाया जाता है तो आय बढ़कर $Y_1 Y_2 = \Delta Y$ हो जाती है।

अतः निवेश गुणक $= \frac{Y_1 Y_2}{I_1 I_2} = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$

यह गुणक की अग्रिम प्रक्रिया (forward working of the multiplier) नाम से जानी जाती है। यदि निवेश में कमी होती है

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

तो आय में कई गुणा कमी आती है जिसे गुणक की पश्चगामी प्रक्रिया (Backward working of the multiplier) कहते हैं।

(2) बचत व निवेश विधि

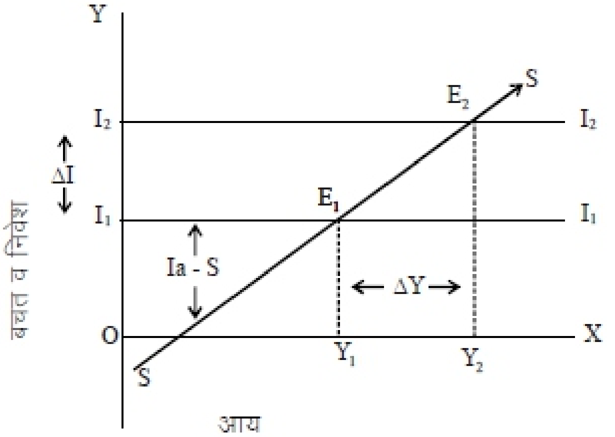

j[kkfp= 21-5

रेखाचित्र 21.5 में बचत व निवेश वक्र प्रारम्भ में E_1 बिन्दु पर संतुलन में होते है। प्रारम्भिक निवेश I_1 से दर्शाया गया है। जब निवेश बढ़ता है तो निवेश वक्र ऊपर की ओर खिसक जाता है। यह: I_2 से प्रदर्शित किया गया है अतः नया संतुलन बिन्दु E_2 पर है। जहां $S=I_2$ होता है। अतः I_1I_2 निवेश के बढ़ने के फलस्वरुप आय में Y_1Y_2 की वृद्धि होती है।

$$\text{अतः निवेश गुणक} = \frac{Y_1Y_2}{I_1\,I_2} = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

कीन्स के आय और रोजगार के सिद्धांत में गुणक की अवधारणाा का महत्वपूर्ण स्थान है। गुणक आय और रोजगार सिद्धांत में निवेश के महत्व को स्पष्ट करता है। निवेश में वृद्धि होने से राष्ट्रीय आय में कई गुना वृद्धि होती है। इसी प्रकार आय के किसी स्तर पर सम्रग मांग सम्रग पूर्ति से अधिक होती है तो मुद्रा स्फीति की दशा उत्पन्न होती है इसके विपरित यदि समग्र मांग सम्रग पूर्ति से कम होने पर अपस्फीति दशा प्रकट होती है। इस प्रकार गुणक व्यापार चक्रों को समझाने में भी सहायता प्रदान करता है। इसी के आधार पर नीति निर्माण में भी सहायता मिलती है। गुणक की सहायता से बचत व निवेश में समानता स्थापित की जा सकती है। पूर्ण रोजगार लक्ष्य की प्राप्ति हेतु निवेश में कितनी वृद्धि होनी चाहिए, यह गुणक के मूल्य द्वारा निर्धारित होता है। विकास में सार्वजनिक निवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार गुणक की अवधारणा द्वारा अधिक स्पष्ट होती है। सरकार सार्वजनिक व्यय की मात्रा निर्धारित करती है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- आय एवं रोजगार का साम्य स्तर :– जहां पर समग्र मांग, समग्र पूर्ति के बराबर होती है वह आय व रोजगार का साम्य स्तर कहलाता है।

$$AD = AS$$
$$C + I = C + S$$
$$I = S$$

- आय व रोजगार का साम्य स्तर वह भी है जहां पर कुल बचत, कुल निवेश के बराबर होती है।
- एक खुली अर्थव्यवस्था में समग्र मांग के चार घटक होते है
  (i) उपभोग खर्च (C) (ii) विनियोग खर्च (I)
  (iii) सरकारी खर्च (G) (iv) शुद्ध निर्यात (X-M)
- साम्य आय

$$Y = \frac{1}{1 - MPC}(a + Ia)$$

जहां पर $C = a + bY$ में

a – स्वायत्त उपभोग है।

तथा Ia - निवेश है।

- निवेश गुणक की अवधारणा :–
  आय में परिवर्तन का निवेश मे परिवर्तन से अनुपात निवेश गुणक कहलाता है।

$$K = \frac{\Delta Y}{\Delta I}$$

K – गुणक

ΔY – आय में परिवर्तन

ΔI – निवेश में परिवर्तन

- गुणक का मान एक अर्थव्यवस्था में उपभोग की सीमान्त प्रवृति के स्तर पर निर्भर करता है। जितना अधिक MPC का मूल्य होगा उतना अधिक गुणक का मूल्य होगा।
- गुणक को MPS के रुप में निम्न प्रकार से लिखते है–

$$K = \frac{1}{1 - MPC} = \frac{1}{MPS}$$

जितना कम MPS का मूल्य होगा उतना ही गुणक का मूल्य कम होगा।

- यदि निवेश बढ़ता है तो आय के स्तर को बढ़ाएगा यह विधि गुणक की अग्रिम प्रक्रिया (forward working of Multiplier) कहलाती है।
- यदि निवेश घटता है तो वह आय के स्तर को भी घटाता है यह गुणक की पश्चगामी प्रक्रिया (Process Backword working of multiplier) कहलाता है।
- एक अर्थव्यवस्था में मांगी जाने वाली कुल वस्तुओं व सेवाओं की जोड़ को समग्र मांग कहते हैं। यह एक साल में लोगों द्वारा वस्तुओं और सेवाओं पर किये गये कुल खर्चे (Expenditure) के रूप में व्यक्त की जाती है।
- एक दिये हुये समय में अर्थव्यवस्था में जो कुल

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उत्पाद उपलब्ध है उसे समग्र पूर्ति कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. समग्र मांग किसके बराबर होती है।
   (अ) I+S (ब) C+I
   (स) शून्य (द) अनन्त
2. जब उपभोग की सीमान्त प्रवृति (MPC) शून्य के बराबर होती है तो गुणक का मूल्य होता है –
   (अ) 100 (ब) 1
   (स) शून्य (द) अनन्त
3. जब बचत की सीमान्त प्रवृति 0.5 के बराबर है तो गुणक का मूल्य होता है –
   (अ) 1 (ब) 2
   (स) शून्य (द) अनन्त
4. गुणक का सूत्र निम्न में से कौन सा है?
   (अ) $\frac{1}{1-MPC}$ (ब) $\frac{MPC}{MPS}$
   (स) $\frac{1}{MPC+MPS}$ (द) $\frac{1}{MPC}$
5. रोजगार गुणक की अवधारणा किसके द्वारा प्रतिपादित की गई?
   (अ) रिचर्ड गुडविन (ब) जे.एम. कीन्स
   (स) जे.एस. डयूसनबरी (द) आर.एफ. काहन

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. गुणक से आप क्या समझते हैं?
2. यदि MPC = 0.9 है तो गुणक का क्या मूल्य होगा?
3. आय व रोजगार के साम्य स्तर से आप क्या समझते हैं?
4. सम्रग मांग के महत्वपूर्ण घटक कौन कौन से है?
5. सम्रग पूर्ति के घटक कौन कौन से है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. गुणक की कार्यप्रणाली को चित्र द्वारा समझाइये।
2. गुणक का मूल्य सीमान्त उपभोग प्रवृत्ति द्वारा कैसे निर्धारित होता है?
3. यदि MPS = 0.25 तो गुणक का मान ज्ञात कीजिए।
4. गुणक के मूल्य की न्यूनतम व उच्चतम सीमा क्या होती है?
5. गुणक का व्यावहारिक महत्व क्या है?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1. आय के साम्य स्तर को चित्र व सूत्रों की सहायता से समझाइये।
2. बचत व विनियोग की सहायता से आय के साम्य स्तर को चित्र द्वारा समझाइये।
3. निवेश गुणक से आप क्या समझते है उपभोग की सीमान्त प्रवृत्ति व निवेश गुणक में क्या सम्बन्ध है?

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	ब	ब	अ	द

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 22

अधिमांग एवं न्यून मांग अवधारणा
(Concept of Excess Demand and deficient Demand)

पिछले अध्याय में हम कीन्स द्वारा प्रतिपादित आय निर्धारण के सिद्धान्त का अध्ययन कर चुके हैं। कीन्स ने प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के विचारों की कटु आलोचना की है।

इस पाठ के अध्ययन करने से पूर्व हमें प्रतिष्ठित और केन्जीय विचारधारा की प्रमुख विचारों से परिचित होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के अनुसार आय का उत्पादन निर्धारण वास्तविक घटकों जैसे पूँजी स्टॉक, श्रम की पूर्ति द्वारा प्रभावित होता था। सामान्य कीमत स्तर का उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उनके अनुसार सामान्य कीमत मुद्रा की पूर्ति द्वारा निर्धारित होती थी।

कीन्स के विचारों का प्रार्दुभाव सन् 1930 की व्यापक आर्थिक मन्दी के समय हुआ। कीन्स के अनुसार आय और उत्पादन के निर्धारण का सिद्धान्त कीमत स्तर को स्थिर मानकर चलता है। इनके अनुसार आय का निर्धारण उस बिन्दु पर होता है जहाँ समग्र मांग समग्र पूर्ति के बराबर होती है। कीन्स ने मन्दी में फैली व्यापक बेरोजगारी और अतिरिक्त उत्पादन क्षमता का प्रमुख कारण प्रभावपूर्ण मांग की कमी को बताया था।

समग्र मांग (AD) समग्र पूर्ति (AS) मॉडल द्वारा सामान्य कीमत स्तर का निर्धारण तथा उत्पादन में होने वाले उतार चढ़ाव का पता चलता है। उसके आधार पर मौद्रिक एवं राजकोषीय उपायों को सरकार द्वारा अपनाया जाता है। सबसे पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि समग्र मांग और समग्र पूर्ति क्या है। इसलिए पहले इन दोनों अवधारणाओं को समझना आवश्यक है। आइये इन अवधारणाओं को हम निम्न प्रकार से समझ सकते हैं।

समग्र मांग (AD) –

समग्र मांग में उपभोग व्यय, निजी विनियोग व्यय, सरकार द्वारा वस्तु और सेवाओं का क्रय और शुद्ध निर्यात शामिल होते हैं। ($Y=C+I+G+Xn$) अन्य बातों के समान रहने पर विभिन्न कीमत स्तर पर जो उपभोक्ताओं, विनियोगकर्त्ताओं सरकार और विदेशियों द्वारा वस्तु और सेवाएँ खरीदी जाती हैं उसे समग्र मांग कहते हैं।

समग्र मांग के अवयव समीकरण के रूप में इस प्रकार व्यक्त किए जा सकते हैं–

$Y=C+I+G+Xn$

जहाँ

C = उपभोग व्यय

I = विनियोग व्यय

G = सरकारी व्यय

$Xn = X-M$ जहाँ X = कुल निर्यात, M = कुल आयात

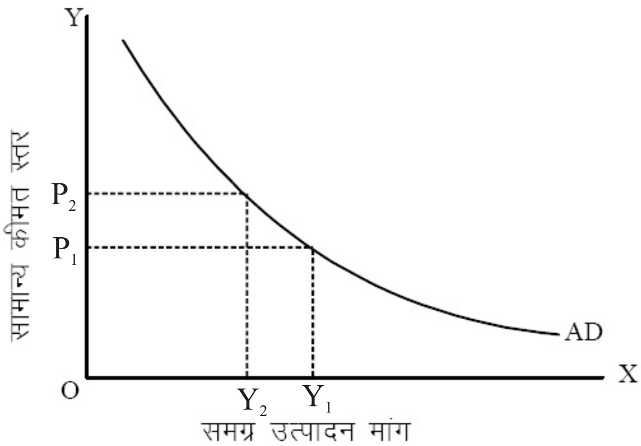

रेखाचित्र 22.1

चित्र द्वारा समग्र मांग वक्र को दर्शाया गया है। x अक्ष पर समग्र उत्पादन मांग और Y अक्ष पर सामान्य कीमत स्तर है। यह वक्र समग्र वस्तु और सेवाओं की मांग और सामान्य कीमत स्तर में सम्बन्ध को बताता है। प्रारम्भिक कीमत OP_1 और उत्पादन OY_1 हैं। यदि कीमतें बढ़कर OP_1 से OP_2 होती है, तो इसके तीन प्रभाव पड़ते हैं :–

1- कीमत बढ़ने पर उपभोग व्यय घट जाता है।

2- कीमत बढ़ने पर लोगों को लेन–देन उद्देश्य से अधिक मुद्रा की आवश्यकता होती है, जिससे ब्याज दर बढ़ती है, परिणामस्वरुप विनियोग की मांग घट जाती है।

3- कीमत बढ़ने पर आयात अधिक व निर्यात कम होते हैं,

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जिससे शुद्ध निर्यात (X-M) की मात्रा कम हो जाती है, इस प्रकार कीमत में वृद्धि होने पर समग्र मांग कम हो जाती है। चित्र 22.1 के अनुसार समग्र उत्पादन मांग OY_1 से घटकर OY_2 हो जाती है। इसके विपरीत कीमत घटने पर समग्र उत्पादन की मांग बढ़ जाती है।

समग्र मांग वक्र की व्युत्पत्ति –

समग्र मांग को कीन्स के आय निर्धारण चित्र A के द्वारा व्युत्पत्ति कर सकते हैं।

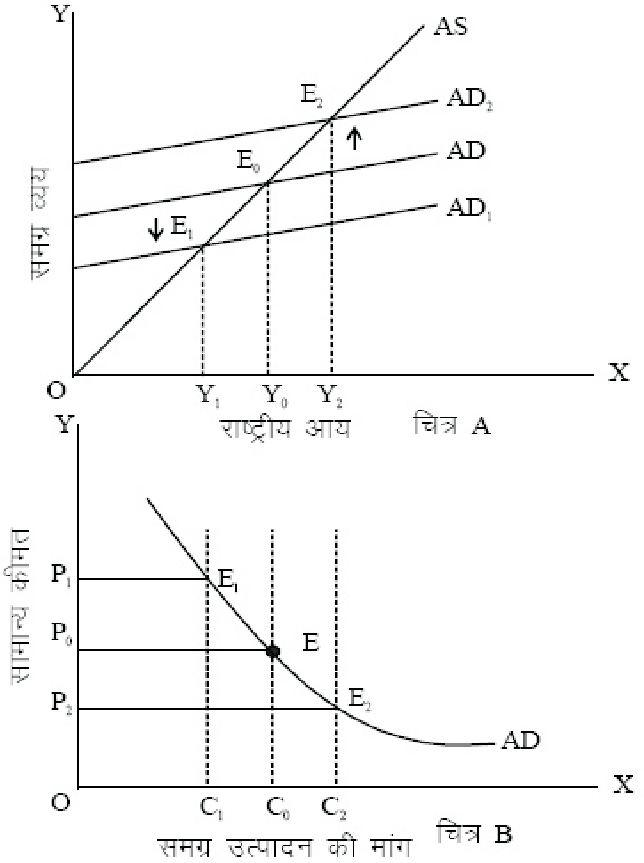

रेखाचित्र 22.2

चित्र A में कीन्स द्वारा समग्र व्यय (नियोजित व्यय) को विभिन्न राष्ट्रीय आय स्तर पर बताया गया है, जबकि चित्र B में व्युत्पन्न समग्र मांग विभिन्न कीमत स्तरों पर दर्शाई गई है।

प्रारम्भिक साम्य में समग्र मांग, समग्र पूर्ति (45° रेखा) को E_0 पर काटती है। जहाँ आय Y_0 निर्धारित होती है। खण्ड B में Y_0 आय के स्तर पर समग्र मांग C_0 और सामान्य कीमत स्तर P_0 है। इसी प्रकार यदि सामान्य कीमत स्तर पर P_2 हो जाती है तो लोगों की क्रय शक्ति बढ़ने पर उपभोग व्यय AD से AD_2 ऊपर की ओर खिसक जाता है। साम्य AD_2=AS (45° रेखा) E_2 पर आय Y_2 होती है। समग्र मांग OC_2 होता है। इस प्रकार कम कीमत पर समग्र उत्पादन मांग अधिक होती है इसके विपरीत बढ़ी हुई कीमत पर साम्य E_1 बिंदु पर प्राप्त होगा जहाँ AS=AD_1 आय Y_1 होती है और समग्र मांग OC_1 घट जाती है। इस प्रकार सामान्य कीमत स्तर और समग्र उत्पादन की मांग में विपरीत सम्बन्ध पाया जाता है, जो चित्र B में AD वक्र से स्पष्ट होता है।

समग्र पूर्ति (AS) –

अन्य बातें समान रहने पर विभिन्न सम्भव कीमतों पर फर्में एक अर्थव्यवस्था में जो वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन करना चाहती है, समग्र पूर्ति कहलाती है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों के सिद्धान्त पूर्ण रोजगार की मान्यता पर आधारित है। अतः पूर्ण रोजगार की स्थिति में समग्र पूर्ति वक्र एक लम्बवत रेखा होती है, जो निम्न चित्र 22.3 द्वारा दर्शायी जाती है। यहाँ AS पूर्णतया बेलोचदार है।

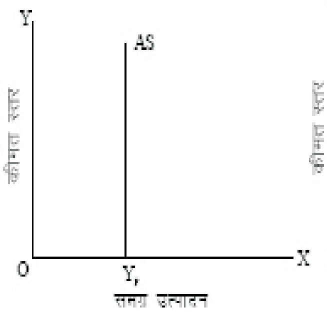

रेखाचित्र 22.3

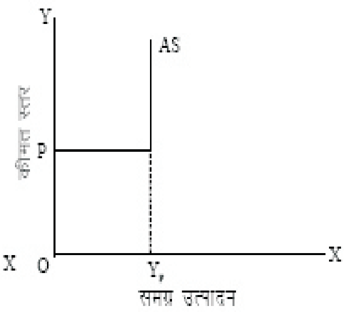

रेखाचित्र 22.4

इसके विपरीत कीन्स के अनुसार समग्र पूर्ति वक्र मन्दी के समय प्रारम्भ में क्षैतिज होता है फिर पूर्ण रोजगार बिन्दु पर लम्बवत् होता है। चित्र 22.4 में OY_0 से दर्शाया गया है। क्षैतिज क्षेत्र में समग्र मांग में वृद्धि होने पर उत्पादन में वृद्धि होती है एवं कीमतें अपरिवर्तित रहती हैं, जबकि लम्बवत् समग्र पूर्ति वक्र अर्थात् पूर्ण रोजगार पर समग्र मांग में वृद्धि होने पर उत्पादन में वृद्धि नहीं होती अपितु कीमतों में वृद्धि होती है।

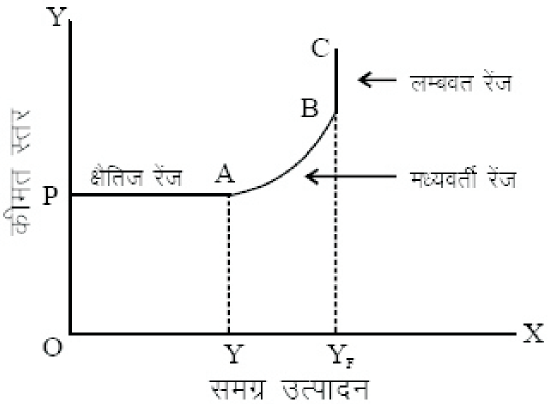

रेखाचित्र 22.5

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चित्र 22.5 में क्षैतिज रेंज (PA) केन्जीयन रेंज कहलाती है, अप्रयुक्त साधनों के उपयोग से प्रति इकाई उत्पादन लागत में वृद्धि नहीं होने पर कीमतों में भी वृद्धि नहीं होती है। यदि इस रेंज में केवल उत्पादन में वृद्धि होती है। अर्थव्यवस्था में मंदी की स्थिति को वक्र के PA भाग में व्यक्त किया गया है।

मध्यवर्ती रेंज में (Y और Y_F मध्य) समग्र मांग में वृद्धि कीमतों में भी वृद्धि करती है। पूर्ण रोजगार पूर्व उत्पादन बढ़ाने पर प्रति इकाई लागत भी बढ़ती है जिससे कीमतों में भी वृद्धि होती है।

लम्बवत् रेंज (BC) पूर्ति वक्र पूर्णतया बेलोचदार होता है, जो कि उत्पादन को पूर्ण रोजगार स्तर को दर्शाता है। इसे प्रतिष्ठित रेंज भी कहते हैं। यहाँ कीमतों में परिवर्तन होता है एवं उत्पादन मात्रा अपरिवर्तित रहती है क्योंकि साधनों का पूर्ण क्षमता तक उपयोग हो चुका होता है।

समष्टि आर्थिक साम्य –

समग्र मांग व पूर्ति की आवश्यक जानकारी प्राप्त करने के पश्चात् हम समष्टि आर्थिक साम्य को AD-AS मॉडल द्वारा समझने का प्रयास करते हैं।

अल्पकालीन संतुलन अर्थव्यवस्था की वास्तविक स्थिति को बताता है। वास्तविक GDP, सामर्थ्य (Potential GDP) के इर्द–गिर्द रहती है। मौद्रिक एवं राजकोषीय नीति किस प्रकार कारगर सिद्ध होती है, यह AD-AS मॉडल द्वारा बताया गया है।

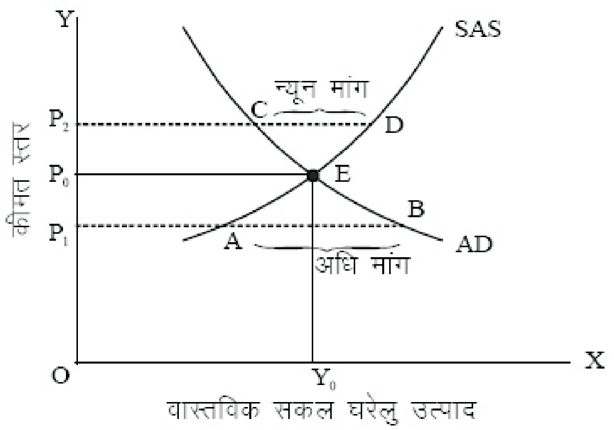

रेखाचित्र 22.6

समग्र मांग (AD) अल्पकालीन पूर्ति वक्र (SAS) के बराबर होने पर साम्य E पर होता है। जहाँ आय OY_0 और कीमत स्तर P_0 निर्धारित होता है। यदि कीमत P_2 होती है तो समग्र पूर्ति, समग्र मांग से अपेक्षाकृत अधिक होती है (CD) जिसे न्यून मांग कहते हैं। ऐसी स्थिति में उत्पादक उत्पादन में कमी करता है। मांग कम होने पर वह उत्पादित माल को बेच नहीं पाता है, अतः उसके पास तैयार माल स्टॉक के रुप में जमा होता जाता है। कीमत क्रमशः कम होने लगती है और पुनः P_0 साम्य कीमत को प्राप्त करती है।

इसके विपरीत यदि कीमतें OP_1 होती है तो समग्र मांग, समग्र पूर्ति की अपेक्षाकृत अधिक होती है, (AB) जिसे आधिक्य मांग कहा जाता है। अधिक मांग उत्पादक को अधिक उत्पादन के लिए प्रेरित करती है। उत्पादक द्वारा उत्पादन साधनों की मांग बढ़ने पर साधन लागत में वृद्धि होती है। अन्ततः वस्तुओं की कीमत बढ़ने लगती है और पुनः साम्य P_0 कीमतों पर स्थापित होता है।

अल्पकाल में मौद्रिक मजदूरी दर स्थिर होती है। वास्तविक GDP पर साम्य सामर्थ्य GDP से कम या अधिक हो सकता है।

दीर्घकाल में साम्य तब होता है, जब समग्र मांग, दीर्घकालीन समग्र पूर्ति वक्र के बराबर होता है। दीर्घकालीन पूर्ति वक्र GDP लम्बवत होने पर सामर्थ्य GDP के बराबर होता है। दीर्घकाल में वास्तविक GDP, सामर्थ्य GDP के बराबर होती है।

मन्दी–

जब आर्थिक क्रियाएँ जैसे वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन, रोजगार, आय, मांग तथा कीमतों में पर्याप्त कमी होती है।

समृद्धि–

कीमतों में स्फीतिकारी वृद्धि होती है। उत्पादन, रोजगार और आय ऊँचे स्तर पर होते हैं। वस्तु और सेवाओं की मांग अधिक होती है।

मौद्रिक और राजकोषीय नीति –

ऊपर किये गये विवेचन से स्पष्ट होता है कि मन्दी में न्यून मांग की समस्या उत्पन्न हो जाती है अर्थात् समग्र मांग समग्र पूर्ति से कम होती है। ऐसी परिस्थिति में सरकार उचित राजकोषीय नीति अपनाती है। सरकार सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करके मांग में वृद्धि के प्रयास करती है। सार्वजनिक व्यय जैसे सड़क बनवाना, बाँध निर्माण, स्कूलों व अस्पतालों जैसे भवनों का निर्माण आदि जिससे रोजगार, आय और मांग का सृजन होता है। इसी के साथ करों में कमी लोगों के व्यय योग्य आय में वृद्धि करती है। यह प्रयास तभी कारगर होता है जब सरकार करों में कोई वृद्धि नहीं करती है। इसी तरह मौद्रिक नीति में मुद्रा की पूर्ति में वृद्धि की जाती है जिसके परिणामस्वरुप ब्याज की दर में कमी होती है। निजी विनियोग में वृद्धि होती है। जिसमें समग्र मांग में वृद्धि होती है। इस उद्देश्य हेतु बैंक दर में कमी, खुले बाजार में केन्द्रीय बैंकों द्वारा प्रतिभूतियों का क्रय, तरल नकद कोषानुपातों में

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

कमी की जाती है। निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि न्यून मांग में सरकार विस्तारक (Expansionary) मौद्रिक और राजकोषीय नीति अपनाती है। मन्दी में दोनों नीतियों की तुलना करने पर राजकोषीय नीति अधिक सफल होती है। न्यून मांग (मन्दी) के समय व्यवसायियों के पास पहले ही बहुत स्टॉक इक्ट्ठा होता है जिसे वह बेच नहीं पाते। इसलिए ब्याज दर कम होने पर भी विनियोग हेतु प्रेरित नहीं होते। उपभोक्ता वर्ग भी बेरोजगारी और निम्न आय के कारण टिकाऊ वस्तु हेतु ऋण नहीं लेना चाहते हैं। इसलिए मौद्रिक नीति अधिक सफल नहीं होती है।

राजकोषीय नीति –

इस नीति द्वारा सरकार द्वारा कर और व्यय में परिवर्तन द्वारा पूर्ण रोजगार और कीमत स्तर में स्थिरता लाने का प्रयास किया जाता है।

मौद्रिक नीति –

केन्द्रीय बैंक द्वारा मुद्रा की पूर्ति को नियंत्रित करने और आर्थिक नीति के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अपनाई जाती है।

इसके विपरीत मांग आधिक्य में मुद्रा स्फीति के समय सरकार द्वारा संकुचित मौद्रिक और राजकोषीय नीति अपनाई जानी चाहिए। राजकोषीय नीति के तहत् सरकार को करों में वृद्धि, अनावश्यक व्यय में कटौती करके समग्र मांग में कमी की जानी चाहिए। करो की दरों में बहुत अधिक वृद्धि नहीं होनी चाहिए अन्यथा निवेश और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। सरकार द्वारा अनिवार्य बचत स्कीम भी चलायी जा सकती है। सरकार को अतिरेक बजट बनाने का प्रयास करना चाहिए एवं सार्वजनिक ऋणों के पुनः भुगतान को रोक देना चाहिए। इसी परिप्रेक्ष्य में कठोर मौद्रिक नीति अपनाई जानी चाहिए। आधिक्य मांग के कारण कीमतों में वृद्धि को रोकने हेतु केन्द्रीय बैंक, बैंक–दर में वृद्धि, खुले बाजार में प्रतिभूतियों का विक्रय और रिजर्व अनुपात में वृद्धि करता है। साथ ही चयनात्मक साख नियंत्रण जैसे साख सीमा आवश्यकता को बढ़ाता है। साथ ही उपभोक्ता साख को भी नियंत्रित करता है। इन सभी उपायों के अतिरिक्त करेन्सी का विमुद्रीकरण भी किया जा सकता है। इस प्रकार न्यून और आधिक्य मांग की स्थिति में राजकोषीय नीति और मौद्रिक नीति के उचित उपायों के सामंजस्य से उभरा जा सकता है।

विमुद्रीकरण –

जब देश की सरकार पुरानी मुद्रा को कानूनी तौर पर बंद कर देती है। 8 नवम्बर 2016 को हाल ही में सरकार द्वारा 500 और 1000 के नोटों को उसी रात 12 बजे से बंद किए जाने की घोषणा की है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

1- समग्र मांग में उपभोग व्यय, विनियोग व्यय, सरकारी व्यय और शुद्ध निर्यात शामिल है– $AD=C+I+G+X_n$

2- समग्र मांग विभिन्न कीमत स्तर पर कुल वस्तु और सेवाओं की मांगी गई मात्रा को व्यक्त करता है।

3- समग्र मांग और सामान्य कीमत स्तर में विपरीत सम्बन्ध होता है।

4- समग्र पूर्ति प्रत्येक सम्भावित कीमत पर फर्मों के कुल वस्तु और सेवाओं के उत्पादन को दर्शाता है।

5- जहाँ समग्र मांग समग्र पूर्ति के बराबर होती है वहाँ कीमत स्तर और समग्र उत्पादन का निर्धारण होता है।

6- न्यून मांग से अर्थ है जब समग्र मांग, समग्र पूर्ति से कम होती है।

7- आधिक्य मांग का अर्थ जब समग्र पूर्ति, समग्र मांग से कम होती है अथवा समग्र मांग की मात्रा समग्र पूर्ति से अधिक होती है।

8- न्यून मांग मन्दी की स्थिति बताती है।

9- आधिक्य मांग मुद्रा स्फीति की स्थिति बताती है।

10- मन्दी में विस्तारक मौद्रिक और राजकोषीय नीति कारगर होती है।

11- मांग आधिक्य (मुद्रा स्फीति) में संकुचित मौद्रिक और राजकोषीय नीति अपनाने पर समग्र मांग में कमी होती है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1- न्यून मांग होती है जब –

(अ) AD<AS (ब) AD>AS

(स) AD=AS (द) AD#AS

2- समग्र मांग होती है –

(अ) उपभोग और विनियोग व्यय

(ब) सरकारी व्यय

(स) शुद्ध निर्यात

(द) उपरोक्त सभी

3- मन्दी में राजकोषीय नीति के तहत् उपाय है –

(अ) करों में वृद्धि

(ब) सार्वजनिक व्यय में वृद्धि

(स) सार्वजनिक व्यय में कमी

(द) कीमतों में वृद्धि

4- मुद्रा स्फीति को रोकने हेतु मौद्रिक नीति के तहत उठाया जाने वाला कदम है –

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(अ) बैंक दर में वृद्धि
(ब) करों में कमी
(स) सार्वजनिक व्यय में वृद्धि
(द) बैंक दरों में कमी

5- चित्र में समग्र पूर्ति वक्र किसके अनुसार होता है –

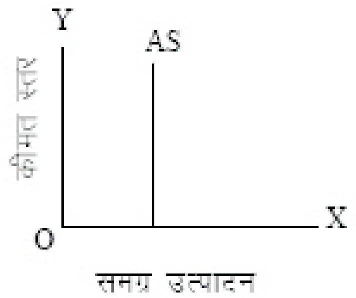

(अ) केन्जीय (ब) प्रतिष्ठित
(स) मौद्रिकवाद (द) रेटेक्स

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1- समग्र मांग का अर्थ बताइये।

2- समग्र मांग के चार अवयव लिखिए।

3- समग्र पूर्ति का अर्थ बताइये।

4- समष्टि आर्थिक साम्य का क्या अर्थ है?

5- मन्दी का अर्थ बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1- न्यून मांग को समझाइये।

2- आधिक्य मांग से क्या तात्पर्य है?

3- मौद्रिक नीति से क्या अभिप्राय है?

4- राजकोषीय नीति के क्या उपकरण है?

5- मुद्रा स्फीति में मौद्रिक नीति के क्या उपाय अपनाये जाते है?

निबन्धात्मक प्रश्न–

1- AD और AS मॉडल की विस्तार से व्याख्या कीजिए।

2- प्रतिष्ठित और कीन्स के पूर्ति वक्र में चित्र की सहायता से भेद कीजिए।

3- मन्दी में राजकोषीय नीति को कैसे प्रभावी रुप से उपयोग में लिया जा सकता है?

4- मुद्रा स्फीति को रोकने के लिए सरकार द्वारा किये जा सकने वाले चार उपाय लिखिए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
अ	द	ब	अ	ब

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय – 23

सरकारी बजट एवं अर्थव्यवस्था
(Government Budget & Economy)

सरकार की वह क्रिया वित्तीय प्रशासन मानी जाती है जिसके द्वारा सार्वजनिक आय, सार्वजनिक व्यय एवं सार्वजनिक ऋण की व्यवस्था, नियन्त्रण एवं प्रबन्धन किया जाता है। वित्तीय प्रशासन में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि आय को न्याय संगत तरीके से एकत्रित किया जाये और सरकार के व्यय को मितव्ययता पूर्ण ढ़ंग से किया जाये। बजट सरकार की राजस्व नीति का व्यावहारिक रूप होता है। भारत में बजट सामान्यतया आगामी वित्तीय वर्ष हेतु आवश्यक सरकारी खर्च की सुनिश्चिता प्राप्त करने का प्रावधान है।

वित्तीय प्रशासन में बजट महत्वपूर्ण होता है इसे वित्तीय प्रशासन की धुरी कहा जा सकता है सरकार की आय, व्यय और ऋण आदि से सम्बन्धित समस्त क्रियाओं का निर्धारण बजट के माध्यम से होता है।

बजट का अर्थ एवं परिभाषा –

बजट शब्द की उत्पत्ति फ्रांसीसी शब्द Bougette से मानी जाती है। जिसका तात्पर्य '' चमड़े के थैले '' । 1733 में बजट शब्द का प्रयोग इंग्लैण्ड में 'जादू के पिटारे' के अर्थ में किया गया।

बजट सरकार की आय एवं व्यय का एक विवरण प्रपत्र है जिसमें आगामी वर्ष के लिये आय–व्यय के अनुमानित आकड़े एवं आगामी वर्ष के सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रम तथा आय–व्यय को घटाने–बढ़ाने के लिये प्रस्तावों का विवरण होता है। सामान्यतया बजट का तात्पर्य सरकार के उस विवरण पत्र से होता है जिसमें वर्ष पर्यन्त होने वाले आय–व्यय का ब्यौरा दर्शाया जाता है, व्यापक अर्थ में इसका आशय यह है कि बजट में निहित तथ्यों को उस समय तक गुप्त रखा जाता है जब तक कि उसे देश की संसद के समक्ष प्रस्तुत न कर दिया जावे। विभिन्न विद्वानों ने बजट को निम्न प्रकार से परिभाषित किया है :–

प्रो. बेस्टेबल (Prof. Bastable) के अनुसार बजट का अर्थ है ''एक दिये गये समय के लिये वित्तीय प्रबन्ध जिसके साथ विधानसभा में स्वीकृति के लिये पेश करने का सामान्य सुझाव जुड़ा हुआ है।''

फिण्डले शिराज के अनुसार ''बजट एक साथ एक रिपोर्ट, एक अनुमान तथा एक प्रस्ताव है। यह एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा वित्तीय प्रशासन की सभी विधियों को सम्बन्धित किया जाता है, उनकी तुलना की जाती है एवं समन्वय स्थापित किया जाता है।''

स्पष्ट है कि बजट के दो पक्ष होते हैं। एक ओर सरकार की प्रत्याशित आय जबकि दूसरी ओर सरकार के प्रत्याशित व्यय को व्यक्त किया जाता है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में सरकार प्रतिवर्ष बजट संसद के समक्ष प्रस्तुत करती है और संसद की स्वीकृति होने के पश्चात इसके प्रस्ताव के अनुसार ही कार्य किये जाते हैं।

बजट के उद्देश्य–

देश की अर्थव्यवस्था को दिशा प्रदान करना बजट का प्रमुख उद्देश्य होता है। देश की अर्थव्यवस्था सरकार के बजट से प्रभावित होती हैं। बजट के मुख्य उद्देश्य निम्न है–

1.– सरकारी बजट से न केवल विकास प्रभावित होता है बल्कि विकास की दिशा भी बजट से निर्धारित होती है।

2.– उत्पादन बढ़ानें मे भी बजट की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है बजट में राहत द्वारा दिये गये करारोपण सम्बन्धी रियायतों एवं शुल्क में राहत द्वारा दिये गये प्रोत्साहन उत्पादन वृद्धि में सहायक होते हैं।

3.– सामान्यतया सरकार बजट के माध्यम से नये कर लगाकर और जनता से ऋण लेकर उसकी क्रय शक्ति में कमी करते हुये कीमत स्तर को नियन्त्रित करती है।

4– देश के आर्थिक व सामाजिक विकास को गति देना एवं आय व धन का पुनर्वितरण करना।

5– देश की उत्पादन संरचना एवं उत्पादन के स्तर को दिशा देना। बजट में करारोपण सम्बन्धी रियायतें एवं प्रोत्साहन उत्पादन वृद्धि में सहायक होता है।

6– देश में प्रचलित मुद्रा स्फीति अथवा अवस्फीति का उपचार बजट प्रावधानों में परिवर्तन द्वारा किया जाता है। जिससे आर्थिक कीमत स्थिरता के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

7– कल्याणकारी राज्य की स्थापना का लक्ष्य बजट की सहायता से प्राप्त किया जा सकता है।

8– आर्थिक असमानता पर रोक, सामाजिक सुरक्षा हेतु विभिन्न योजनाओं का क्रियान्वयन, आर्थिक विकास हेतु योजनाओं का निर्माण बजट के प्रावधानों के माध्यम से ही किये जाते है।

बजट के प्रकार (स्वरूप) :–

सरकारी बजट को सरकारी आय व व्यय की प्रवृत्ति एवं सन्तुलन के आधार पर निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. राजस्व एवं पूँजीगत बजट :–

सरकारी बजट सरकार की आय व व्यय को दर्शाने वाला होता है इसे आय व व्यय की प्रवृति के आधार पर निम्न दो भागों में बाँटा जाता है –

(i) राजस्व बजट (**Revenue Budget**) :– यह बजट के प्रथम भाग में ही दर्शाया जाता है, इसे दो भागों में विभाजित किया जा सकता है –

(i) राजस्व प्राप्तियाँ एवं राजस्व व्यय (Revenue Reciepts & Revenue Expenditure) :–

इसके अन्तर्गत वह आय दर्शायी जाती है, जिसका सम्बन्ध उसी वित्तीय वर्ष से होता है, इसे चालू खाता भी कहा जाता है। इस खाते में आय के वे स्त्रोत शामिल होते हैं जिनके बदले में कोई भुगतान नहीं करना होता है जैसे– करों से प्राप्त आय, सार्वजनिक उपक्रमों द्वारा अर्जित लाभ, सरकारी उद्योग पर प्राप्त ब्याज आदि।

राजस्व बजट के अन्तर्गत राजस्व आय एवं राजस्व प्राप्तियाँ दर्शायी जाती है। राजस्व आय एवं राजस्व प्राप्तियों में (अ) कर राजस्व – जैसे आयकर, निगम कर, सम्पत्ति कर, उपहार कर, उत्पादन शुल्क, सीमा शुल्क, व्यय इत्यादि आते हैं। (ब) गैर कर राजस्व – में ऋृण, ब्याज, शुल्क जुर्माना इत्यादि आते हैं।

राजस्व व्यय को बजट में गैर विकासात्मक व्यय, तथा विकास व्यय के रूप में विभाजित किया जाता है। गैर विकासात्मक व्यय के अन्तर्गत सरकारी सेवाओं पर व्यय, सरकारी सब्सिडी, सरकारी अनुदान एवं ब्याज की अदायगी शामिल है जबकि विकासात्मक व्यय के अन्तर्गत सामाजिक एवं सामुदायिक सेवाओं पर व्यय, कृषि एवं सहायता सेवाओं, उद्योग–खनिज, उर्वरक सब्सिडी सामान्य आर्थिक सेवाये, विद्युत सिचाई, बाढ़ नियन्त्रण, सार्वजनिक निर्माण, परिवहन एवं संचार, राज्यों को अनुदान को शामिल किया जाता है।

राजस्व व्यय को भी दो भागों में दर्शाया जाता है। (अ) आयोजना भिन्न व्यय– राजस्व खाते से (ब) आयोजना व्यय–राजस्व खाते से। इन दोनों मदों में सरकारी बजट के आयोजना एवं आयोजना भिन्न मदों में होने वाले व्यय को दर्शाया जाता है।

बजट में राजस्व प्राप्तियों के बाद अगले भाग में राजस्व व्यय दर्शाया जाता है। राजस्व व्यय को भी दो भागों में विभाजित किया जाता है।

(अ) आयोजना भिन्न व्यय–राजस्व खाते से (Non plan Expenditure in revenue Account)

(ब) आयोजना व्यय – राजस्व खाते से (Plan Expenditure in Revenue Account)

(ii) पूँजीगत बजट (**Capital Budget**) –

बजट दस्तावेज के दूसरे भाग में इसे दर्शाया जाता है जिसके दो भाग –

(ii) पूँजीगत प्राप्तियाँ एवं पूँजीगत व्यय (Capital Reciepts & Capital Expenditure) :–

इसके अन्तर्गत आय के उन समस्त स्त्रोतों को रखा जाता है, जिनके बदले में भुगतान करना आवश्यक होता है। पूँजीगत व्यय खाते में उन व्ययों को शामिल किया जाता है, जिनमें व्यय तो

तालिका 23.1 : बजट

राजस्व बजट		पूँजीगत बजट	
प्राप्तियों की मदें	व्यय की मदें	प्राप्तियों की मदें	व्यय की मदें
— कर आय — लाभ व लाभांश — ब्याज आय — गैर कर आय	— सरकारी सेवाओं पर व्यय — ब्याज अदायगी — अनुदान — सब्सिडी — सामान्य आर्थिक सेवायें — सार्वजनिक निर्माण	— निबल घरेलू ऋृण — निबल विदेशी ऋृण — ऋृण वापसी — लोक सेवा प्राप्तियाँ	— परिसम्पत्तियों का निर्माण — संचित कोष — आकस्मिक कोष

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

चालू वर्ष में दिया जाये किन्तु इससे सामाजिक कल्याण में वृद्धि चालू वर्ष के साथ–साथ आगामी वर्षों तक होती रहे।

पूँजीगत आय के अन्तर्गत ऋणों की वसूली, विविध प्रकार की प्राप्तियाँ, इत्यादि दर्शायी जाती है, जबकि पूँजीगत व्यय को आयोजना–भिन्न व्यय–पूँजीगत खाते से तथा आयोजना व्यय–पूँजीगत खाते दर्शाया जाता है।

(अ) पूँजीगत प्राप्तियाँ (**Capital Receipts**) – इसके अन्तर्गत ऋणों की वसूली, विविध प्राप्तियाँ, उधार व अन्य देनदारियाँ दर्शायी जाती हैं। इनकी कुल प्राप्तियों का योग पूँजीगत प्राप्तियाँ कहलाती हैं।

(ब) पूँजीगत व्यय (**Capital Expenditure**) – पूँजीगत व्यय को भी दो भागों में बाँटा जाता है। (1) आयोजना भिन्न व्यय–पूँजीगत खाते से (Non Plan Expenditure in capital Acccount) एवं (2) आयोजना व्यय पूँजीगत खाते से (Plan Expenditure in capital Acccount)

2. सरकार की कुल आय एवं कुल व्यय में समानता या अन्तर के आधार पर भी सरकारी बजट के प्रमुख तीन प्रकार निम्न हैं –

(i) बचत का बजट (**Surplus Budget**)

वह बजट बचत का बजट कहलाता है जिसमें सरकार के व्यय की अपेक्षा आय का आधिक्य हो। अर्थात सरकार की कुल आय उसके कुल व्यय की अपेक्षा अधिक हो।

अर्थात कुल आय > कुल व्यय (धनात्मक अन्तर)

(ii) सन्तुलित बजट (**Balanced Budget**)

जिस बजट दस्तावेज मे सरकारी आय व सरकारी व्यय दोनों समान हो तो वह सन्तुलित बजट कहलाता है।

सन्तुलित बजट = कुल आय = कुल व्यय

(iii) घाटे का बजट (**Deficit Budget**)

सरकार द्वारा प्रस्तुत बजट दस्तावेज में सरकारी व्यय की अपेक्षा सरकारी आय कम हो तो उसे घाटे का बजट कहा जाता है। आधुनिक युग में प्रायः सभी लोकतान्त्रिक देशों में सरकार को जनकल्याणकारी कार्यों का निर्वहन हेतु कई प्रकार के व्यय करने पड़ते हैं। आर्थिक विकास की बढती माँग, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर बढ़ता व्यय, देश की माँग बढ़ने से सरकारों का सार्वजनिक व्यय तेजी से बढ़ता जा रहा है। यही कारण है कि घाटे का बजट, बजट की लोकप्रिय अवधारणा है।

घाटे का बजट= सरकार का कुल व्यय > सरकारी की कुल आय

बदलते परिवेश में बजट के प्रकार

सामान्यतया सरकारी बजट एक वित्तीय वर्ष की अवधि से सम्बन्धित होता है भारत में वित्तीय वर्ष 1 अप्रेल से 31 मार्च तक होता है। अर्थव्यवस्था में बदलती हुई परिस्थितियों, बढ़ते सरकारी हस्तक्षेप के कारण बजट की प्रक्रिया एवं बजट के स्वरूप में आधुनिक युग मे परिवर्तन हुए हैं, जिन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है।

1. आम बजट –

आम बजट को पारम्परिक बजट भी कहा जा सकता है, इसका प्रमुख उद्देश्य विधायिका का कार्यपालिका पर वित्तीय नियन्त्रण स्थापित करना रहा है। इस प्रकार के बजट का प्रमुख उद्देश्य सरकारी खर्चों पर नियन्त्रण करना था न कि तीव्र गति से विकास को प्रेरित करना। इस बजट मे मुख्यतः वेतन, मजदूरी, उपकरण, मशीनें आदि के रूप में किये जाने वाले व्यय तथा विभिन्न मदों से होने वाली आय को प्रस्तुत किया जाता है।

पूरक बजट– यदि बजट में स्वीकृत धनराशि 31 मार्च से पूर्व ही समाप्त हो जाये तो इस स्थिति मे सरकार संसद के सम्मुख पूरक बजट प्रस्तुत करती है और अतिरिक्त धनराशि की माँग की जाती है।

लेखानुदान– पिछला बजट 31 मार्च को समाप्त हो जाता है जिसे बढ़ाया नहीं जा सकता, इसीलिये सरकार को 1 अप्रेल को अपने खर्चों के लिये नये बजट की आवश्यकता होती है संसद अस्थायी रूप से सरकार को व्यय के लिये अग्रिम धनराशि देती है।

2. निष्पादन बजट –

कार्य के परिणामों या निष्पादन को आधार बनाकर निर्मित किया गया बजट निष्पादन बजट कहलाता है। निष्पादन बजट को व्यापक कार्यवाही का दस्तावेज माना जाता है। जो कार्यक्रमों, परियोजनाओं से सम्बन्धित संख्यात्मक आँकड़े एवं क्रियान्वयन की उपलब्धियों का मापन करता है। यह बजट मूलतः लक्ष्योन्मुखी एवं उद्देश्य परक प्रणाली पर आधारित है।

3. जीरोबेस बजट :–

जीरोबेस (शून्य आधारीय) बजट का जनक अमरीका के पीटर. ए. पायर को माना जाता है। 1979 में इसे अमेरिका के राष्ट्रीय बजट में राष्ट्रपति जिमी कार्टर द्वारा अपनाया गया ।

शून्य आधारित बजट प्रणाली व्यय पर अकुंश लगाने की एक तार्किक प्रणाली है इस प्रणाली में विगत व्ययों को आधार नहीं बनाया जाता अर्थात विगत व्ययों को भावी व्यय के लिये तर्क के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है। इस प्रणाली में प्रत्येक क्रिया कलाप को शून्य आधार से पुनः औचित्य निर्धारित करना पड़ता है न कि पुराने व्ययों पर नये व्ययों का प्रावधान करना। इस बजट प्रणाली को सूर्यास्त बजट प्रणाली (सनसेट सिस्टम) भी कहा जाता है।

4. आउटकम बजट –

सामान्य बजट की तुलना मे यह एक कठिन प्रक्रिया है जिसमें वित्तिय प्रावधानों को परिणामों के सन्दर्भ में देखा जाता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

बजट मे मूल्याकंन किये जा सकने वाले भौतिक लक्ष्यों का निर्धारण इस उद्देश्य से किया जाता है कि बजट के क्रियान्वयन की गुणवत्ता को परखा जाना सम्भव हो सके। आउटकम बजट में कार्य सम्पादन हेतु किसी भी स्तर पर बिना रूकावट के निर्धारित धनराशि को सही समय, सही मात्रा में पहुँचाना होता है।

5. जेन्डर बजटिंग –

जेन्डर बजटिंग के माध्यम से सरकार द्वारा महिलाओं के विकास, कल्याण और सशक्तिकरण से सम्बन्धित योजनाओं और कार्यक्रमों के लिये प्रतिवर्ष बजट में एक निर्धारित राशि की व्यवस्था सुनिश्चित करने के प्रावधान किये जाते है। बजट के प्रावधान पुरूष और स्त्री को अलग–अलग तरीके से प्रभावित करते हैं।

(6) संघीय, प्रान्तीय एवं स्थानीय संस्थाओं के बजट–

संघीय एवं प्रान्तीय सरकार के बजट कार्यकारिणी द्वारा तैयार किये जाते हैं तथा कार्यकारिणी द्वारा पास करवाये जाते हैं तथा इनके क्रियान्वयन का दायित्व भी कार्यकारिणी पर रहता है। स्थानीय संस्थाओं का बजट स्वतन्त्र होता है।

(7) सामान्य एवं संकटकालीन बजट–

सामान्य बजट प्रायः अपेक्षाकृत स्थायी प्रकृति के कार्यों से व्यवहार करते हैं, जबकि संकटकालीन बजट असामान्य या विशेष परिस्थितियों जैसे युद्ध, मन्दी आदि से सम्बद्ध होते हैं। दोनों के उत्तरदायित्व, भागीदारी और क्षमतायें अलग–अलग होती हैं।

महिलाओं में अधिकारों के प्रति जागरूकता का अभाव, शिक्षा के अवसरों में कमी स्वतन्त्र निर्णय न ले पाना इत्यादि परिस्थितियों के कारण जैन्डर बजटिंग का भारत जैसे विकासशील देश में पर्याप्त महत्व है।

बजट घाटे की अवधारणा :–

आधुनिक युग में लोकतान्त्रिक सरकारों द्वारा प्रस्तुत बजट में विविध प्रकार के बजटीय घाटों को दशार्या जाता है, जिससे अर्थव्यवस्था के स्वरूप को समझने में सहायता मिलती है।

प्रो. डाल्टन – एक बजट घाटा असंतुलित है यदि एक दिये गये समय के अन्दर व्यय आय से अधिक है।

विभिन्न अवधारणायें :–

(अ) राजस्व घाटा :–

जब बजट के अन्तर्गत दर्शाये गये कुल राजस्व व्यय कुल राजस्व प्राप्तियों से अधिक होता है। तो वह अन्तर राजस्व घाटा कहलाता है। अर्थात् राजस्व घाटा बजट की राजस्व प्राप्तियों की अपेक्षा राजस्व व्यय के आधिक्य को व्यक्त करता है।

सूत्र :

राजस्व घाटा = राजस्व प्राप्तियाँ – राजस्व व्यय

उदाहरण – कुल राजस्व प्राप्तियाँ 1300 करोड़ – कुल राजस्व व्यय 1700 करोड़

अतः कुल राजस्व घाटा = 400 करोड़ रू.

सूत्र की व्याख्या –

राजस्व घाटा = (कुल कर राजस्व + कुल गैर कर राजस्व) – (राजस्व खाते में आयोजना भिन्न व्यय + राजस्व खातें में आयोजना व्यय)

(ब) राजकोषीय घाटा :–

प्रस्तुत बजट में राजकोषीय घाटा कुल राजस्व प्राप्तियों, गैर ऋण पूँजीगत प्राप्तियों के ऊपर सरकार के कुल व्यय (राजस्व व पूँजीगत व्यय, जिसमें उधार लिये गये शुद्ध ऋणों की राशि भी शामिल होती है) का आधिक्य है। स्पष्ट है कि बजट घाटे में उधार एवं अन्य समस्त देनदारियाँ जोड़ दे तो वह राजकोषीय घाटा कहलाता है। राजकोषीय घाटा अर्थव्यवस्था वर्तमान आर्थिक स्थिति का समग्र दर्पण होता है।

राजकोषीय घाटा = कुल व्यय – कुल राजस्व (उधार के अलावा)

(स) वित्तीय घाटा :–

वित्तीय घाटा, सरकारी कोष की वास्तविक स्थिति को व्यक्त करता है इसके अन्तर्गत बजट घाटे के साथ साथ सरकार की शुद्ध उधारी को भी जोड़ा जाता है।

(द) प्राथमिक घाटा :–

राजकोषीय घाटे में से ब्याज अदायगियों को घटाने के बाद जो राशि शेष बचती है उसे प्राथमिक घाटा कहा जाता है।

सूत्रः

प्राथमिक घाटा = राजकोषीय घाटा – ब्याज अदायगियां

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि सरकारी बजट किसी भी अर्थव्यवस्था को गति प्रदान करने के लिये बहुत महत्वपूर्ण होता है। आधुनिक युग में तो सरकारी बजट सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को न केवल प्रभावित करता है बल्कि अर्थव्यवस्था को दिशा भी प्रदान करता है।

भारत में बजट की नवीन प्रवृतियां–

वित्तीय वर्ष 2016–17 के लिये केन्द्र सरकार का बजट प्रस्तुत करते हुये वित्तमंत्री अरूण जेटली ने राजकोषीय प्रशासन की व्यवस्था में सुधार के लिये सरकार के व्यय को योजनागत व्यय एवं गैर योजनागत व्यय में वर्गीकृत करने की प्रथा को समाप्त करने की घोषणा की है। 2017–18 से यह प्रथा समाप्त हो जायेगी और बजट को केवल राजस्व व्यय व पूँजीगत व्यय के रूप में ही वर्गीकृत किया जायेगा।

2016–17 के बजट में डिजिटल साक्षरता स्कीम, कालेधन की घोषणा हेतु स्कीम, मेक इन इन्डिया सहित एक भारत–श्रेष्ठ भारत कार्यक्रम शुरू करने की घोषणा प्रस्तावित की गयी है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

सितम्बर 2016 में हुई भारत सरकार की केबिनेट मीटिंग के निर्णयानुसर अगले वित्तीय वर्ष में रेल बजट को भी अलग से प्रस्तुत नहीं किया जायेगा बल्कि इसे देश के आम बजट में एक मद के रूप में दर्शाया जायेगा।

केन्द्र एवं राज्य सरकारों में वित्तीय अनुशासन बनाये रखने के उद्देश्य से भारतीय संसद ने 7 मई 2003 को राजकोषीय उत्तरदायित्व एवं बजट प्रबन्धन अधिनियम FRBMA Act पारित किया जिसमें प्रावधान किया गया है कि राजस्व घाटे को शून्य किया जाये।

केन्द्र और राज्यों के बीच राजस्व बटँवारे के मानक तय करने हेतु देश में वित्त आयोग समय–समय पर केन्द्र सरकार को सुझाव देता है। केन्द्र व राज्यों दोनों के राजस्व घाटे को शून्य स्तर पर लाकर राजकोषीय सुदृढ़त्रीकरण का सुझाव तेहरवें वित्त आयोग द्वारा दिया गया। वर्तमान में चौदहवाँ वित्त आयोग (जनवरी 2013 में गठित) वाई. वी. रेड्डी की अध्यक्षता में गठित किया गया है, जिससे प्राप्त रिर्पार्ट पर 2015 से 2020 तक क्रियान्वयन किया जा सकेगा।

भारतीय संविधान मे प्रतिवर्ष बजट को संसद द्वारा पास कराने की व्यवस्था करने से सरकारी मशीनरी द्वारा किये जाने वाले व्यय के लिये संसद की अनुमति की अनिवार्यता का प्रावधान संसद के नियन्त्रण को सर्वोच्चता प्रदान करता है।

आर्थिक नीति के उपकरण के रूप में बजट –

बजट को राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक नीति का एक महत्वपूर्ण उपकरण माना जाता है। बजट केवल अनुमानों के प्रस्तावक मात्र ही नहीं बल्कि भूतकाल के अनुभव पर आधारित भविष्य के लिये व्यापक योजना एवं कार्यक्रम है जो सरकार की आर्थिक एवं सामाजिक विचारधारा को प्रकट करता है। बजट सरकार की आर्थिक नीति का महत्वपूर्ण एवं आवश्यक उपकरण है। बजट राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के आर्थिक विकास का अभिन्न अंग है। यह देश में इच्छित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिये सरकार के हाथों में अच्छा उपकरण है।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- राजस्व बजट– इसके अन्तर्गत कर एवं शुल्क आदि से प्राप्त होने वाली सरकारी आय शामिल होती है तथा इनके संग्रह पर किया जाने वाला व्यय भी राजस्व बजट में शामिल होता है।
- पूँजीगत बजट– इसके अन्तर्गत सरकार द्वारा प्राप्त किया गया ऋृण उस पर किया गया व्यय एवं सरकारी परिसम्पतियों से होने वाली आय तथा व्यय शामिल होता है।
- आम बजट एक देश की अर्थव्यवस्था का वार्षिक लेख–जोखा होता है।
- संसद में प्रस्तुत करने से पूर्व बजट को गुप्त रखा जाता है।
- वित्त आयोग का प्रमुख कार्य केन्द्र व राज्यों के बीच में राजस्व बँटवारा करना है।
- वर्ष 2017 से रेल बजट को आम बजट में शामिल कर लिया गया है।
- आधुनिक युग में बजट की सर्वाधिक लोकप्रिय अवधारणा घाटे का बजट है।
- राजकोषीय घाटा = कुल व्यय– कुल राजस्व (उधार के अलावा)
- सामान्यतया बजट एक वित्तीय वर्ष हेतु प्रस्तुत किया जाता है।
- जेन्डर बजटिंग का उद्देश्य महिलाओं के अधिकारों की जागरूकता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. सन्तुलित बजट से आशय है–
   (अ) कुल आय > कुल व्यय
   (ब) कुल आय < कुल व्यय
   (स) कुल आय = कुल व्यय
   (द) कुल आय = 0 ( )
2. निम्न में से राजस्व प्राप्ति की मद नहीं है–
   (अ) कर आय (ब) लाभांश
   (स) अनुदान (द) गैर कर आय ( )
3. जनता की क्रय शक्ति में कमी करने हेतु सरकार का प्रमुख उपाय है–
   (अ) करों में छूट देना
   (ब) नये कर लगाना
   (स) सरकारी व्यय में वृद्धि करना
   (द) सब्सिडी देना ( )
4. जिस बजट में विगत व्ययों को आधार नहीं बनाया जाता, वह है–
   (अ) आम बजट (ब) घाटे का बजट
   (स) पूरक बजट (द) जीरोबेस बजट ( )
5. संसद में प्रतिवर्ष बजट पास करवाने की व्यवस्था से

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

किसकी सर्वोच्चता सिद्ध होती है–

(अ) राष्ट्रपति (ब) प्रधानमंत्री

(स) संसद (द) वित्तमंत्री ( )

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. राजस्व प्राप्तियों को दो भागों में बाँटा जाता है दोनों भागों के नाम लिखो।
2. राजस्व घाटा ज्ञात करने हेतु सूत्र लिखिये।
3. भारत में वित्तीय वर्ष की अवधि बताइये।
4. शून्य आधारिय बजट का जनक कौन है?

लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. 'आम बजट' से आपका क्या आशय है?
2. बजट की तुलना जादू के पिटारे से की गयी है क्यो ?स्पष्ट करें।
3. बजट किसे कहा जाता है ?
4. प्राथमिक घाटे से आप क्या समझते हैं ?
5. यदि एक देश के बजट मे राजस्व घाटा 700 करोड़ रू. एवं कुल राजस्व व्यय 1800 करोड़ रू है तो राजस्व प्राप्तियाँ ज्ञात कीजिये।

निबन्धात्मक प्रश्न –

1. बजट घाटे से आप क्या समझते है?इसकी विभिन्न अवधारणाओं को समझायें।
2. बजट को परिभाषित करते हुए इसके महत्व की विवेचना कीजिये।
3. राजस्व प्राप्तियाँ एवं राजस्व व्यय से आपका क्या आशय है?स्पष्ट कीजिये।
4. बजट से आपका क्या आशय है?जेन्डर बजटिंग को क्यों उपयोगी माना गया है?

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
स	स	ब	द	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 24

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की अवधारणाएँ
(Concept of International Trade)

प्रस्तावना –

वैश्वीकरण के इस युग में ऐसा कोई देश नहीं होगा जो अपने नागरिकों की जरूरतों की पूर्ति अपने उपलब्ध संसाधनों द्वारा कर लेता हो। लोगों में बढ़ती उपभोक्तावादी प्रवृत्ति किसी भी देश को अन्य देशों से वस्तुओं और सेवाओं के लेन–देन के लिए आकृष्ट करती है। ऐसे में किसी देश की बंद अर्थव्यवस्था (Closed Economy) की कल्पना भी बेमानी होगी। आज का युग 'खुली अर्थव्यवस्था' (Open Economy) का युग है। प्रत्येक देश अपनी जनसंख्या की जरूरतों के लिए विभिन्न देशों के साथ व्यापार और अन्य आर्थिक लेन–देन में संलग्न हैं।

आइये हम इसके लिए सर्वप्रथम खुली और बंद अर्थव्यवस्था को समझने का प्रयास करते हैं।

बंद अर्थव्यवस्था –

यह एक ऐसे देश की अर्थव्यवस्था कही जा सकती है, कि जो दूसरे देश से कोई आर्थिक लेन–देन अथवा व्यापार नहीं करती है। इसके अन्तर्गत केवल देश में उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं का ही उपयोग किया जाता है।

खुली अर्थव्यवस्था –

यह एक ऐसी अर्थव्यवस्था है, जिसमें अन्य देशों के साथ वस्तुओं और सेवाओं का परस्पर लेन–देन तथा वित्तीय परिसम्पत्तियों का भी व्यापार किया जाता है।

उदाहरण के लिए भारत में हम अन्य देशों से आयातित अनेक वस्तुओं एवं सेवाओं का उपयोग करते हैं। इसी प्रकार हमारे उत्पादन का कुछ भाग विदेशों को निर्यात भी किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ –

सामान्यतः व्यापार का अर्थ वस्तु और सेवाओं के क्रय विक्रय से होता है। व्यापार आन्तरिक और अन्तर्राष्ट्रीय होता है। आन्तरिक अथवा घरेलू व्यापार किसी भी देश की भौगोलिक सीमा के भीतर विभिन्न क्षेत्रों के बीच में होता है। उदाहरण के लिए दक्षिण भारत से केला, चावल और नारियल समूचे भारत में आन्तरिक व्यापार के तहत भेजे जाते हैं। इसी प्रकार कश्मीर में उत्पादित सेव, मसाले, केसर इत्यादि भी ऐसे ही उदाहरण हैं। इसके विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार दो अथवा दो से अधिक देशों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय होता है। किसी देश की भौगोलिक सीमाओं के बाहर होने वाला व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है। उदाहरणार्थ भारत और अमेरिका के बीच होने वाला व्यापार अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है। इसे सरल भाषा में विदेशी व्यापार भी कहते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता–

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार की आवश्यकता को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से समझ सकते हैं–

1. सभी देश सभी प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन समान रूप से करने में सक्षम नहीं होते हैं, इसलिए आवश्यकता की वस्तुओं के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना पड़ता है। उदाहरण के लिए तेल की आवश्यकता सभी देशों को होती है, किन्तु यह कुछ ही क्षेत्र में सीमित है। अतः इसका अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता है।
2. विश्व में साधनों जैसे उर्वरा भूमि, खनिज सम्पदा, वनसम्पदा इत्यादि का असमान वितरण होता है। जलवायु भी असमान रहती है। उत्पादन के साधनों के बीच स्थानापन्न पूर्ण नहीं होता है। अतः प्रत्येक देश उस वस्तु के उत्पादन में विशिष्टीकरण करता है, जो साधन वहाँ प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इससे उसकी उत्पादन लागत कम होती है। लाभ अर्जित करने के लिए वस्तुओं का निर्यात करता है। इसके विपरीत अल्प संसाधनों और इनकी ऊँची कीमतों के कारण ऐसी वस्तुओं का दूसरे देशों से आयात करता है। इस प्रकार वह अपनी उत्पादन लागत कम करने का प्रयास करता है और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से लाभ अर्जित करता है।
3. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से आधुनिक टैक्नोलोजी प्राप्त होती है जिससे विकासशील और पिछड़े देशों का विकास सम्भव होता है।
4. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से घरेलू उद्योगों में भी प्रतिस्पर्धा बढ़ती है, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से अधिक लाभ कमाने के लिए वे अपने उत्पाद की गुणवत्ता और विक्रय मात्रा दोनों में वृद्धि करते हैं।
5. वर्तमान में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से प्राप्त आगम, सकल राष्ट्रीय उत्पाद का बड़ा अंश होता है। सभी विकासशील

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

देशों के विकास में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार एक उत्तरदायी घटक रहा है।

महत्त्व

प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों द्वारा दी गई परिभाषा अन्तर्राष्ट्रीय महत्व को बताती है–

जेकब वाइनर के अनुसार "विदेशी व्यापार कुछ अंश तक विशिष्टीकरण को जन्म देता है।"

वाल्टर क्रूसे "अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार अधिक मनुष्यों को जीने की अनुमति देता है, विभिन्न रुचियों को प्रदान करके जनता को उच्च जीवन स्तर का आनन्द देता है जो शायद उसकी अनुपस्थिति में सम्भव नहीं होता।"

अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के महत्व को निम्न बिन्दुओं से समझाया गया है–

1. उपभोक्ता, उत्पादक और विनियोगकर्त्ता को अधिक वस्तुओं के चयन का अवसर प्रदान करता है।
2. प्राकृतिक संसाधन का पूर्ण उपयोग होने में सहायक होता है।
3. प्रत्येक देश को विकास करने का समान अवसर प्रदान करता है।
4. प्राकृतिक आपदाओं में आवश्यक वस्तुओं को उपलब्ध कराने में सहायक होता है।
5. विकासशील देशों को वित्तीय सुविधा और आधुनिक टैक्नोलॉजी प्राप्त होने से तीव्र औद्योगीकरण की सम्भावनाएं बढ़ती हैं।
6. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से देशों में परस्पर सद्भावना बढ़ती है।

व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन

व्यापार संतुलन और भुगतान संतुलन में उल्लेखनीय अन्तर है। व्यापार संतुलन, भुगतान संतुलन का एक अंश है। प्रत्येक देश वस्तुओं और सेवाओं का आयात निर्यात करता है, कुछ मदें दृश्य होती है और कुछ अदृश्य। दृश्य वस्तुओं से तात्पर्य है भौतिक वस्तुएं, जिन्हें देखा और मापा जा सकता है। इन वस्तुओं के आयात और निर्यात मूल्यों को व्यापार सन्तुलन में शामिल किया जाता है। इस प्रकार व्यापार संतुलन केवल दृश्य वस्तुओं को ही शामिल करता है। यदि किसी देश के आयातों की तुलना में निर्यात अधिक होते हैं तो व्यापार सन्तुलन अनुकूल होता है। इसके विपरीत यदि निर्यातों की तुलना में आयात अधिक होते हैं तो व्यापार सन्तुलन प्रतिकूल होता है।

भुगतान सन्तुलन एक व्यापक अवधारणा है इसमें दृश्य और अदृश्य दोनों ही प्रकार की मदें शामिल होती है। अदृश्य मदों में सेवाएं जैसे बैकिंग, बीमा, तकनीकी ज्ञान आदि होती हैं। इनका भुगतान देशों के मध्य होता है। किन्तु बन्दरगाहों पर उनका कोई लेखा नहीं होता है। इसके अतिरिक्त इसमें पूंजी खाते को भी शामिल किया जाता है। कुछ प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों ने भुगतान संतुलन को इस प्रकार से परिभाषित किया है –

बोसोडर्स्टन के अनुसार – "भुगतान संतुलन किसी देश के लिए अन्तर्राष्ट्रीय लेन देन में प्राप्तियों और भुगतान को दर्ज

तालिका 24.1 भुगतान सन्तुलन लेखा

क्रेडिट (प्राप्तियाँ)			**डेबिट (भुगतान)**	
चालू लेखा				
क्र.स.	मदें	रु. करोड़	मदें	रु. करोड़
1.	वस्तुओं का निर्यात	300	8. वस्तुओं का आयात	400
2.	सेवाओं का निर्यात	100	9. सेवाओं का आयात	200
3.	विदेशी विनियोगों से आय	200	10. विदेशी विनियोगों से आय	100
4.	यूनिलैटरल (एक पक्षीय) प्राप्तियाँ (उपहार, दान आदि)	100	11. यूनिलैटरल (एकपक्षीय) भुगतान	100
		700		800
पूँजी खाता				
5.	दीर्घकालीन उधार लेना	200	12.दीर्घकालीन उधार देना	100
6.	अल्पकाल उधार लेना	200	13. अल्पकाल उधार देना	100
7.	स्वर्ण/परिसम्पत्ति विक्रय	100	14 स्वर्ण/परिसम्पत्ति खरीद	100
		500	15. अशुद्धियाँ और भूलचूक	300 100
	कुल योग	1200		1200

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

करने का तरीका मात्र है।"

भुगतान संतुलन को निम्न काल्पनिक तालिका के द्वारा सरलता से समझा जा सकता है।

उपरोक्त तालिका में व्यापार सन्तुलन में 100 करोड़ का घाटा दर्शाया गया है। वस्तुओं का निर्यात 300 करोड़ रुपये है, जबकि वस्तुओं का आयात 400 करोड़ रुपये है। किन्तु भुगतान सन्तुलन के दोनों पक्ष (क्रेडिट और डेबिट) 1200 करोड़ रुपये है। भुगतान संतुलन संतुलित है, यह सदैव संतुलित रहता है क्योंकि इसमें दृश्य और अदृश्य दोनों प्रकार की वस्तुएँ शामिल होती हैं।

विदेशी विनिमय दर का अर्थ

सेयर्स के अनुसार, ''चलन मुद्राओं के परस्पर मूल्यों को ही विदेशी विनिमय दर कहा जाता है।''

हेन्स के अनुसार, ''विनिमय दर एक मुद्रा की दूसरी मुद्रा के रुप में व्यक्त की गई कीमत है।''

सेयर्स और हेन्स की परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि विनिमय दर वह दर है जिस पर एक करेन्सी दूसरी करेन्सी में परिवर्तित की जाती है। जैसे भारत का एक रुपया = 0.015 डॉलर के बराबर है। अथवा 1 यू.एस. डॉलर = 68.26 भारतीय रुपये। यदि कोई भारतीय पर्यटक अमरीका यात्रा के उद्देश्य से जाता है तो वहाँ अपनी दैनिक जरुरतों को पूरा करने के लिए भारतीय मुद्रा (रुपये) को डॉलर में बदलवाना होगा, 1 डॉलर के लिए उसे 68.26 रुपये देने पड़ेंगे। विनिमय विदेशी वर विनिमय बाजार में तय होती है।

विदेशी विनिमय बाजार – जहाँ दो अथवा अधिक देशों के मध्य उनकी मुद्राओं का विनिमय होता है। इस बाजार के प्रमुख ऐजेंट व्यावसायिक बैंक, अधिकृत डीलर और मुद्रा प्राधिकारी हो सकते हैं।

विनिमय दर कई प्रकार की होती हैं, जैसे अग्रिम, तत्काल, अनुकूल, प्रतिकूल, स्थिर और अस्थिर विनिमय दर।

विनिमय दर का निर्धारण

अर्थशास्त्रियों द्वारा विनिमय दर के निर्धारण के लिए मांग–पूर्ति सिद्धान्त, क्रय शक्ति समता सिद्धान्त, भुगतान शेष सिद्धान्त और टकसाल दर समता सिद्धान्त आदि प्रतिपादित किए गए हैं।

मांग पूर्ति सिद्धान्त

जिस प्रकार बाजार में कीमतों का निर्धारण उनकी मांग और पूर्ति के द्वारा होता है उसी प्रकार विदेशी विनिमय बाजार में भी विनिमय दर का निर्धारण विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। एक सरल उदाहरण द्वारा हम इसे समझने का प्रयास कर सकते हैं। जैसे भारत में विदेशी विनिमय की मांग (डॉलर) इसलिए होती है कि भारत अमेरिका से वस्तुएँ एवं सेवाएँ आयात करता है। भारत इसके लिए अमरीका को पूँजी हस्तान्तरण करता है। जिसके बदले अमेरीकी डॉलर उपलब्ध कराता है क्योंकि आयातों का भुगतान डॉलर में किया जाता है।

डॉलर की मांग के वक्र का ढाल ऋणात्मक होता है अर्थात् विनिमय दर जितनी कम होगी, भारत में डॉलर की मांग उतनी ही अधिक होगी। अर्थात् भारत में अमरीका की वस्तुओं और सेवाओं के दाम सस्ते हो जाऐंगे। आयात मांग की लोच मांग वक्र को प्रभावित करती है।

पूर्ति – जब भारत वस्तुओं और सेवाओं का निर्यात करता है तो अमेरिका से भारत को पूंजी भेजी जाती है। डॉलर के बदले रुपये दिए जाते हैं क्योंकि अमेरिका भारत को भुगतान रुपये में करता है। पूर्ति वक्र धनात्मक होता है जो प्रत्यक्ष सम्बन्ध को बताता है अर्थात् जैसे–जैसे विनिमय दर बढ़ती है तो रुपये की पूर्ति बढ़ जाती है। पूर्ति वक्र का ढाल पूर्ति की लोच द्वारा निर्धारित होता है।

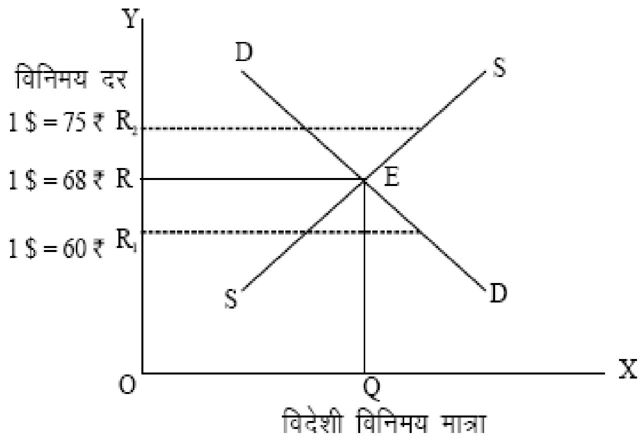

रेखाचित्र 24.1

चित्र में सन्तुलन E बिन्दु पर है जहाँ DD विदेशी विनिमय की मांग SS विदेशी विनिमय की पूर्ति के बराबर है। विदेशी विनिमय की मांग और पूर्ति OQ होती है। विनिमय दर OR है। + 68 निर्धारित होती है। यदि विनिमय दर OR_2 हो तो विदेशी विनिमय की पूर्ति मांग से अधिक होगी परिणाम स्वरूप विनिमय दर घटेगी और E पर साम्य होंगे। इसके विपरीत OR_1 पर विदेशी विनिमय की मांग विदेशी विनिमय की पूर्ति से अधिक है, जिससे विनिमय दर बढ़कर पुनः सन्तुलन E पर स्थापित होगा। भुगतान सन्तुलन इन लोचदार विनिमय दरों के कारण सन्तुलन की स्थिति में रहता है।

इस प्रकार विनिमय दरों में परिवर्तन से विदेशी विनिमय की मांग या पूर्ति में भी परिवर्तन आता है। इसके अन्य कई आर्थिक कारण भी उत्तरदायी हो सकते हैं जैसे आयात और निर्यात की मात्रा, देश की पूंजी का प्रवाह, बैंक दर, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा बाजार में अनिश्चितता और देश का राजनैतिक वातावरण।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अवमूल्यन (Devaluation) और अधिमूल्यन (Revaluation)

अवमूल्यन और अधिमूल्यन किसी देश के भुगतान संतुलन को समायोजित के आवश्यक उपकरण होते हैं।

अवमूल्यन किसी देश की सरकार द्वारा अपनी मुद्रा को विदेशी मुद्रा के सापेक्ष में मूल्य ह्रास करने की एक प्रक्रिया है। अवमूल्यन का अर्थ होता है जब कोई देश अपनी मुद्रा का बाह्य मूल्य कम करता है। सरकार ऐसा व्यापार घाटे को कम करने के लिये करती है, जिससे देश के आयात महंगे और निर्यात सस्ते हो जाते हैं। इस प्रकार सरकार अवमूल्यन के द्वारा भुगतान असंतुलन को दूर करने का प्रयास करती है।

अधिमूल्यन भी सरकार द्वारा भुगतान संतुलन को समायोजित करने के लिए अपनाया जाने वाला नीतिगत उपकरण है, जिससे देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के सापेक्ष में बढ़ा दिया जाता है। ऐसा करने से देश के निर्यात महंगे हो जाते हैं और आयात सस्ते हो जाते हैं। विदेशी मुद्रा की तुलना में रुपया महंगा हो जाता है और इसके द्वारा विदेशी व्यापार में आधिक्य को समाप्त किया जा सकता है।

अवमूल्यन और अधिमूल्यन दोनों ही मौद्रिक स्थिर विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत किए जाते हैं। अधिमूल्यन अगर अस्थाई (तिरती) विनिमय दर प्रणाली के अन्तर्गत होता है तो उसे मुद्रा मूल्य वृद्धि (appreciation) कहते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु

- दो या दो से अधिक देशों के मध्य वस्तुओं और सेवाओं का विनिमय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार कहलाता है।
- अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से उपभोक्ता, उत्पादक और विनियोगकर्त्ता में वस्तुओं के चयन का विस्तार होता है।
- व्यापार संतुलन वस्तुओं (दृश्य) के आयात और निर्यात को शामिल करता है।
- भुगतान संतुलन में दृश्य और अदृश्य दोनों ही मदें शामिल होती हैं।
- विनिमय दर एक मुद्रा की दूसरी मुद्रा के रुप में व्यक्त कीमत होती है।
- विदेशी विनिमय की मांग और विदेशी विनिमय की पूर्ति बराबर होने पर विनिमय दर का निर्धारण होता है।
- अवमूल्यन से तात्पर्य है जब कोई देश अपनी मुद्रा की बाह्य मुद्रा कम करता है।
- अपने देश की मुद्रा का मूल्य विदेशी मुद्रा के सापेक्ष में बढ़ा देना अधिमूल्यन कहलाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न–

1. विदेशी विनिमय बाजार को परिभाषित किया जा सकता है जहाँ–
   (अ) वस्तु का लेन–देन होता है
   (ब) विनिमय मुद्रा का लेन–देन होता है
   (स) साधनों का लेन–देन होता है
   (द) सेवाओं का लेन–देन होता है
2. निम्न में से कौनसी स्थिति व्यापार घाटे को दर्शाती है –
   (अ) आयात > निर्यात (ब) निर्यात = आयात
   (स) आयात < निर्यात (द) उपरोक्त कोई नहीं
3. एक देश द्वारा अपनी मुद्रा के बाह्य मूल्य को कम करने को कहते हैं –
   (अ) मूल्यह्रास (ब) अवमूल्यन
   (स) अधिमूल्यन (द) मुद्रा स्फीति
4. व्यापार संतुलन में शामिल होते हैं –
   (अ) सेवाओं का आयात
   (ब) सेवाओं का निर्यात
   (स) परिसम्पत्ति का आयात
   (द) वस्तुओं का आयात व निर्यात
5. यदि 1 डॉलर का मूल्य 65 रुपये से बदलकर 60 रु. कर दिया जाए तो यह कहलाएगा –
   (अ) अधिमूल्यन (ब) अवमूल्यन
   (स) मूल्यह्रास (द) मूल्य वृद्धि

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का क्या अर्थ है?
2. विदेशी विनिमय बाजार का अर्थ बताइये।
3. व्यापार का क्या अर्थ है?
4. व्यापार घाटा कब होता है?
5. विदेशी व्यापार का कोई एक महत्व बताइये।

लघूत्तरात्मक प्रश्न–

1. अवमूल्यन को परिभाषित कीजिए।
2. अदृश्य मदें क्या होती हैं?
3. विनिमय दर का अर्थ बताइए।
4. दृश्य वस्तुओं से क्या अभिप्राय है?
5. बंद अर्थव्यवस्था किसे कहते हैं?

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

निबंधात्मक प्रश्न—

1. विदेशी विनिमय दर के निर्धारण की प्रक्रिया को विस्तार से समझाइये।
2. अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का अर्थ बताइये। इसकी क्यों आवश्यकता होती है?
3. अवमूल्यन व अधिमूल्यन में अन्तर बताइये।
4. 'भुगतान संतुलन, व्यापार संतुलन से अधिक व्यापक अवधारणा है' स्पष्ट कीजिए।
5. एक काल्पनिक उदाहरण द्वारा भुगतान संतुलन की विभिन्न मदों को समझाइए।

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5
ब	अ	ब	द	अ

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

अध्याय 25

नकदी विहीन लेन–देन

(Cashless Transaction)

21वीं सदी में तेजी से बदलते परिवेश में अनेक देशों की अर्थव्यवस्था विकासशील स्तर से विकसित स्थिति की ओर अग्रसर है। परिणाम स्वरूप अर्थव्यवस्था में आर्थिक लेन–देनों में व्यापक रूप से मुद्रा का नकद रूप में प्रयोग होता है। ऐसे में देश में नकद सौदों के लिए नकद मुद्रा का प्रचलन बढ़ता है, एवं मुद्रा की मांग में अत्यधिक वृद्धि होती है। अर्थव्यवस्था में केन्द्रीय बैंक के कार्यभार में वृद्धि होती है। नोट छपाई, निर्गमन से लेकर प्रचलन तक में बैंक को बहुत अधिक लागत वहन करनी पड़ती है। अतः में विकासशील देशों में अर्थव्यवस्था में सरकार नकदी विहीन लेन–देन (Cashless Transaction) को बढ़ावा देने के लिए लोगों को प्रेरित करने लगी है।

इस प्रकार विश्व की दस बड़ी अर्थव्यवस्था में से एक भारतीय अर्थव्यवस्था को भी इस प्रकार की समस्या का सामना वर्तमान में करना पड़ रहा है। सौ करोड़ से ऊपर आबादी वाले इस देश में भौगोलिक विषमता और विशाल क्षेत्रफल में आर्थिक लेन–देन के लिए मुद्रा को नकद के रूप में यहाँ–वहाँ पहुँचाना किसी बड़ी चुनौती से कम नहीं है। अतः भारत जैसे देश की तेजी से उभरती अर्थव्यवस्था में नकदी विहीन लेन–देन को बढ़ावा देने की जरूरत विद्वानों द्वारा बताई जाने लगी है। यहाँ तक कि स्वयं सरकार इस हेतु लोगों में जागरूकता लाकर इस ओर बढ़ने का सार्थक प्रयास करती नजर आ रही है।

भारत में ई–कॉमर्स का प्रयोग एक दशक पूर्व से किया जा रहा है। ई–कॉमर्स या ई–व्यवसाय व्यापार की एक उन्नत और नवीन तकनीक है, जिसमें इंटरनेट के माध्यम से व्यापार का संचालन किया जाता है। इसके अंतर्गत उपभोक्ता न केवल वस्तु एवं सेवा घर बैठे खरीद सकता है बल्कि एक विक्रेता भी अपने सभी प्रकार के उत्पाद दुनिया भर में कहीं भी बेच सकता है। इसमें व्यापारी अपने ग्राहकों से अपने उत्पाद के बारे में प्रतिक्रिया भी प्राप्त कर सकते हैं। बुनियादी ढाँचे, उपभोक्ता और मूल्य वर्धित प्रकार के व्यापारों के लिए इण्टरनेट कई अवसर प्रस्तुत करता है। वर्तमान में कम्प्यूटर, दूरसंचार और केवल टेलिवीजन व्यवसायों में बड़े पैमानों पर उपयोग किए जा रहे हैं। सन् 1990 से ही वाणिज्यिक फर्मों ने अपने उत्पादों के विज्ञापन और बिक्री बढ़ाने के लिए इण्टरनेट का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया था। ऑनलाइन शॉपिंग नेटवर्क वाणिज्यिक गतिविधियों का एक बड़ा भाग बन चुका है। इक्कीसवीं सदी में ऑनलाइन व्यापारों के लिए असीम अवसर और प्रतिस्पर्धा का वातावरण प्रदान किया जा रहा है।

अर्थ–

नकदी विहीन लेन–देन से ही इस शब्द का सरल अर्थ लगाया जा सकता है अर्थात बिना नकद के आर्थिक लेन–देन। इस प्रकार का लेन–देन क्रेता एवं विक्रेता वस्तु एवं सेवाओं को बदले गैर नकद अथवा नकद रहित रूप में करते हैं। यह अनेक बैंक खातों में राशि के स्थानांतरण से संभव होता है। यह लेन–देन क्रेडिट कार्ड, एटीएम कम डेबिट कार्ड, इंटरनेट बैंकिंग तथा चैक आदि के द्वारा भी किया जा सकता है। यह ई–कॉमर्स का ही एक माध्यम कहा जा सकता है, जो कि भारत में लगभग एक दशक पूर्व प्रारम्भ हो चुका है।

नकदी विहीन लेन–देन के माध्यम –

- चैक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान
- इंटरनेट बैंकिंग द्वारा भुगतान
- स्वाइप मशीन द्वारा भुगतान
- ए.टी.एम. मशीन द्वारा भुगतान
- मोबाइल ऐप द्वारा भुगतान
- **USSD** तकनीक द्वारा
- **MICRO ATM's** के द्वारा

डिजिटल लेनदेन

1. **चैक या ड्राफ्ट द्वारा भुगतान :** नकदी विहीन भुगतान का सबसे सरल तरीका चैक या ड्राफ्ट के द्वारा किया गया भुगतान

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

है। इसमें क्रेता (खरीदार) अपने बैंक खाते पर जारी चैक बुक अपने पास रखता है और किसी भी सौदे का भुगतान कभी भी कहीं भी चैक द्वारा विक्रेता को आसानी से कर सकता है। इसी प्रकार बड़े सौदों के लिए ड्राफ्ट का प्रयोग किया जाता है। यह बैंक में जाकर अपने खाते से विक्रेता के पक्ष में बनवाया जाता है। उपर्युक्त दोनों ही तरीकों में इंटरनेट की आवश्यकता नहीं होती।

2. **इंटरनेट बैंकिंग द्वारा भुगतान–** नकद विहीन लेन–देन का दूसरा प्रमुख माध्यम इंटरनेट बैंकिंग है जिसके द्वारा ग्राहक विक्रेता से घर बैठे ऑनलाइन अनेक कंपनियों एवं सेवाएं खरीद सकता है। इस प्रकार हम बिना नकद भुगतान किये घर बैठे वस्तुएँ खरीद सकते हैं। रेल टिकट, हवाई टिकट, फिल्म टिकट आदि सेवाओं के लिए शुल्क भुगतान आसानी से इंटरनेट बैंकिंग द्वारा किया जा सकता है। यह अत्यन्त सरल और सुविधाजनक तरीका माना जाता है। ऑनलाइन शॉपिंग के अन्तर्गत किसी भी प्रकार की वस्तु या सेवा का घर बैठे क्रय आदेश दिया जा सकता है।

3. **स्वाइप मशीन द्वारा भुगतान –** अनेक व्यापारिक बैंक प्रतिष्ठित फर्मों को उनके चालु खातों पर स्वाइप मशीन उपलब्ध कराती हैं। इस मशीन के द्वारा विक्रेता फर्म अपने ग्राहकों से वस्तु या सेवा के बदले भुगतान प्राप्त करते हैं। भुगतान की गई राशि सीधे फर्म के खाते में स्थानान्तरित हो जाती है। ग्राहक इस सेवा का लाभ उठाने के लिए क्रेडिट व डेबिट कम ए.टी.एम. कार्ड का उपयोग करते हैं। प्रत्येक क्रेता इसका सफलता से उपयोग कर कर सकता है।

स्वाइप मशीन

4. ए.टी.एम. मशीन द्वारा भुगतान– नकद विहीन भुगतान के अन्तर्गत क्रेता अपने ए.टी.एम. कार्ड से विक्रेता के खाते में सीधे राशि स्थानान्तरित कर सकता है। इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए क्रेता व विक्रेता दोनों का ही खाता एक ही बैंक में होना चाहिए। बैंक का IFSC कोड की भी जानकारी होना आवश्यक है। अतः यह एक सीमित सुविधा है।

एटीएम मशीन

5. मोबाइल एप द्वारा– वर्तमान दौर में मोबाइल का प्रचलन बहुत अधिक बढ़ा है। स्मार्ट फोन में विभिन्न एप के माध्यम से नकद विहीन लेन–देन सरलता से किया जाता है। नकद विहीन लेन–देन के लिए अनेक बैंकों ने e-wallet ऐप जारी किए हैं। इसी प्रकार अनेक देशी एवं विदेशी कम्पनियाँ भी इस प्रकार के एप एन्ड्रॉयड फोन लेकर आई हैं। ऐसी एप गूगल प्ले स्टोर से निशुल्क डाउनलोड की जा सकती है। ग्राहक अपने ATM कार्ड से अथवा इण्टरनेट बैंकिंग e-wallet खाते में राशि स्थानान्तरित कर सकता है। e-wallet की सहयाता से हम अनेक बिलों का भुगतान घर बैठे आसानी से कर सकते हैं। हाल ही में भारत सरकार द्वारा ऐसी ही **'भीम ऐप' (BHIM-Bharat Interface for Money)**जारी की गई है। प्रधानमंत्री जी ने डिजिटल लेनदेन के प्रति भरोसा कायम रखने के लिये यह सरकारी ऐप जारी किया है। इस ऐप को भारत के संविधान निर्माता और आर्थिक एवं सामाजिक चिन्तक डॉ. भीमराव अम्बेडकर के नाम पर समर्पित किया गया है। यह ऐप लगभग सभी राष्ट्रीयकृत बैंकों एवं कुछ निजी बैंकों से भी संबंधित है। अतः आसानी से लोग इस ऐप का उपयोग सरल डिजीटल लेनदेन के माध्यम के रूप में कर सकते हैं।

Welcome to

Bharat Interface for Money

BHIM

BHARAT INTERFACE FOR MONEY

भारत इन्टर्फेस फॉर मनी एप्प

6. **USSD** तकनीक द्वारा–Unstructured Supplementary Service Data तकनीक के द्वारा

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

हम बिना स्मार्ट फोन तथा इण्टरनेट सुविधा के एक साधारण मोबाईल से भी इसका उपयोग कर सकते हैं। इस सुविधा का लाभ लेने के लिए व्यक्ति को अपने मोबाइल से *99# डायल करके अपने बैंक के पहले तीन अक्षर या IFSC कोड के पहले चार अक्षर दर्ज कराने होते हैं। जरूरी जानकारी दर्ज करने के पश्चात आपको MMID और MPIN प्राप्त होते हैं। किसी भी व्यक्ति को भुगतान करने के लिए उसके मोबाइल नम्बर और MMID नम्बर/कोड पता होने चाहिए तथा भुगतान सुनिश्चित करने के लिए अपने MPIN (गोपनीय) दर्ज करने पड़ते हैं। अतः यह एक सरल और सबसे सहज नकद विहीन लेन–देन का माध्यम है।

7. **MICRO ATM's के द्वारा–** इसी प्रकार AADHAR Enabled Payment System (AEPS) के द्वारा भी हम अपने आधार कार्ड के द्वारा POS (Micro ATM's) मशीन पर अंगुलियों के स्कैन करा कर भुगतान कर सकते हैं। इसके लिए हमारा बैंक खाता आधार नम्बरों से जुड़ा होना आवश्यक है। इस सुविधा का लाभ उठाने के लिए आपको अपने आधार नम्बर तथा बैंक खाता संख्या पता होनी चाहिए।

नकद विहीन लेन देन की उपयोगिता –

देश के आर्थिक सौदों में नकद का अधिक प्रचलन जहाँ एक ओर कालाबजारी और भ्रष्टाचार को बढ़ावा देता है वहीं दूसरी ओर नोट निर्गमन प्रणाली पर भारी दबाव बनाता है। अधिक मात्रा में नकदी सौदों से बैंकों पर भी प्रत्यक्ष ओर परोक्ष रूप से भार पड़ता है, जिससे बैंकिंग सुविधाएँ अंतिम व्यक्ति तक सहज एवं सुचारू रूप से नहीं पहुँच पाती हैं।

अतः नकद विहीन लेन देन जहाँ एक ओर समय की माँग है वहीं अर्थव्यवस्था में सुविधायुक्त एवं सुरक्षित लेन–देन के लिए भी आवश्यक मानी जाने लगी है। वर्तमान समय में यह एक बेहतर विकल्प प्रस्तुत करता है।

नकद विहीन लेन–देन के लाभ –

अर्थव्यवस्था में बढ़ते हुए आर्थिक लेन–देन को देखते हुए नकदी विहीन लेन–देन एक सरल एवं सुविधाजनक विकल्प के तौर पर देखा जा रहा है। आर्थिक और सामाजिक दृष्टिकोण से इसके कुछ महत्वपूर्ण लाभ इस प्रकार है –

1. **समय व धन की बचत :** नकदी विहीन लेन देन का सबसे बड़ा फायदा ग्राहक वर्ग को है। अनेक प्रकार के बिल, काउन्टर पर जाकर जमा कराने होते हैं जिससे आने–जाने में समय व धन व्यर्थ होता है। आजकल ऑनलाइन बाजार खरीद पर उपभोक्ताओं को विशेष छूट भी प्रदान की जाती है। इस प्रकार उपभोक्ता नकदी विहीन माध्यम से कोई भी विकल्प चुनकर अपने समय और धन की बचत कर सकता है।

2. **नकद रखने से छुटकारा :** अनेक अवसरों पर बड़ी खरीददारी करने के लिए अधिक मात्रा में नकद अपने पर्स या जेबों में इधर–उधर ले जाना पड़ता है जो कि असुविधाजनक एवं असुरक्षित होता है। ऐसे में नकदी विहीन लेन देन का माध्यम अपनाने से अधिक मात्रा में नकद रखने से छुटकारा मिलता है। अतः नकदी विहीन लेन देन सुविधाजनक भी होता है।

3. **बैंकों पर दबाव में कमी :** अर्थव्यवस्था में लोगों द्वारा अधिक से अधिक नकदी विहीन लेन देन की आदत अपनाने से बैंकों पर अनावश्यक दबाव में कमी आती है। लोग बार–बार बैंकों में नकदी मांग के लिए नहीं जाते हैं। इसके अलावा बैंकों को नकदी का हिसाब–किताब कम रखना पड़ता है। बैंकों के खाते कम्प्यूटरीकृत होने से खातों में पैसा स्वतः ही खाताधारकों द्वारा खर्च और जमा होता रहता है। बैंक कर्मियों को कार्य करने में सुविधा होती है जिससे वे अपने ग्राहकों का और भी बेहतर सुविधा प्रदान कर पाते हैं।

4. **राजस्व में वृद्धि :** नकद विहीन लेन देन का एक लाभ यह भी है कि क्रेता द्वारा भुगतान की गई राशि सीधे विक्रेता के चालू खाते में जमा होती है जिससे उसकी आय का सटीक अनुमान लगाना संभव हो पाता है। इससे सरकार का कर राजस्व का दायरा बढ़ता है और सरकार को करों से प्राप्त आय में वृद्धि होती है।

5. **कालाबाजारी में कमी :** बाजार में होने वाले आर्थिक सौदे यदि नकद विहीन होने लगे तो सरकार के लिए यह पता लगाना आसान हो जाता है कि किस व्यापारी ने कब और कितना माल खरीदा है इससे किसी आवश्यक सामाग्री को कालाबजारी के उद्देश्य से संग्रह करने पर पाबंदी लगेगी। व्यापारी बाजार में वस्तुओं का कृत्रिम अभाव बनाकर लोगों से मुनाफाखोरी नहीं कर सकते।

6. **अवैध कार्यों पर लगाम :** अर्थव्यवस्था में अनेक ऐसे आर्थिक लेन देन होते हैं जो सट्टे के उद्देश्य से सम्पादित किये जाते हैं किन्तु सरकार की नजरों से बच जाते हैं। इस प्रकार के अवैध कार्यों में प्रमुखतः जमीन के सौदे एवं रियल एस्टेट में जमीनों की बिक्री हैं। अधिक

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

मूल्य को कम दिखाकर या कम मूल्य को अधिक दिखाकर नकद में लेन देन किए जाते हैं। इससे सरकार को भारी राजस्व हानि होती हैं। अतः नकद विहीन लेन–देन अवैध कार्यों की रोकथाम के लिए कारगार साबित होता है।

नकदी विहीन लेन–देन की सीमाएँ –

जहाँ एक ओर नकदी विहीन लेन–देन से अनेक आर्थिक व सामाजिक लाभ हैं वहीं इस लागू करने में कुछ कठिनाइयाँ व सीमाएँ भी हैं जो इस प्रकार है –

1. अशिक्षित वर्ग को कठिनाई : नकद विहीन अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ने में सबसे बड़ी बाधा देश में कम पढ़े लिखे व अशिक्षित लोगों का एक बड़ा वर्ग है जो इसके लाभ को सीमित कर देता है। कम पढ़े लिखे लोग नकद विहीन लेन देन तरीकों से बचने का प्रयास करते हैं।
2. बैंकिंग आदतों में कमी : विकासशील देशों की एक महत्वपूर्ण आर्थिक समस्या यह है कि लोगों की बैंकिंग आदतों में रूचि कम पायी जाती है। भारत जैसे विशाल देश में प्रधानमंत्री जन धन खाता योजना के अंतर्गत करोड़ों लोगों के बैंकों में निशुल्क खाते खोले गए किन्तु लोग इनका सुचारू उपयोग नहीं करते। अतएव बैंकिंग आदतों का न होना भी नकदी विहीन लेन देन में बाधक बनता है।
3. धोखाधड़ी की आशंका : धोखाधडी की आशंका के कारण लोग नकद विहीन लेन–देन से बचने का प्रयास करते हैं। यदि वे अपना गुप्त पासवर्ड सुरक्षित रखें तो ऐसा होना लगभग असंभव है। ऐसी अधिकतर धोखाधड़ी लापरवाही या अज्ञानतावश ही होती है।
4. अनेक सौदों में अनुपयोगी : अर्थव्यवस्था में कुछ ऐसे सौदे होते हैं जिनमें नकद विहीन लेन–देन लगभग अनुपयोगी साबित होता है जैसे छोटे व्यवसाय करने वाले कामगार, मोची, धोबी, प्रेस, सब्जी वाला, दूध वाला, दिहाड़ी मजदूर, मिस्त्री, सफाई कर्मी आदि नकद भुगतान को ही महत्व देते हैं। अल्प राशि के कारण उन्हें नकद लेना आसान लगता है।
5. बैंकिंग सुविधाओं का विस्तार सीमित : बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में सीमित बैंकिंग सुविधा भी नकदी विहीन लेन देन की दिशा में एक बड़ी बाधा का कार्य करती है। भारत जैसे बड़े देश में अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाएँ पर्याप्त रूप से नहीं पहुँच पाई हैं । ऐसे में पर्याप्त बैंकिंग सुविधाओं के अभाव में नकदी विहीन लेन–देन केवल शहरी क्षेत्रों तक ही सीमित होकर रह जाएगा।
6. **सायबर अपराधों पर रोकथाम हेतु प्रभावी कानून की कमी** : भारतीय परिवेश में आज भी नकदी विहीन लेन–देन करने वाले ग्राहकों के अधिकारों को संरक्षण प्रदान करने वाले कानूनों का अभाव है। नकदी विहीन लेन–देन के दौरान किसी भी प्रकार के धोखाधड़ी होने पर त्वरित रोकथाम एवं कार्यवाही हेतु प्रभावी कानून के अभाव में सालों तक लोगों को वर्षों तक आर्थिक क्षति उठानी पड़ती है।

उपरोक्त सीमाओं के बावजूद भी अर्थव्यवस्था में नकदी विहीन लेन–देन के महत्व को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता। तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थों में नकदी विहीन लेन–देन समय की मांग भी है और आवश्यकता भी।

डिजिटल लेन–देन के दौरान सावधानियाँ

- ATM कम डेबिट कार्ड के इस्तेमाल को लेकर बैंक से आने वाले संदेश अथवा पूछताछ में अपने गुप्त विवरण उजागर नहीं करने चाहिए। बैंक कभी भी आपका गुप्त PIN नम्बर नहीं पूछते हैं।
- किसी भी प्रकार की पूछताछ संदिग्ध लगने पर तुरन्त अपने बैंक से संपर्क करना चाहिए।
- अपने गुप्त नम्बर (PIN) को क्रेडिट/डेबिट कार्ड के साथ लिखकर कभी नहीं रखना चाहिए।
- अपने ATM कार्ड को SWIPE मशीन पर प्रयोग करते समय गोपनीयता बनाए रखनी चाहिए।
- मोबाइल एप का ऑफिशियल सोर्स देखकर ही इस्तेमाल करना चाहिए।
- नेट बैंकिंग उपयोग करते समय अपने अकाउंट स्टेटमैंट पर नियमित नजर रखना और समय–समय पर अपना पासवर्ड बदलते रहना चाहिए।
- अपना मोबाइल इस्तेमाल करने के लिए अन्जान व्यक्ति को न दें अन्यथा वह OTP पासवर्ड का प्रयोग कर आपके खाते से डिजिटल लेन–देन कर सकता है।
- खाते में रजिस्टर्ड मोबाइल नं. को कभी न बदलना चाहिए क्योंकि उसी पर आपके लेन–देन संबंधी तथा OTP संदेश प्राप्त होते हैं।

भारत के सन्दर्भ में नकद विहीन लेन–देन की प्रासंगिकता –

वर्तमान सरकार द्वारा 9 नवंबर 2016 को विमुद्रीकरण का प्रयोग करते हुए अर्थव्यवस्था से 500 व 1000 रूपये के नोटों को चलन में अवैध घोषित कर दिया गया। लोगों के पास नकदी में रखे

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

उक्त नोटों को बैंक खातों में जमा कराकर उसके बदले 500 और 2000 के नए नोट जारी किए गए। ऐसे में कुछ समय के लिए बाजार में कम नकदी के चलते आम लोगों व व्यापारियों को थोड़ी परेशानियों का सामना करना पड़ा। सरकार ने लोगों को नकदी विहीन लेन–देन के लिए प्रोत्साहित किया। इतने बड़े अर्थतंत्र में निश्चित तौर पर नकद रूप में मुद्रा की छपाई से लेकर उसके प्रबंधन तक में करोड़ों रूपये का खर्च सरकार को वहन करना पड़ता है। ऐसे में डिजिटल लेन–देन अथवा नकद विहीन लेन–देन को एक बेहतर रूप में देखा जाने लगा। निजी कम्पनियों द्वारा इस प्रकार के लेन–देन पर कैशबैक ऑफर भी दिए जाते हैं। सरकार भी इसे प्रोत्साहित करने के लिए जागरूकता के साथ–साथ विशेष छूट के अवसर उपलब्ध करा रही है। सरकार ने विमुद्रीकरण के पश्चात डिजिटल लेन देन को बढ़ावा देने और नकदी विहीन लेन–देन को लोकप्रिय बनाने के लिए 94 करोड़ रुपये के विज्ञापन प्रसारित किए हैं। अतः डिजिटल लेन–देन एक ओर सरल और सुविधाजनक माध्यम है वहीं दूसरी ओर तेजी से उभरती भारतीय अर्थव्यवस्था की जरुरत भी है।

महत्त्वपूर्ण बिन्दु :

- नकदी विहीन लेन–देन से ही इसका सरल अर्थ लगाया जा सकता है – बिना नकद के आर्थिक लेन–देन।
- यह लेन–देन क्रेडिट कार्ड, एटीएम कम डेबिट कार्ड, इंटरनेट बैंकिंग तथा चैक आदि के द्वारा किया जा सकता है।
- ई–कॉमर्स या ई–व्यवसाय व्यापार की एक उन्नत और नवीन तकनीक है, जिसमें इंटरनेट के माध्यम से व्यापार का संचालन किया जाता है।
- नकदी विहीन भुगतान का सबसे सरल तरीका चैक या ड्राफ्ट के द्वारा किया गया भुगतान है।
- e-wallet की सहयाता से हम अनेक बिलों का भुगतान घर बैठे आसानी से कर सकते हैं। हाल ही में भारत सरकार द्वारा ऐसी ही **'भीम ऐप'** जारी की गई है।
- Unstructured Supplementary Service Data तकनीक के द्वारा हम बिना स्मार्ट फोन तथा इण्टरनेट सुविधा के एक साधारण मोबाइल से भी इसका उपयोग कर सकते हैं।
- AADHAR Enabled Payment System (AEPS) के द्वारा भी हम POS (Micro ATM's) मशीन पर अपनी अंगुलियों के स्कैन करा कर भुगतान कर सकते हैं।
- नकद विहीन लेन–देन अवैध कार्यों की रोकथाम के लिए कारगार साबित होता है।
- नकद विहीन लेन–देन से कालाबाजारी रोकथाम के उद्देश्य से वस्तुओं का संग्रह करने पर पाबंदी लगती है।
- हाल ही में भारत सरकार ने कालाबाजारी और नकली नोटों की रोकथाम हेतु विमुद्रीकरण के तहत 500 व 1000 रूपये के नोटों को चलन में अवैध घोषित किया।
- सरकार भी डिजिटल लेन–देन को प्रोत्साहित करने के लिए जागरूकता के साथ–साथ विशेष छूट के अवसर उपलब्ध करा रही है।

अभ्यासार्थ प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. समय और धन की बचत संभव है –
   (अ) वस्तु विनियम प्रणाली में
   (ब) मौद्रिक प्रणाली में
   (स) नकद लेन देन में
   (द) नकदी विहीन लेन देन में।

2. निम्न में से नकदी विहीन लेन–देन कहा जाएगा –
   (अ) नकद भुगतान
   (ब) चैक से भुगतान
   (स) केवल बड़े नोटों से भुगतान
   (द) केवल सिक्कों से भुगतान।

3. बैंक ऑनलाइन भुगतान में किस तकनीक का प्रयोग नहीं करते –
   (अ) NTGS
   (ब) NEFT
   (स) RTGS
   (द) IMPS

4. निम्न में से डिजिटल भुगतान की जिस विधि में इण्टरनेट सुविधा आवश्यक नहीं है, वह है–
   (अ) इण्टरनेट बैंकिंग

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(ब) E-wallet
(स) स्वाइप कार्ड
(द) USSD तकनीक।

5. भारत सरकार द्वारा जारी की गई डिजिटल पेमेंट ऐप का नाम है –
(अ) डिजिटल ऐप
(ब) भारत ऐप
(स) भीम ऐप
(द) पेमेंट ऐप।

6. निम्न में से कौन सा तरीका परम्परागत तरीके से नकदी विहीन भुगतान के लिए अपनाया जाता रहा है –
(अ) E-wallet
(ब) इण्टरनेट बैंकिंग
(स) चैक या ड्राफ्ट
(द) क्रेडिट/डेबिट कार्ड

अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न :

(1) नकदी विहीन भुगतान का अर्थ लिखिए।
(2) चैक बुक कहाँ से प्राप्त की जा सकती है?
(3) किसी भी प्रकार की मोबाइल ऐप कहाँ से डाउनलोड की जा सकती है?
(4) बैंक द्वारा ऑनलाइन भुगतान की कोई एक विधि का नाम लिखिए?
(5) भीम (BHIM) ऐप का विस्तृत नाम लिखिए।

लघूत्तरात्मक प्रश्न

(1) नकदी विहीन लेन–देन के कोई चार माध्यम बताइए।
(2) नकदी विहीन लेन–देन की उपयोगिता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
(3) ई–कॉमर्स को परिभाषित कीजिए।
(4) डिजिटल लेन–देन में कौन–कौन सी सावधानियाँ रखना आवश्यक है।
(5) नकदी विहीन लेन–देन की कोई चार सीमाएं बताइए।

निबंधात्मक प्रश्न

(1) ई कॉमर्स व्यापार की तकनीक में डिजिटल भुगतान के तरीके किस प्रकार सहायक होते हैं?
(2) नकदी विहीन लेन–देन क्या है? इसके प्रमुख माध्यमों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
(3) नकदी विहीन लेन–देन का अर्थ बताइये। इसके लाभों का विस्तार से वर्णन करते हुए इसकी सीमाएँ लिखिए।
(4) निम्न पर टिप्पणी लिखिए
(i) E-wallet
(ii) USSD
(iii) AEPS
(iv) NEFT

उत्तर तालिका

1	2	3	4	5	6
द	ब	अ	द	स	स

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

(शब्दावली)
Glossary

Average Fixed Cost (औसत स्थिर लागत) : कुल स्थिर लागत को उत्पादन से भाग देने पर प्राप्त होता है।

Aggregate supply curve (समग्र पूर्ति वक्र) : वह वक्र जो विभिन्न कीमतों पर उत्पादक द्वारा उत्पादित एवं बेची गई मात्रा को बताता है।

Aggregate-demand curve (समग्र मांग वक्र) : वह वक्र जो प्रत्येक कीमत पर उपभोक्ता, निवेशकर्ता, सरकार और विदेशी उपभोक्ता द्वारा वस्तु और सेवाओं की माँग को दर्शाता है।

Average Product (AP) (औसत उत्पाद): जब कुल उत्पाद को परिवर्तनशील पड़त की मात्रा से भाग दिया जाता है।

Average Revenue (AR) (औसत आगम): कुल आगम को कुल बेची गई मात्रा से भाग देने पर प्राप्त होता है।

Average Total Cost (ATC) (औसत कुल लागत): कुल लागत में कुल उत्पादन का भाग दिया जाता है। AFC+AVC

Average Variable cost (AVC) (औसत परिवर्तनशील लागत) : कुल परिवर्तनशील लागत को उत्पादन से भाग दिया जाता है।

Break even point (बिन्दु समस्थिति) : वह बिन्दु जिस पर कुल आगम और कुल लागत बराबर होती है व लाभ शून्य होता है।

Budget Constraint (बजट सीमा) : वस्तु की मात्रा के क्रय की सीमा जो उपभोक्ता की सीमित आय और वस्तुओं की कीमत द्वारा निर्धारित होती है।

Budget deficit (बजत घाटा) : जब सरकार को कर से प्राप्त आय उसके द्वारा किये गये व्यय से कम होती है।

Central Bank (केन्द्रीय बैंक) : एक शीर्ष संस्था जो सम्पूर्ण बैंकिंग प्रणाली को नियमित और नियंत्रित करती है।

Circular flow diagram (चक्रीय प्रवाह चित्र) : घरेलू और व्यावसायिक क्षेत्रों के मध्य साधनों और आय व्यय के प्रवाह को आलेख द्वारा दर्शाया जाता है।

Closed economy (बन्द अर्थव्यस्था) : जब किसी देश की अर्थव्यवस्था का अन्य देशों की अर्थव्यवस्था से कोई आयात–निर्यात (आदान–प्रदान) नहीं होता है।

Concept of Margin (सीमान्त की अवधारणा) : समस्त व्यष्टि अर्थशास्त्र की केन्द्रीय एकीकृत मूल धारणा है जिसके अनुसार सीमान्त लाभ सीमान्त लागत के बराबर होने पर कुल शुद्ध लाभ अधिकतम होता है।

Consumer equilibrium (उपभोक्ता संतुलन) : वह बिन्दु जहाँ उपयोगिता अथवा सन्तुष्टि अधिकतम होती है।

Consumption (उपभोग) : घरेलू वर्ग द्वारा वस्तु और सेवाओं पर किया गया व्यय।

Cost (लागत): एक वस्तु के उत्पादन पर उत्पादक द्वारा किए गए समस्त खर्च (व्यय)।

Cross price elasticity of demand : एक वस्तु की कीमत में अनुपातिक परिवर्तन होने पर दूसरी वस्तु की मांग में अनुपातिक परिवर्तन।

Demand curve (मांग वक्र) : मांग वक्र आलेख वस्तु की कीमत और मात्रा में सम्बन्ध को द्वारा दर्शाया जाता है।

Demand deposit (मांग जमा) : बैंकों के पास जमा धन (Balance) जो जमाकर्त्ताओं द्वारा आहरित किया जा सकता है।

Diminishing marginal utility of money (मुद्रा की ह्रासमान उपयोगिता): आय में प्रत्येक रूपये की वृद्धि से प्राप्त अतिरिक्त उपयोगिता घटती है।

Economic resources (आर्थिक संसाधन) : वे संसाधन जिनकी पूर्ति सीमित/अल्प होती है और इसलिए उनकी कीमत होती है।

Economics (अर्थशास्त्र) : अध्ययन की वह शाखा जो सीमित साधनों को उनके वैकल्पिक उपयोगों में आवंटित करती है जिससे मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्ट किया जा सके।

Efficiency (कुशलता) : वह स्थिति जहाँ वस्तु की कीमत उस वस्तु की उत्पादन की सीमान्त लागत के बराबर होती है।

Elasticity (लोच): वस्तु की मांग अथवा पूर्ति का किसी एक निर्धारक घटक की प्रतिक्रियाशीलता का माप

Excess Demand : साम्य कीमत के नीचे जब वस्तु की मात्रा की मांग, वस्तु की पूर्ति से अधिक होती है।

Excess Supply (अतिरिक्त पूर्ति) : साम्य कीमत के ऊपर वस्तु मात्रा की पूर्ति उसकी वस्तु मात्रा की मांग से अधिक होती है।

Exchange (विनिमय) : वस्तु और सेवाओं का परस्पर लेन–देन

Exchange rate (विनिमय दर): वह दर जिस पर एक करेंसी में दूसरी मुद्रा की कीमत व्यक्त की जाती है।

Explicit Costs (व्यक्त लागतें) : फर्म द्वारा वास्तविक व्यय

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

जो पड़तों को क्रय करने में होता है।

Firm (फर्म) : एक संस्था जो लाभ के उद्देश्य से संसाधनों का सम्मिश्रण और संगठन करती है जिससे वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन कर के उनका विक्रय किया जाता है।

Giffen Goods (गिफ्फन वस्तुएं) : घटिया वस्तुएं जिनका धनात्मक प्रतिस्थापन प्रभाव, ऋणात्मक आय प्रभाव से कम होता है जिससे कीमत कम होने पर वस्तु की मात्रा कम खरीदी जाती है।

Gross Domestic Product (सकल घरेलू उत्पाद) : एक देश में एक वर्ष में उत्पादित सभी वस्तुओं और सेवाओं का अन्तिम बाजार मूल्य।

Human wants (मानवीय आवश्यकताएँ) : सभी वस्तुओं सेवाओं और मनुष्य की जीवनोपयोगी सभी मूलभूत आवश्यकताएं

Implicit Cost (अव्यक्त लागत) : फर्म के मालिक द्वारा स्वयं के संसाधनों उपयोग की लागत जो की अवसर लागत के आधार पर गणना की जाती है।।

Indifference Curve (तटस्थता वक्र) : वह वक्र जो वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जिससे उपभोक्ता को समान सन्तुष्टि प्राप्त होती है और उनके मध्य तटस्थ रहता है।

Inferior Goods (घटिया वस्तुएं) : अन्य बाते समान रहने पर आय में वृद्धि किसी वस्तु की मांग में कमी करती है।

Inflation (मुद्रा स्फीति): अर्थव्यवस्था में सामान्य कीमत स्तर में वृद्धि

Investment (विनियोग) : पूंजीगत उपकरण, मालसूची (Inventories) पर किया गया व्यय।

Law of demand (मांग का नियम) : अन्य बाते समान रहने पर वस्तु की कीमत और वस्तु की मांग में विलोम संबंध को दर्शाता है।

Law of Supply : पूर्ति का नियम अन्य बातें समान रहने पर वस्तु की कीमत और पूर्ति में धनात्मक संबंध को व्यक्त करता है।

Longrun (दीर्घकाल) : वह समय अवधि जिसमें सभी साधन परिवर्तनशील होते हैं।

Macro Economics (समष्टि अर्थशास्त्र) : समग्र अथवा व्यापक अर्थव्यवस्था के आर्थिक चरों का अध्ययन

Marginal rate of Substitution (सीमान्त प्रतिस्थापन दर): वह दर जिस पर उपभोक्ता एक वस्तु की अतिरिक्त मात्रा प्राप्त करने के लिए दूसरी वस्तु की मात्रा त्यागने को तत्पर रहता है।

Marginal Revenue (सीमान्त आगम) : एक अतिरिक्त इकाई के विक्रय करने पर प्राप्त अतिरिक्त आगम

Marginal Utility (सीमान्त उपयोगिता) : एक अतिरिक्त वस्तु के उपभोग करने से प्राप्त अतिरिक्त उपयोगीता

Market (बाजार) : एक संस्थागत प्रबन्ध है जिसके तहत क्रेता और विक्रेतावस्तु और सेवाओं का विनिमय एक परस्पर सहमत कीमत पर करते है।

Market quilibrium (बाजार साम्य) : वह अवस्था जब बाजार कीमत पर वस्तु की मांग और पूर्ति दोनों बराबर होती है।

Micro economics (व्यष्टि अर्थशास्त्र) : जब सुक्ष्म अथवा व्यक्तिगत इकाई का अध्ययन किया जाता है।

Mixed economy (मिश्रित अर्थव्यवस्था) : अर्थव्यवस्था जिसमें निजी और सार्वजनिक दोनों क्षेत्र होते हैं।

Monetary Policy (मौद्रिक नीति) : केन्द्रीय बैंक में नीति निर्माताओं द्वारा मुद्रा की पूर्ति पर नियंत्रण के उपाय

Money (मुद्रा): सर्वग्राही एवं वैधानिक वस्तु जो जनता द्वारा वस्तु और सेवाओं के क्रय के लिए प्रयोग की जाती है।

Money Supply (मुद्रा की पूर्ति) : अर्थव्यवस्था में मुद्रा की उपलब्ध मात्रा

Monopolistic Competition (एकाधिकारात्मक प्रतियोगिता) : वह बाजार संरचना जिसमें अनेक फर्मे विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करती है।

Net Exports (शुद्ध निर्यात) : देश के कुल निर्यातों के मूल्य में से कुल आयातों के मूल्य को घटाने पर प्राप्त शुद्ध निर्यात

Non Price Competition (गैर कीमत प्रतियोगिता) : विज्ञापन और विभेदीकृत उत्पाद पर आधारित प्रतियोगिता होती है न की कीमत आधारित

Normal Good (सामान्य वस्तुएं) : अन्य बातें समान रहने पर आय में वृद्धि होने पर जिन वस्तुओं की मांग में वृद्धि होती है।

Oligopoly (अल्पाधिकार) बाजार संरचना जिसमें कुछ बडी फर्मे होती है। ये समरूप या विभेदीकृत वस्तुओं का उत्पादन करती है।

Open economy (खुली अर्थव्यवस्था) : अर्थव्यवस्था जिसका अन्य अर्थव्यवस्थाओं के साथ अंतःक्रिया होती है।

Ordinal Utility (क्रमवाचक उपयोगिता) विभिन्न वस्तुओं को वरीयता प्रदान करना उनसे प्राप्त उपयोगिता के आधार पर

Perfectly Competitive market (पूर्ण प्रतियोगिता बाजार): बाजार संरचना जिसमें क्रेता और विक्रेताओं की संख्या बहुत अधिक होती हे कोई भी कीमत को प्रभावित नहीं करता है। समरूप वस्तुओं का उत्पादन होता है।

Price Elasticity (मांग की कीमत लोच) : वस्तु की मांग मात्रा में अनुपातिक परिवर्तन और वस्तु की कीमत में अनुपातिक परिवर्तन का अनुपात

Production (उत्पादन) : संसाधनों अथवा पड़तों को वस्तु और सेवाओं में रूपांतरित करना है।

Production Possibility Curve (उत्पादन सम्भावना वक्र)

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

Downloaded from https:// www.studiestoday.com

: वस्तुओं के विभिन्न संयोगों को दर्शाता है जो एक राष्ट्र में उपलब्ध तकनीकी के दिए होने पर सभी साधनों का पूर्ण उपयोग करते हुए उत्पादन करता है।

Reserve Ratio (रिजर्व अनुपात) : जमाओं का हिस्सा जो बैंक रिजर्व के रूप में रखते है।

Shortage (अल्पता) अभाव : स्थिति जब वस्तु की मांग वस्तु की पूर्ति से अधिक होती है।

Shut down point : उत्पादन का वह स्तर जिस पर कीमतें औसत परिवर्तनशील लागत के बराबर होती है और हानि कुल स्थिर लागतों के बराबर होती है। फर्म उत्पादन करे या न करे। इसके अतिरिक्त MC, AVC के न्यूनतम बिन्दु पर, बराबर होती है।
MC = AVC

Subsitutes (प्रतिस्थापन वस्तु) : जब एक वस्तु की कीमत में वृद्धि दूसरी वस्तु की मांग में वृद्धि करती है।

Supply Curve (पूर्ति वक्र) : जब वस्तु की कीमत और पूर्ति मात्रा को आलेख द्वारा दर्शाया जाता है।

Total Fixed Cost (कुल स्थिर लागत) : स्थिर साधनों पर किया गया व्यय।

Total Revenue (कुल आगम): बाजार में विक्रेताओं को प्राप्त राशि/कीमत को वस्तु मात्रा से गुणा करने पर कुल आगम प्राप्त होता है।

Total Utility (कुल उपयोगिता) : वस्तु की सभी इकाइयों के उपभोग करने पर प्राप्त उपयोगिता

Util (यूटिल): उपयोगिता को मापने की काल्पनिक इकाई

Utility (यूटिलिटी, उपयोगिता) : वस्तु में वह क्षमता जो मानवीय आवश्यकता को तृप्त कर सकती है।

Variable inputs (परिवर्तनशील पड़ते) : वह उत्पादन के साधन जिनमें एक निश्चित समय अवधि में परिवर्तन किया जा सकता है।

Downloaded from https:// www.studiestoday.com